Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानगंज

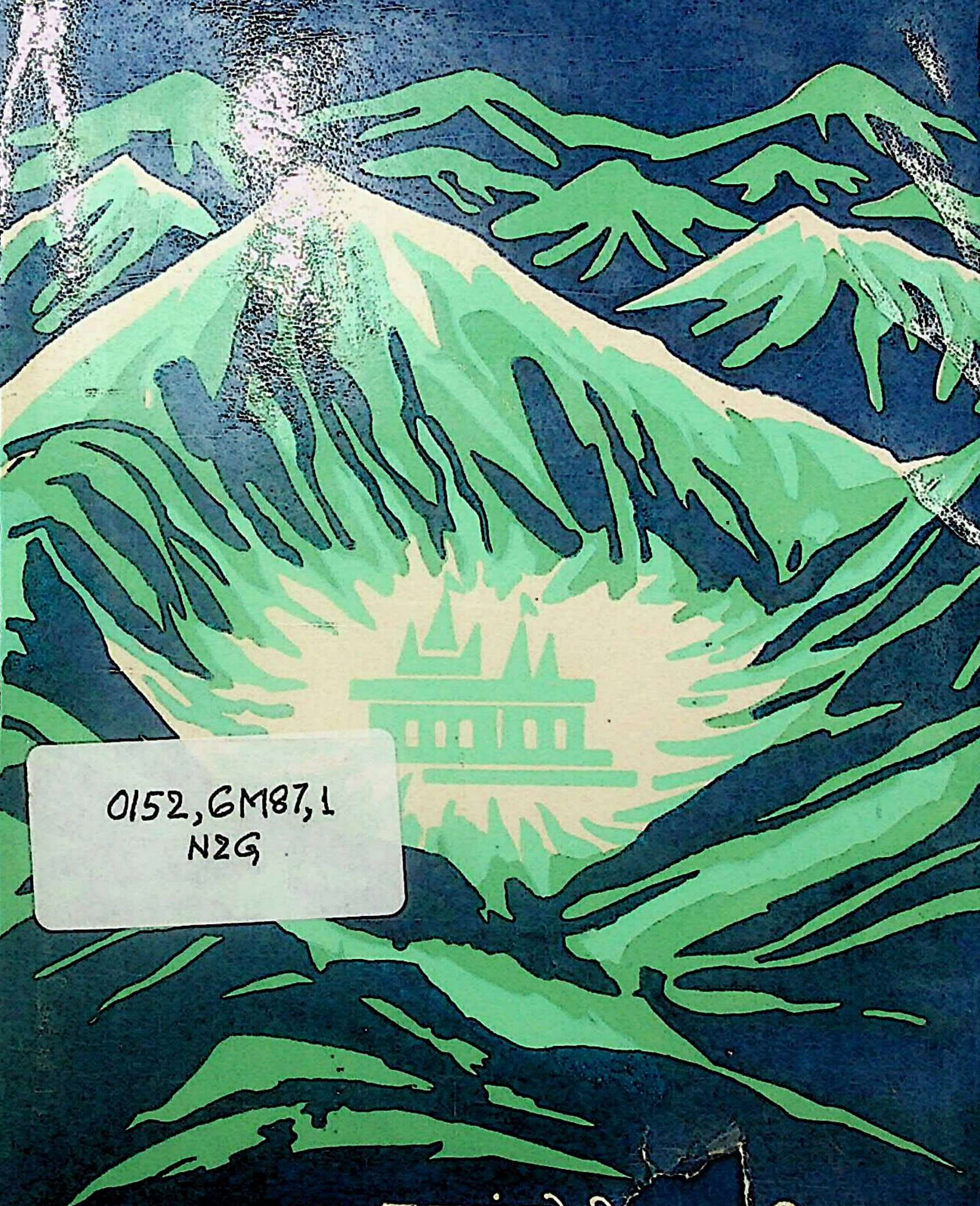

0152,6M87,1
N2G

म.म.पं. गोपीनाथ कविराज

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"कहा जाता है कि ज्ञानगंज हमारी इस परिचित पृथिवी पर एक विशेष गुप्त स्थान है। किन्तु वह इतना गुप्त है कि विशिष्ट शक्ति के विकास न होने से तथा उस स्थान के अधिष्ठाता की आज्ञा न होने से मर्त्यलोक के जीव को दिखाई नहीं देता। प्रत्येक सिद्धभूमि की यही विशेषता है।"........ पारमार्थिक ज्ञानगंज का पता जानना सभी के लिए सम्भव नहीं है।"

"बाबा कहा करते थे कि ज्ञानगंज के साथ कहीं से भी सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। यह सूर्य-विज्ञान से सम्भव है। दवा या किसी प्रकार का यंत्रादि वहाँ से मँगाया जा सकता है। यहाँ तक कि कुमारी या माताओं के लिए कपड़ा और अन्य सामग्रियाँ उपयोग के लिए ज्ञानगंज के आश्रमवासी उनके इच्छानुसार भेज देते हैं।"

ज्ञानगंज के परमहंसों तथा भैरवी माताओं में से अधिकतर की उम्र चार-पाँच सौ वर्ष से लेकर आठ-नौ सौ वर्ष तक की है।

सिद्ध आश्रम साधारण लौकिक आश्रमों की तरह नहीं है। यह सामान्य लोगों को दिखाई नहीं देता। तिब्बती लोग, परिव्राजक या पर्यटकों को इसका पता नहीं चलता। इस वजह से कोई संन्यासी (भारतीय) या पर्यटक (विदेशी) इस ज्ञानगंज की सिद्धभूमि से परिचित नहीं है और उसके बारे में विवरण पाना सम्भव नहीं है। स्थूल भूमि में अवस्थित रहने पर भी वह भौतिक स्थान नहीं है। वास्तव में वह जिस प्रकार स्थूल नहीं है, ठीक उसी प्रकार सूक्ष्म भी नहीं है। दूसरी ओर स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही है। सिद्ध महापुरुषों के दर्शन कर लेने के बाद वह अदृश्य हो जाता है, ऐसी है सिद्ध आश्रम की स्थिति। स्थूल दृष्टि से स्थूल है तो सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म। इसीलिए समन्वययुक्त है।

मूल्य : साठ रुपये

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Vara

0152,6M87.1
N26
Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
8594

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानगंज

LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. ....

लेखक
महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज
हिन्दी रूपान्तर
विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

GYANGANJ

by

M. M. Pt. Gopinath Kaviraj

1992

0152,6M87,1
N2G

SR... ... ... THI ... ...
JNANA S...HASAN J... ...MA...AL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8594

प्रथम संस्करण
१९९२ ई०

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No 147

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन, चौक, वाराणसी
मुद्रक
शीला प्रिण्टर्स, लहरतारा, वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानगंज-रहस्य

अनादिकाल से हिमालय का सम्पूर्ण क्षेत्र भारतीय सन्तों के लिए तपोभूमि रहा है। प्राचीनकाल के ऋषि-मुनि से लेकर आधुनिक काल के अनेक संत-योगी हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में तपस्या करते रहे। आधुनिक काल के संतों में महात्मा तैलंग स्वामी, लोकनाथ ब्रह्मचारी, हितलाल मिश्र, राम ठाकुर, सदानन्द सरस्वती, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, स्वामी विशुद्धानन्द, श्यामाचरण लाहिड़ी, कुलदानन्द आदि हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में आध्यात्मिक साधना करते रहे।

श्रद्धेय कविराजजी ने अपने एक लेख में लिखा है कि सिद्ध पुरुष जिस स्थान पर बैठकर योग-साधना करते हैं वह स्थान सिद्धभूमि बन जाती है। सिद्धभूमि सिद्ध पुरुष के नाम के अनुसार अथवा अन्य किसी प्रकार के नियम के अधीन विभिन्न नाम और रूप लेकर श्री भगवान् की विश्वलीला में अपना-अपना काम करती हैं। प्रसिद्ध है, दत्तात्रेय, अगस्ति, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषिवर्ग अपने-अपने सिद्धाश्रम स्थापित करके ज्ञान-विज्ञान का प्रचार करते रहे। जो महापुरुष सिद्धि प्राप्त कर आधिकारिक अवस्था-लाभ करते हैं, वे ही इन सभी सिद्धभूमियों के अधिष्ठाता होते हैं। जिनमें अधिकार-वासना नहीं है, वे सिद्धभूमि में रहते हुए भी न रहने के समान हैं अथवा वे सिद्धभूमि के ऊर्ध्व में रहते हैं। जिस प्रकार सिद्धपुरुष चित् और अचित्, कार्य और कारण, शुद्ध और अशुद्ध एवं स्थूल और सूक्ष्म सभी अवस्था में अव्याहत रहते हैं तथा अपने वैशिष्ट्य का संरक्षण कर सकते हैं, उसी प्रकार ये बातें सिद्धभूमि पर भी लागू होती हैं। देह सिद्ध करने के पश्चात् भूमि को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि देह-सिद्धि होने पर उसी प्रकार भूमि-सिद्धि हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि सिद्ध आत्मा की इच्छानुसार तथाकथित सिद्धभूमि का आविर्भाव होता हैं।

कविराजजी के कथनानुसार न केवल हिमालय में, बल्कि भारत के अनेक प्रान्तों में ऐसी सिद्धभूमियाँ हैं, जहाँ साधक योग-साधना करते रहे। हिमालय में सिद्ध भूमियों की संख्या अधिक अवश्य है।

इसी हिमालय में तिब्बत नामक एक रहस्यमय प्रदेश है। कविराजजी के कथनानुसार यहाँ अनेक ऐसे मठ और आश्रम हैं जिनके बारे में सभ्य जगत् को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जानकारी नहीं है। वे सामान्य पर्यटकों के निकट अलक्ष्य रहते हैं। इन आश्रमों में योग के साथ-साथ विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। केवल उच्चकोटि के लोग इन मठों मे प्रवेश पाते हैं।

अप्रैल १९५९ के दिनों परमपावन दलाई लामा जब तिब्बत से पलायन कर भारत आ रहे थे, उन दिनों इन पंक्तियों के लेखक से कविराजजी इसी विषय पर चर्चा करते रहे। चर्चा के दौरान ज्ञानगंज के अलावा एक घटना का जिक्र किया था।

द्वितीय महायुद्ध के समय दो जर्मन पर्यटक गिरफ्तारी के भय से नेपाल के रास्ते तिब्बत की ओर भाग गये थे। वहाँ वे एक ऐसे मठ में थे जहाँ सभ्य जगत् की सारी सुविधाएँ उपलब्ध थीं। युद्ध समाप्त होने के काफी दिनों बाद वे पैदल भारत की ओर रवाना हुए। मार्ग भूलकर वर्मा जा पहुँचे। इनकी रामकहानी सुनकर लोग चकित रह गये। हिमालय जैसे क्षेत्र में विज्ञान ने इतनी उन्नति की है जिसकी जानकारी संसार को नहीं है। लोगों ने उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया।

जब दोनों पर्यटकों ने यह कहा कि अगर आप लोग मेरे साथ चलें तो मैं वहाँ ले जाकर यह सब दिखा सकता हूँ। तब कई लोग राजी हो गये। दोनों जर्मन ठीक उसी स्थान पर आये जहाँ वे कई वर्षों तक थे। लेकिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मठ वहाँ नहीं है। वही पर्वत-शिखर है, वही वृक्ष-समूह है जहाँ वे बैठकर घण्टों बातें करते रहे। वही झरना है जहाँ वे स्नान करते थे, पर वह विशाल मठ नहीं है, जहाँ वे सभ्य जगत् की सारी सुविधाओं का भोग करते रहे।

काफी दिनों बाद इस घटना का विवरण मैंने किसी पत्र या पत्रिका में पढ़ा था। कर्नल आलकट के साथ भी इसी प्रकार की एक घटना बम्बई में हुई थी जिसका जिक्र उन्होंने अपनी पुस्तक 'ओल्ड डायरी लेवेस' में किया है।

कर्नल आलकट थियोसाफिस्ट संस्था की संस्थापिका मादाम ब्लावाट्स्की के साथ एक फिटन पर घूमने निकले थे। अचानक एक स्थान पर मादाम ब्लावाट्स्की ने गाड़ी रोकने की आज्ञा दी। कर्नल से उन्होंने कहा—"आप गाड़ी पर इन्तजार करें। मैं मठ से तुरत आ रही हूँ।"

आलकट ने देखा—सामने एक बड़ा मठ है। मादाम ब्लावाट्स्की मठ के फाटक के रास्ते से भीतर चली गयीं। थोड़ी देर बाद कई मालाएँ लेकर बाहर निकलीं। एक माला उन्होंने कर्नल को दी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दूसरे दिन आलकट घूमने के लिए अकेले निकल पड़े। कुछ दूर आने के बाद उन्होंने देखा कि कल का फिटनवाला कोचवान चला आ रहा है। उससे आलकट ने कहा—"कल हमें जहाँ ले गये थे, क्या वहाँ चल सकते हो ?"

गाड़ीवान राजी हो गया। निश्चित स्थान पर आकर आलकट ने देखा—वहाँ मठ नहीं था। सामने एक वाग है जहाँ दो माली घास खोद रहे थे। पास जाकर उन्होंने प्रश्न किया। भाषा न समझ पाने के कारण मालियों ने कोई जवाब नहीं दिया। वापस लौटकर उन्होंने गाड़ीवान से पूछा कि क्या कल तुम यहीं हमें लाये थे ? आखिर वह मठ कहाँ गायब हो गया ?

गाड़ीवान ने कहा—"यहाँ मठ कहाँ था ? मैं इधर अक्सर गाड़ी लेकर आता हूँ। सामने के वाग के अलावा यहाँ कुछ भी नहीं है। आपको भ्रम हो गया है।"

इसी प्रकार की एक घटना का जिक्र केदार नामक एक अद्‌भुत वालक[१] ने कविराजजी से किया था।

"एक दिन शाम के पहले एक दिव्य पुरुष केदार के निकट आये और कहा कि कल अपराह्ण में चार वजे अमुक स्थान में आकर भेंट करना। आगन्तुक एक महापुरुष का सन्देश-वाहक था। मार्ग के बारे में पूछने पर आगन्तुक ने कहा—'चौक के रास्ते तुम विश्वेश्वरगंज तक चले आना। आगे का रास्ता वहीं से मालूम हो जायगा। पूछने की जरूरत नहीं पड़ेगी।'

"दूसरे दिन केदार चार वजे एक साइकिल लेकर रवाना हुआ। साथ में और कोई नहीं था। विश्वेश्वरगंज तक रास्ता पकड़कर आया। यहाँ आने पर उसने देखा--सामने एक वड़ा मैदान है। इस मैदान को उसने कभी देखा नहीं था, किन्तु इस वक्त उसके मन में यह बात उत्पन्न नहीं हुई। उसने देखा--विश्वेश्वरगंज से एक रास्ता मैदान की ओर बीचोबीच गया है। रास्ते के दोनों ओर जोते हुए खेत और विविध प्रकार के दृश्य सुशोभित हैं। मैदान के वीच में एक विशाल पत्थर था। उस पत्थर पर एक महापुरुष बैठे थे। केदार उनके दर्शन से समझ गया कि इन्होंने वुलाया है। इन्हींके निकट मुझे जाना है। साइकिल से उतरकर वह पैदल यथास्थान पहुँचा। जूता-साइकिल रखने के बाद उक्त महापुरुष के पास पहुँचा। कुछ देर तक गोपनीय बात कहने के बाद महापुरुष ने कहा—'केदार, अव तुम अपने घर जाओ। तुम्हारे लिए

१. साधु-दर्शन तथा सत्प्रसंग, प्रथम खण्ड देखें।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुम्हारी माँ बहुत चिन्तित हो रही हैं।' इतना कहकर उन्होंने सामने की ओर थोड़ा हाथ बढ़ा दिया। साथ ही साथ दूरत्व दूर हो गया। केदार ने स्पष्ट रूप से अपना घर, माँ, बहन आदि को देखा। उनकी बातचीत भी सुनी। केदार ने पूछा कि इस वक्त हम लोग कहाँ हैं? महापुरुष ने कहा—'इस वक्त हम ऐसे स्थान पर हैं जहाँ से विश्व का प्रत्येक स्थान अत्यन्त सन्निकट दिखाई देता है।' यह कहकर उन्होंने हाथ हिलाया और सारा दृश्य गायब हो गया।

केदार ने महात्माजी को प्रणाम किया और इसके बाद साइकिल उठाकर पहलेवाले रास्ते पर चलने लगा। उसे विश्वास था कि इस मैदान को पार करते ही वह विश्वेश्वरगंज पहुँच जायगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। रास्ता समाप्त होने के साथ ही उसने देखा कि वह इलाहाबाद रोड पर खड़ा है। पास ही सन्त कबीर का जन्मस्थान लहरतारा है और मठ है। विश्वेश्वरगंज से यह स्थान तीन मील दूर है। यह कैसे हुआ, वह समझ न सका। वह गया था पूर्व की ओर, मगर लौटा पश्चिम की ओर।''

इस घटना का वर्णन केदार ने कविराजजी से दूसरे ही दिन किया था। इसके बाद केदार कई बार उक्त महापुरुष से मिला। मिलने का स्थान वही था, पर लौटने का स्थान भिन्न-भिन्न था।

''सिद्धभूमि की यही विशेषता है कि वह सदा और सर्वत्र ही अपने रूप में स्थित रहती है। वह जागतिक विचार से लौकिक प्रतीत होने पर भी वास्तव में अत्यन्त अलौकिक है। वह अखण्ड और अविभाज्य है। उसके अंश नहीं होते एवं सिद्ध पुरुष के इच्छानुसार अंशरूप में प्रतीत होने पर भी वह समग्र अखण्ड ही रहती है। यदि उस भूमि के अधिष्ठाता पुरुष किसीको आकृष्ट करने की इच्छा करें अथवा दर्शन देने के लिए उत्सुक हों तो लौकिक जगत् में जिस किसी स्थान से वह प्राप्त हो जाती है।.........वह स्थूल नहीं है, सूक्ष्म भी नहीं है जब कि एक साथ ही स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही है।''

उपर्युक्त तीनों घटनाओं के विवरण और बाद में सिद्धभूमि की व्याख्या देने का उद्देश्य यह है कि दोनों जर्मन पर्यटकों पर मठ के सन्तों ने कृपा की और उन्हें कई वर्षों तक रखा, उनका पालन-पोषण किया; किन्तु जब वे बर्मा से अन्य पर्यटकों को लेकर वापस आये तो उन सभी को दर्शन देने की इच्छा नहीं हुई तब वे अलक्ष्य हो गये। यही स्थिति कर्नल आलकट के साथ हुई।

केदार अलौकिक शक्ति लेकर पृथिवी पर आया था। उसे मार्ग-दर्शन की आवश्यकता थी। महापुरुष उसे अपने पास बार-बार इसीलिए बुलाते रहे,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परन्तु वे यह नहीं चाहते थे कि केदार अपने साथ अन्य लोगों को लाये। यही कारण है कि वह हर बार वापस लौटते समय अपने को भिन्न स्थानों में पाता था। इसी प्रकार ज्ञानगंज स्थूल भी है और सूक्ष्म भी है।

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में कविराजजी ने ज्ञानगंज के बारे में विस्तार से स्थूल परिचय दिया है। अपने गुरुदेव की जीवनी में उन्होंने यह बताया है कि वर्धमान में रहते समय जब कुत्ते ने उन्हें काटा तब परमहंस नीमानन्द ने उनकी जीवन-रक्षा की थी। बाद में ढाका से उन्हें तथा उनके सहपाठी हरिपद को अपने साथ लेकर ज्ञानगंज ले आये थे। उन दिनों विशुद्धानन्दजी की उम्र १४ वर्ष की थी। ज्ञानगंज में विशुद्धानन्दजी लगभग २० वर्ष तक योग और विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करते रहे। महर्षि महातपा ने उन्हें शिष्य बनाकर शक्ति-संचार किया था। परमहंस श्यामानन्द सूर्य-विज्ञान और परमहंस भृगुराम योग की शिक्षा देते रहे।[1]

ज्ञानगंज में प्रथम बार पहुँचने पर विशुद्धानन्दजी ने जो दृश्य देखा, उसका वर्णन विस्तार से इस पुस्तक में है। प्राकृतिक परिवेश, आश्रम के निवासियों का परिचय, परमगुरु महातपा के निवास-स्थान के बारे में, दीक्षा की घटना आदि। इन बातों से यह स्पष्ट है कि ज्ञानगंज नामक स्थान स्थूल रूप से तिब्बत के किसी विशेष स्थान पर है। यहाँ साधारण व्यक्ति नहीं पहुँच पाते। केवल योगैश्वर्यसम्पन्न योगी या उच्चकोटि के साधक ही जा सकते हैं।

कविराजजी जो कि स्वयं ज्ञानगंज के चमत्कारों को प्रत्यक्ष रूप से देख चुके थे, फिर भी इस पुस्तक में उन्होंने उसका परिचय सर्वत्र सूक्ष्म रूप से दिया है। एक जगह आप लिखते हैं—"कहा जाता है कि ज्ञानगंज हमारी इस परिचित पृथिवी पर एक विशेष गुप्त स्थान है। किन्तु वह इतना गुप्त है कि विशिष्ट शक्ति के विकास न होने से तथा उस स्थान के अधिष्ठाता की आज्ञा न होने से मर्त्यलोक के जीव को दिखाई नहीं देता। प्रत्येक सिद्धभूमि की यही विशेषता है।........ पारमार्थिक ज्ञानगंज का पता जानना सभी के लिए सम्भव नहीं है। कुछ लोगों को ज्ञानगंज का पता चल गया है, ऐसा सुनने में आता है। वह व्यावहारिक ज्ञानगंज से संश्लिष्ट समझना चाहिए।"

पूज्यपाद विशुद्धानन्दजी कविराजजी तथा अपने अनेक शिष्यों के सामने ज्ञानगंज के बारे में चर्चा करते थे। शिष्यों के प्रश्नों के उत्तर भी देते थे। यहाँ

---

१. साधु-दर्शन और सत्प्रसंग, भाग ३।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तक कि काशी के मलदहिया मुहल्ले में स्थित विशुद्धानन्द कानन में कई चमत्कारों का प्रदर्शन कर चुके थे जिसे कविराजजी के अलावा अन्य अनेक शिष्यों ने देखा था। इन घटनाओं का जिक्र करते हुए कविराजजी ने लिखा है—

"बाबा कहा करते थे कि ज्ञानगंज के साथ कहीं से भी सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। यह सूर्य-विज्ञान से सम्भव है। दवा या किसी प्रकार का यंत्रादि वहाँ से मँगाया जा सकता है। यहाँ तक कि कुमारी या माताओं के लिए कपड़ा और अन्य सामग्रियाँ उपयोग के लिए ज्ञानगंज के आश्रमवासी उनके इच्छानुसार भेज देते हैं।

इस बारे में बाबा के घनिष्ठ शिष्य और भक्त सभी बातें जानते हैं। लेकिन उसका रहस्य जानने में अक्षम थे। एक दिन मेरे सामने एक घटना हुई थी। मेरे एक गुरुभाई श्री सुरेन्द्रनाथ मुखर्जी ज्ञानगंज की कुमारियों के लिए ५० रंगीन साड़ियाँ लाये। छोटी-बड़ी साड़ियों का पार्सल बनाकर ज्ञानगंज भेजने के लिए पूजाघर में रख आये।

मैंने बाबा से पूछा—'क्या आप इन साड़ियों को ज्ञानगंज भेजेंगे ?'

बाबा ने कहा—'हाँ।'

मुझे अपार कौतूहल हुआ। मैंने पूछा—'कैसे भेजेंगे ?'

उन्होंने कहा—'इसी रूप में भेज दूँगा। तुम लोग जरा बैठो तब समझ पाओगे।' इतना कहने के बाद उन्होंने पूजाघर का दरवाजा बन्द कर दिया।

आधा घण्टा बाद दरवाजा खुलने पर हम लोगों ने भीतर प्रवेश किया। उन्होंने कहा—'देखो, कपड़ों के सभी बण्डलों को ज्ञानगंज भेज दिया।

हम लोगों ने साश्चर्य देखा—घर के भीतर कपड़ों के सभी बण्डल गायब थे।

काशी में मलदहिया स्थित विशुद्धानन्द कानन आश्रम में विज्ञान मन्दिर या सूर्य मन्दिर है। वहाँ दो तल्ले पर बैठे किसी उत्सव के उपलक्ष्य में उपस्थित शिष्यों को समझा रहे थे। ठीक इसी समय मेरे एक गुरुभाई, कलकत्ता निवासी श्री अक्षयकुमार दत्तगुप्त आये। इन्हें सूर्य विज्ञान सीखने की इच्छा बहुत दिनों से है। उन्होंने बाबा से एक लेन्स देने की प्रार्थना की।

बाबा ने कहा—'लेन्स के लिए ज्ञानगंज से प्रार्थना करूँगा, शायद मिल भी जाय। अगर तुम्हारी तीव्र इच्छा हो तो अभी लेन्स के लिए प्रार्थना करूँ ?'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दत्तगुप्त ने कहा–-'अगर इस समय मिल जाय तो अच्छा हो। सब आपकी कृपा है।'

बाबा कुछ देर चुप रहे, फिर एक झटका दिया। उनके हाथ में एक लेन्स आ गया। उन्होंने कहा—'तुमने यही लेन्स माँगा था।' कहकर उन्होंने लेन्स दे दिया।

सन् १९३१ ई० में मलदहिया स्थित आश्रम में 'नवमुण्डी माँ' की प्रतिष्ठा हुई। इस नवमुण्डी की सजावट की जिम्मेदारी कई भक्तों को दी गयी थी। मेरे गुरुभाई डाक्टर शोभाराम के जिम्मे सारी जिम्मेदारी दे दी गयी थी। फर्श पर बिछाने के लिए सिल्क की चार चादरों की जिम्मेदारी मुझे दी गयी थी जिसकी कीमत ८० रुपये थी। डाक्टर शोभाराम को दस-दस रुपये के आठ नोट लेकर देने के लिए मैं आश्रम में गया। उस समय तीसरा पहर था। कई गुरुभाई वहाँ बैठे थे। डाक्टर शोभाराम भी थे। मेरी इच्छा हुई कि रुपयों का लिफाफा बाबा के हाथ में दे दूँ। बाद में बाबा इस लिफाफे को डाक्टर शोभाराम को दे देंगे। यह सोचकर मैंने लिफाफा बाबा को दिया।

मेरी बगल में डाक्टर शोभाराम बैठे थे। मैंने कहा—'नवमुण्डी आसन के फर्श पर बिछाने के लिए चादरों के अस्सी रुपये हैं।'

बाबा ने कहा—'एक चादर की कीमत अस्सी रुपये? इतनी महँगी?'

डाक्टर शोभाराम ने कहा—'बीस रुपये की दर से चार चादरों का अस्सी रुपये भाव तय कर आया हूँ।'

बाबा ने कहा—'बड़े महँगे हैं। इतने चादर क्या होंगे? एक काफी है।' इतना कहने के बाद दस-दस रुपये के दो नोट निकालकर उन्होंने शोभाराम को दिये। शेष रकम मुझे वापस करते हुए बोले—'रुपयों का अपव्यय नहीं करना चाहिए।'

मैंने कहा—'ये रुपये सत्कार्य के लिए ले आया था, अतएव वापस ले जाने की इच्छा नहीं है। अन्य किसी धार्मिक कार्य में लगा दीजिएगा।'

बाबा ने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञानगंज से प्रतिवाद किया जायगा। अतएव ज्ञानगंज से आदेश और राय लेनी होगी।' इतना कहकर वे भीतर गये और कुछ देर बाद वापस आकर बोले—'ठीक है, ये रुपये उमा भैरवी ज्ञानगंज के लिए ले जायँगी।'

मैंने कहा—'तब इन रुपयों को आप ही दे दीजिएगा।'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबा ने कहा—'ना-ना। मैं क्यों देने जाऊँगा? स्वयं भैरवी माँ तुम्हारे हाथ से ले जायँगी।'

जाड़े के दिन थे। चादर ओढ़कर बैठा था। बाबा के आदेशानुसार रुपये के लिफाफे को मुट्ठी में कसकर पकड़े, चादर के नीचे छिपाये बैठा उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। इसके बाद मैंने बाबा से पूछा—'ये रुपये कितनी देर में भैरवी माता ले जायँगी?'

बाबा ने कहा—'अभी–तुरत।' इसके बाद बाबा ने मुझसे पूछा–'कुछ अनुभव हुआ?'

मैंने कहा—'स्पन्दन के अलावा कुछ भी अनुभव नहीं हुआ।'

उन्होंने कहा—'जरा लिफाफा खोलकर देखो।'

मैंने चद्दर के नीचे से लिफाफा बाहर निकाला। देखा–जैसा बन्द था, वैसा ही है; पर उसके भीतर रुपये नहीं हैं। लिफाफे से सुगन्ध आ रही थी। इस लिफाफे को काफी दिनों तक सुरक्षित रख छोड़ा था।'

कविराजजी के इन अनुभवों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः ज्ञानगंज स्थूल रूप में है, पर उसे विशिष्ट व्यक्ति देख सकते हैं। इस पुस्तक में जगह-जगह ज्ञानगंज का स्थूल रूप में वर्णन करने पर भी उन्होंने सूक्ष्म ही सिद्ध किया है।

पूज्यपाद विशुद्धानन्दजी से उनके शिष्य यदाकदा अपने कौतूहल को मिटाने के लिए ज्ञानगंज के बारे में सवाल करते थे। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बताया था—'जालंधर से गोगा तक जाने के लिए तरह-तरह की सवारियाँ मिलती हैं। इसके आगे पैदल जाना पड़ता है। लगभग दो माह पैदल चलना पड़ता है। मार्ग में कहीं-कहीं चट्टी (विश्रामस्थल) है जहाँ केवल चिउड़ा और दही मिलता है। रास्ते में बरफ पर चलना पड़ता है। कहीं-कहीं बरफ कीचड़ की तरह नरम हैं जिसमें पैर धँस जाते हैं। बरफ पर चलने लायक एक खास किस्म के जूते मिलते हैं। बहुत कम कीमत है, साढ़े तीन आने। ज्ञानगंज में अनेक ब्रह्मचारी, दण्डी, संन्यासी, तीर्थस्वामी, परमहंस, भैरवी, ब्रह्मचारिणी और कुमारियाँ हैं। आश्रम में सभी को जाने दिया जाता है, पर किसी बाहरी व्यक्ति को रहने नहीं दिया जाता। वहाँ दिन-रात योग-चर्चा, विज्ञान-चर्चा होती है। विज्ञान का अर्थ है--सूर्य विज्ञान, चन्द्र विज्ञान, वायु विज्ञान आदि। परमहंसगण सर्वदा विज्ञान में लगे रहते हैं। वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से कठिन रोगों का इलाज किया जाता है।'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानगंज में निवास करनेवाले लोगों के बारे में बाबा ने कहा है––'ज्ञानगंज के परमहंसों तथा भैरवी माताओं में से अधिकतर लोगों की उम्र चार-पाँच सौ वर्ष से लेकर आठ-नौ सौ वर्ष तक की है। जिन दिनों मैं वहाँ था, पूज्यपाद परमाराध्य गुरुदेव महातपा के आविर्भाव का त्रयोदश शत वार्षिक उत्सव मनाया गया। उनसे भी अधिक उम्रवाली गुरुमाता (जिन्हें वहाँ क्षेपा माता कहा जाता है) जीवित हैं। इतनी उम्र होने पर भी क्षेपा माता देखने में चिरयौवना लगती हैं। उनके सिर के बाल इतने लम्बे, काले और प्रचुर हैं कि उनका सारा वदन ढक जाता है। कपड़े की आवश्यकता नहीं होती। महातपाजी स्वयं स्थूल-देह के हैं, पर आज तक यातायात में पूर्ण समर्थ हैं। आपके एक हमउम्र भाई हैं। वे वैष्णव हैं, नाम है––भवदेव गोस्वामी। वे ज्ञानगंज या मनोहर तीर्थ में नहीं रहते। तिव्वत में अन्यत्र रहते हैं। महर्षि महातपा के शिष्यों में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं––श्री श्री भृगुराम परमहंस। उनकी उम्र पाँच सौ वर्ष है। वे ही मुझे योग की शिक्षा देते रहे। सूर्य विज्ञान की शिक्षा परमहंस श्री श्यामानन्द देते थे। ज्ञानगंज में विज्ञान-सम्बन्धी सभी विषयों के अधिकारी हैं। ज्ञानगंज में विज्ञान द्वारा प्रस्तुत आकाशयान है जो प्रत्येक रात्रि को पूर्ण चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान रहता है। इस तरह अन्य घटनाएँ हैं।'

बाबा के अनन्य शिष्य श्री अक्षयकुमार दत्तगुप्त ने (जिन्हें बाबा ने लेन्स दिया था) लिखा है—'बचपन में एक दुर्घटना के कारण बाबा के दाहिने पैर का अंगूठा कट गया था। ज्ञानगंज में उनकी उस अँगुली को यंत्र की सहायता से ठीक कर दिया गया था। एक बार बाबा ने एक धनी मारवाड़ी तथा उसकी कन्या को ज्ञानगंज भेजा था। कन्या जवान हो गयी थी, पर उसकी छाती पर यौवन के चिह्न प्रकट नहीं हुए थे। ज्ञानगंज से वह न केवल यौवन के चिह्न लेकर आयी, बल्कि भगवती की तरह रूपवती बनकर लौटी थी। ज्ञानगंज में बधिरता दूर करने का यंत्र है। उसे यहाँ मँगाने में दो हजार का खर्चा पड़ता है। बाबा ने एक बार कहा था कि अगर कोई धनी दानी मिल जाता तो उस यन्त्र को यहाँ मँगा लेता और अमूल्य की बधिरता दूर कर देता।'

आगे आप लिखते हैं—'ज्ञानगंज के परमहंसों मे श्री अभयानन्द स्वामी को एक बार लोगों ने वर्धमान और एक बार कलकत्ते के गंगा-तट पर देखा था। वर्धमान में उनके आगमन का वर्णन वर्धमान के पुलिस इंस्पेक्टर तथा हमारे गुरुभाई उपेन्द्र चौधरी ने दिया है। इसका उल्लेख 'विशुद्धानन्द प्रसंग' के तीसरे खण्ड में प्रकाशित है। उनका एक चित्र 'योगिराजाधिराज' में प्रकाशित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं जैसे साक्षात् महेश्वर की मूर्ति है। सर्वश्री नीमानन्द और उमानन्द स्वामी कभी-कभी आते हैं। नीमानन्दजी वही स्वामी हैं जिन्होंने गुरुदेव को कुत्ते के काटने पर दवा दी थी और अपने साथ ज्ञानगंज ले गये थे।

'ज्ञानगंज में एक और परमहंस हैं—स्वामी ज्ञानानन्द। इनका एक और नाम है—कुतुपानन्द। आप थियोसाफिस्ट-समाज में कुथुमी वावा के नाम से परिचित हैं। हमारे गुरुदेव ने हमें यही वताया था। गुरुदेव के पास इनका एक पत्र है जिसमें इनके म्लेच्छ शिष्य हैं, इसका उल्लेख है। कुतुपानन्द की शिष्या मादाम व्लावाट्स्की उन्हें कुथुमी वावा के नाम से सम्बोधित करती थीं। शायद रूसी भाषा के कारण कुतुपानन्द वावा कुथुमी वावा वन गये। श्री विशुद्धानन्द की राय में कुतुपानन्द स्वामी की उम्र लगभग पाँच-छः सौ वर्ष होगी। ज्ञातव्य है कि स्वामी कुतुपानन्दजी को मादाम व्लावाट्स्की तथा कर्नल आलकट देख चुके हैं।

'परमहंस भृगुरामजी को श्रीयुक्त गोपीनाथ कविराज की पत्नी ने एक दिन शाम के वक्त गोपीनाथजी के पूजावाले कमरे में देखा था। उन्हें देखते ही वे वेहोश हो गयी थीं। उनके शरीर की ज्योति प्रातःसूर्य की तरह थी। वावा का कहना था कि योग-क्रिया के कारण उनके देह के उपादान परिवर्तन क्रम के कारण इस तरह का वर्ण हो गया है। रक्तवर्ण ज्योति पिण्ड के रूप में काशी के विशुद्धानन्द कानन में, श्री परमहंस भृगुराम को खिड़की के रास्ते वावा के कमरे में, रात साढ़े तीन वजे प्रवेश करते हुए हमारे गुरुभ्राता स्व० रमेश मैत्र, स्व० देवेन्द्र वनर्जी और इन दोनों की पत्नियों ने देखा था। इस घटना का विवरण मैं रमेश दादा की जवानी सुन चुका हूँ। एक वार भोर के समय स्व० विघुभूषण चटर्जी दादा को श्री भृगुराम का दर्शन और कुछ आदेश प्राप्त हुए थे। भैरवी माताओं में से कुछ वण्डुल (वर्धमान) आश्रम तथा काशी आश्रम में आती थीं। एक वार सन् १९३० ई० में, प्रयाग के कुंभ मेला में श्री वावा के साथ केदार भौमिक तथा अन्य कुछ लोग टहल रहे थे। इन लोगों ने दो युवतियों को देखा। इन्हें देखकर वावा मुस्कराये। आँखों-आँखों में वातें हुई। वाद में वावा ने वताया कि वे दोनों ज्ञानगंज की भैरवियाँ थीं।

'ज्ञानगंज के रहस्य को महिमा-मण्डित किया है वहाँ के परमहंस महात्माओं तथा भैरवी माताओं ने। परमहंसों में श्री श्री भृगुराम, नीमानन्द, श्यामानन्द, ज्ञानानन्द, अभयानन्द, उमानन्द, धवलानन्द एवं परमानन्द (गोस्वामी) के नाम मुझे ज्ञात है। रामानन्दजी का भी नाम सुनने में आता हैं, पर वे परमहंस हैं या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं, पता नहीं। भवदेव गोस्वामी ज्ञानगंज में नहीं रहते। भैरवी माताओं में श्री श्री उमा भैरवी, श्यामा भैरवी, त्रिपुरा भैरवी, ज्ञान भैरवी, आनन्द भैरवी आदि के नाम हमने सुने हैं। इनके अलावा अन्य अनेक परमहंस और भैरवियाँ हैं। बाबा के साथ सभी परमहंसों और भैरवियों का सम्पर्क नहीं था। भृगुराम के शिष्य उमानन्द हैं और श्यामानन्द के शिष्य हैं धवलानन्द। परमानन्द के बारे में जानकारी नहीं है। शेष लोग महर्षि महातपा के शिष्य हैं। भैरवी माताओं के बारे में कोई जानकारी नहीं मिली।

'मनुष्य का रक्त-मांसवाला शरीर वयःक्रम के अनुसार सौ वर्ष तक पहुँच नहीं पाता। उसके पहले ही जीर्ण हो जाता है। ज्ञानगंज के परमहंस और भैरवी माताएँ इस नियम के व्यतिक्रम हैं। योग-क्रिया के कारण उनके शरीर में परिवर्तन हुए हैं। उन्हें भोजन की आवश्यकता नहीं होती और न मलत्याग का झंझट है। जब कि शरीर में अमित शक्ति, ऋद्धि-सिद्धि अतुलनीय, ज्ञान अप्रतिहत है। उनकी गति अबाध है। वे बिना श्रम के घर की प्राचीर को कौन कहे, उच्च पर्वत को निमिषमात्र में पार कर जाते हैं। अति दूर या निकट की कोई वस्तु उन्हें बाधा नहीं दे पाती। देश, काल उनकी गति, चिन्ता या ज्ञान के नियामक नहीं हैं।'

श्री अमूल्य बाबू के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञानगंज स्थूल रूप से तिब्बत प्रदेश में स्थित हैं। कविराजजी ने 'ब्रह्माण्डोनो भेद' नामक गुजराती पुस्तक से उद्धरण देते हुए यह बताया है कि वहाँ विभिन्न प्रान्तों के लोग गये थे। इस पुस्तक में श्री राम ठाकुर से हुई बातचीत का पूर्ण विवरण प्रकाशित है। श्री ठाकुर हिमालय स्थित कौशिक आश्रम में एक अर्से तक थे। इस आश्रम के बारे में कविराजजी का अनुमान है कि वह ज्ञानगंज जैसा एक आश्रम है। विशुद्धानन्दजी के पास ज्ञानगंज से अक्सर पत्र आते थे। उन सभी पत्रों को कविराजजी ने प्रकाशित कराया है जिससे साफ जाहिर होता है कि स्थूल रूप से ज्ञानगंज है जहाँ से कई परमहंस बराबर विशुद्धानन्दजी को पत्र भेजते हुए महर्षि महातपा तथा भृगुराम परमहंस का आदेश लिखते रहे।

फिर भी कविराजजी लिखते हैं—'सिद्धाश्रम साधारण लौकिक आश्रमों की तरह नहीं है। यह सामान्य लोगों को दिखाई नहीं देता। तिब्बती लोग, परिव्राजक या पर्यटकों को इसका पता नहीं चलता। इस वजह से कोई संन्यासी (भारतीय) या पर्यटक (विदेशी) इस ज्ञानगंज की सिद्धभूमि से परिचित नहीं है और उसके बारे में विवरण पाना सम्भव नहीं है। स्थूल भूमि में अव-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थित रहने पर भी वह भौतिक स्थान नहीं है। वास्तव में वह जिस प्रकार स्थूल नहीं है, ठीक उसी प्रकार सूक्ष्म भी नहीं है। दूसरी ओर स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही है। सिद्ध महापुरुषों के दर्शन कर लेने के बाद वह अदृश्य हो जाता है, ऐसी है सिद्धाश्रम की स्थिति। स्थूल दृष्टि से स्थूल है तो सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म। इसीलिए समन्वययुक्त है। अनेक लोग या व्यक्ति स्थूल दृष्टि से इसकी खोज में जाते हैं और व्यर्थ का चक्कर काटकर वापस आते हैं। आश्रम के अधिकारियों की आज्ञा विना वहाँ जाना असम्भव है, दर्शन करना दूर की बात है।'

अन्त में कविराजजी ने भी ज्ञानगंज के स्थूल रूप को स्वीकार किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ज्ञानगंज एक रहस्यमय आश्रम है जो सचराचर पर्यटकों को दिखाई नहीं देता। यहाँ तक कि स्वयं तिब्बत के लोग भी इस स्थान से अपरिचित हैं। अगर तिब्बत के निवासियों को इस स्थान की जानकारी होती तो इसका कोई तिब्बती नाम अवश्य होता। जिस प्रकार मानस-सरोवर का नाम 'त्सो मावाङ' या 'त्सो माफाम' है, रावण-ह्रद का नाम 'लांगाक त्सो' है, गौरीकुण्ड का नाम 'थुक्की जिग वू' और कैलास का नाम 'डेम छोक' रखा है, उसी प्रकार ज्ञानगंज का कोई तिब्बती नाम अवश्य होता। इससे यह स्पष्ट है कि ज्ञानगंज स्थूल होते हुए भी सूक्ष्म है।

कविराजजी इसी पुस्तक में एक जगह लिखते हैं—'यह सिद्धस्थान तिब्बतीय गुप्त योगियों की भाषा में 'ज्ञानगंज' के नाम से प्रसिद्ध है।

'ज्ञानगंज की चर्चा करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि यह स्थान साधारण भौगोलिक स्थान नहीं है। यद्यपि यह गुप्त रूप से भूपृष्ठ पर विद्यमान है तथापि इसका वास्तविक स्वरूप काफी दूर है।····भौम (भूमि-सम्बन्धी) ज्ञानगंज कैलास के आगे ऊर्ध्व में स्थित है। फिर भी वह साधारण पर्यटकों की गति-विधि से अतीत है।'

ज्ञानगंज के बारे में काफी उत्सुकता और कौतूहल शिष्यों में था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जीवनशंकर याज्ञिक पुस्तकालय से तिब्बत का बृहद् मानचित्र मँगाकर 'ज्ञानगंज' की तलाश करते रहे। लेकिन इसका पता उन्हें नहीं लगा। यह विस्मय की बात नहीं है। मानचित्रों में राजनीति और भौगोलिक विवरण नहीं रहता। ज्ञानगंज इस श्रेणी में नहीं आता।

अन्त में श्री अक्षयकुमार दत्तगुप्त के विचार को पढ़ लेना आवश्यक है जिसकी पूर्ति कविराजजी ने इस पुस्तक के माध्यम से की है। दत्तगुप्तजी लिखते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं—'ज्ञानगंज की आध्यात्मिक सत्ता के विषय में हम लोग बाबा की जबानी सुनते रहे। कहीं हम गलत समझ न बैठें, इसलिए विस्तार से नहीं कहते थे। इस विषय पर हृदयंगम करने के अधिकारी के रूप में उन्हें श्रीयुक्त गोपीनाथ कविराज प्राप्त हुए थे। वे जितने गम्भीर विद्वान् हैं, उतनी ही उनमें मनीषा है और साथ ही उनमें क्रिया-बल है। इसलिए उनके निकट ही तत्त्वकथा प्रकट करते रहे, अन्य किसीके आगे नहीं। भविष्य में उनके द्वारा हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे।'

दत्तगुप्तजी की इस आकांक्षा की पूर्ति इस पुस्तक के माध्यम से श्रद्धेय कविराजजी ने की है। इसमें ज्ञानगंज की आध्यात्मिक व्याख्या विस्तार से की गयी है। यद्यपि वे ज्ञानगंज के बारे में सारी बातें जानते थे, पर उसका स्थूल परिचय उन्होंने इसलिए नहीं दिया ताकि लोग उत्सुकतावश उस स्थान तक जाकर निराश न लौटें।

ज्ञानगंज के बारे में अनेक पाठकों को उत्सुकता है, उसकी निवृत्ति इस पुस्तक से अवश्य हो जायगी। इस संकलन में कविराजजी के दो अलभ्य लेख प्रकाशित किये जा रहे हैं जो 'सिद्धभूमि' तथा 'सिद्धों की भूमि तिब्बत' के नाम से प्रकाशित हैं। दोनों हो लेख ज्ञानगंज की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं।

—विश्वनाथ मुखर्ज

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुक्रम

ज्ञानगंज और श्री श्री विशुद्धानन्द	१
ज्ञानगंज-रहस्य	३७
देह और कर्म एवं ज्ञानगंज की सारकथा	६९
ज्ञानगंज की पत्रावली	९१
राम ठाकुर की कहानी और कौशिक आश्रम सहित ज्ञानगंज का विवरण	११६
सिद्धभूमि	१३१
सिद्धों की भूमि तिब्बत	१४१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

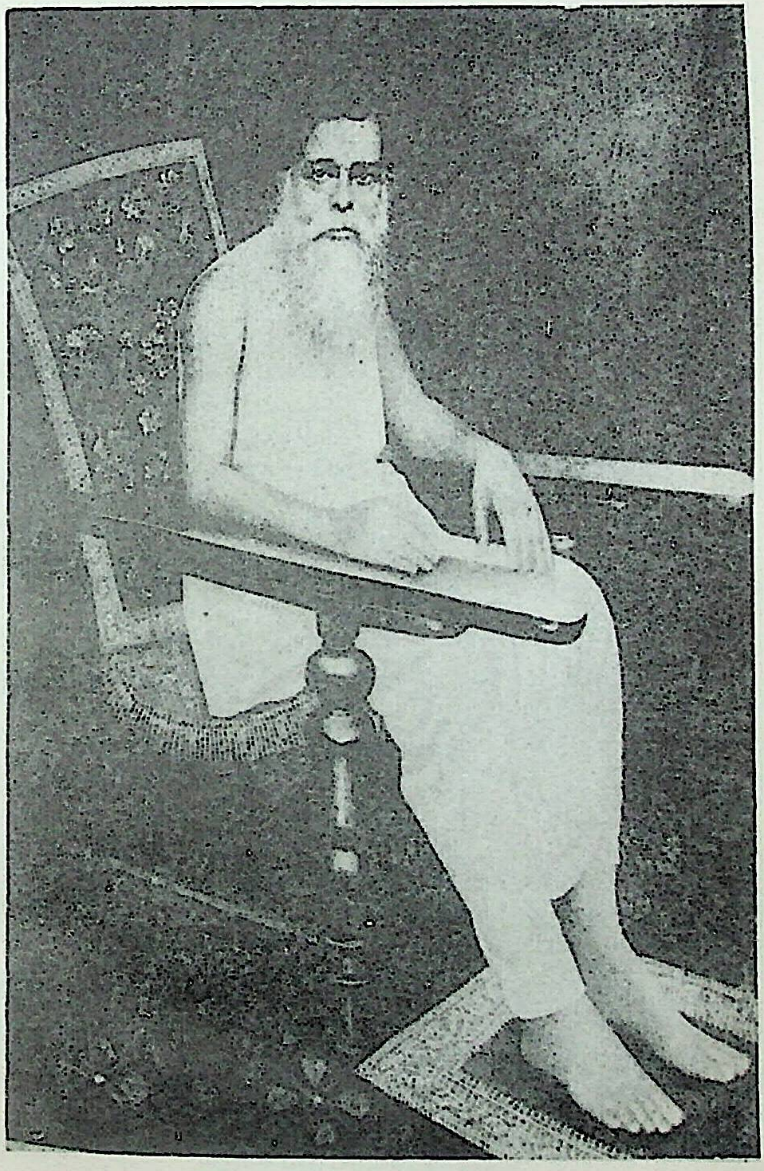

स्वामी विशुद्धानंद परमहंस

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

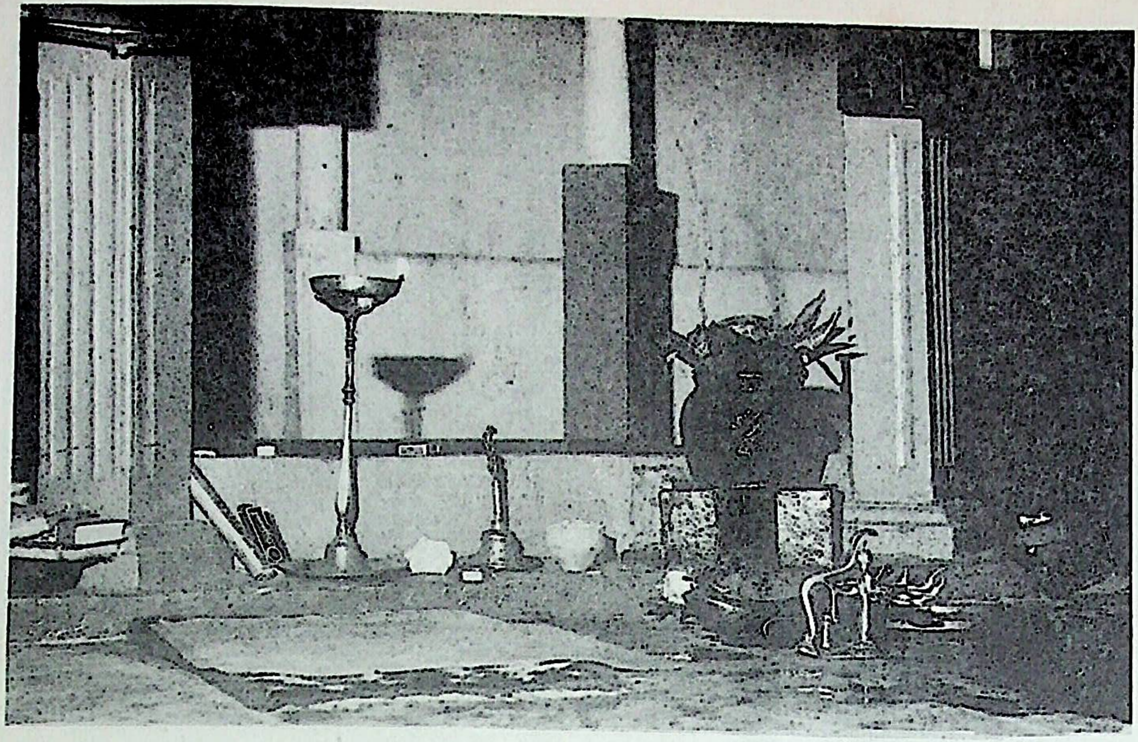

विशुद्धानंद कानन आश्रम, वाराणसी, में नवमुण्डी सिद्धासन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

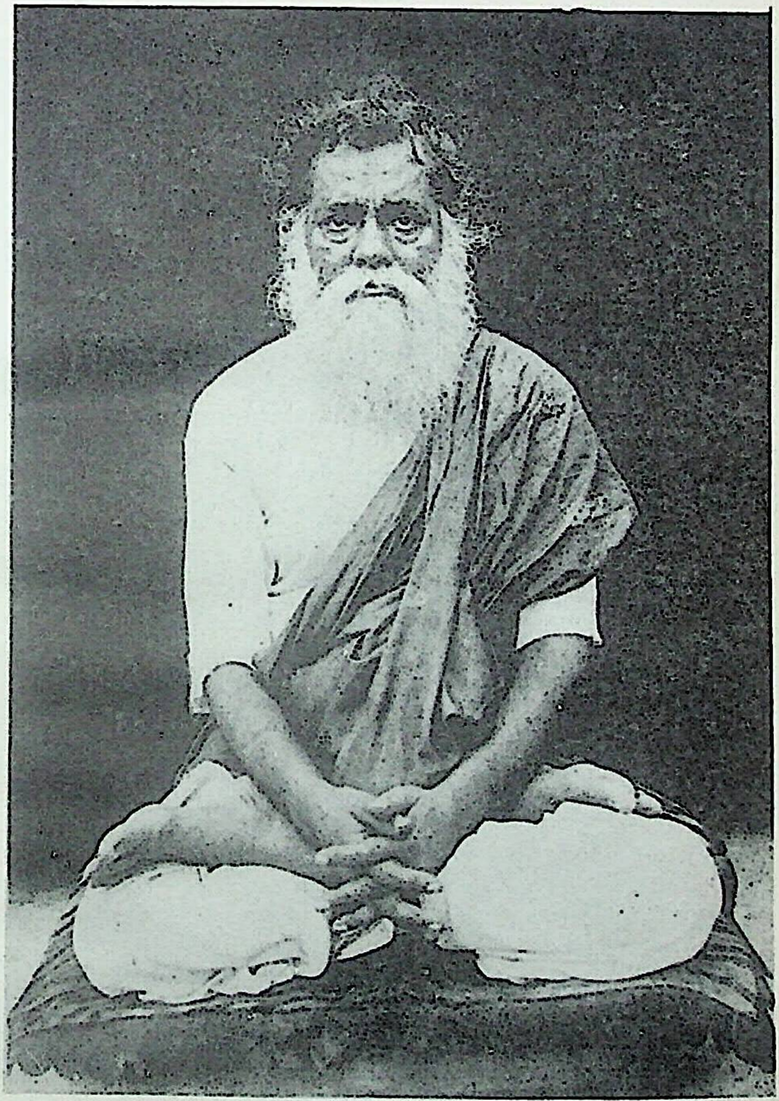

स्वामी विशुद्धानंद परमहंस

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

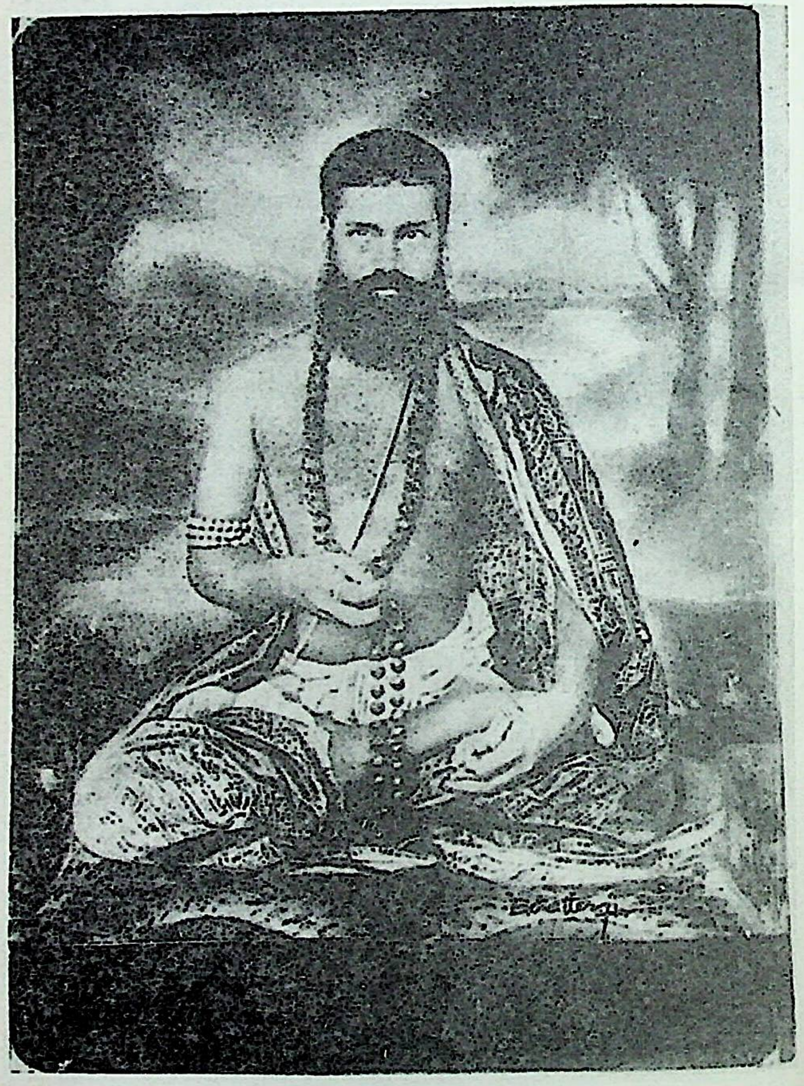

स्वामीं विशुद्धानंद परमहंस
तिब्बत में साधनारत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानगंज
और
श्री श्री विशुद्धानन्द

जिस महापुरुष की पुण्यमयी स्मृति-चर्चा करने के लिए आज प्रवृत्त हुआ हूँ, वे थे एक आदर्श चरित्रयुक्त योगी। इस तरह के शुद्ध और पवित्र जीवन, कर्म, ज्ञान और भक्ति की पराकाष्ठा तथा माधुर्य का अपूर्व सम्मिलन जगत् में अति विरल है। उनके पुण्य जीवन की पर्यालोचना करके अपने को धन्य समझूंगा, इसी आशा से आज इस प्रसंग की अवतारणा करने के लिए तैयार हुआ हूँ। उनकी जीवनी लिखने की धृष्टता मैं नहीं कर सकता। जिनके लोकातीत जीवन का एक कण समझ पाने पर ऐसा लगता है कि जीवन सफल हो गया, जिनकी असंख्य विभूतियों के दो-एक सामान्य स्फुरण मात्र प्रत्यक्ष रूप में देखने के बाद विस्मय से अभिभूत होना पड़ता है, जिनकी स्थूल देह तक हम लोगों के सूक्ष्मतम विचारों से अनायत्त है, उनका जीवन-चरित्र की रचना करने की प्रवृत्ति मेरी नहीं हो सकती।

काल-प्रभाव से सद्धर्म का आदर्श मलिन हो गया है। मनुष्य ऋषिजनोचित दिव्यभाव से च्युत होकर जीवन का वास्तविक लक्ष्य भूल गया है, असार को सार समझकर उसीके अन्वेषण में अपना अमूल्य समय और शक्ति नष्ट कर रहा है। शास्त्र और ऋषि वाक्यों का विश्वास खो बैठा है—न वह तपस्या है, न वह सरलता है, सत्य के साथ परिचय न रहने से वह श्रद्धा और सत्यानुराग भी नहीं है। उसकी देह अशुद्ध, मन अपवित्र, हृदय संकीर्ण, दृष्टि क्षीण और बुद्धि जड़भावापन्न हो गयी है। भला वह कभी धर्म का यथार्थ रूप देख पायेगा? देख नहीं पायेगा, इसीलिए उसका संशय दूर नहीं होता, विचारों का मोह दूर नहीं होता, सत्य के उदार और माधुर्यमय रूप का आकर्षण अनुभव में नहीं आता। इसीलिए उसके विक्षिप्त चित्त की चंचलता किसी भी उपाय से दूर नहीं होती। जिस सुधा के आस्वादन के लिए अमरधाम के अधीश्वर से क्षुद्रतम कीट तक निरन्तर सतृष्ण भाव से चारों ओर घूमते रहते हैं, जिनका

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्षीण आभास पाते ही मुग्ध जीव क्षणभर के लिए अपने को कृतकृत्य समझता है, जिसे न पाने तक वह किसी भी दशा में तृप्ति लाभ नहीं करता, उसकी अशान्ति दूर नहीं होती, वासनाबद्ध बहिर्मुख जीव को उस अमृतधारा का पान कराने के लिए युग-युग से महापुरुषगण कल्याण-मयी जगन्माता की प्रेरणा से मर्त्यभूमि में, सद्गुरुरूप में आविर्भूत होते रहते हैं।

मैं जानता हूँ कि यह स्मृति-चर्चा करने का अधिकार मुझे नहीं है। शुचि और संयत हुए बिना जिस प्रकार देवगृह में प्रवेश और देवार्चना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार मलिन और चंचल अन्तःकरणवाले के लिए पुण्यश्लोक महापुरुषों का स्मरण करना निषिद्ध है। इसे जानते हुए, अपनी अयोग्यता को सम्पूर्ण रूप से हृदयगम करते हुए भी—मैं वर्तमान प्रसंगालोचना में प्रवृत्त हुआ हूँ, इसके पीछे कारण है।

रात्रि के बाद प्रभात होते ही उन्होंने देखा—एक अपूर्व स्थान में उपस्थित हुआ हूँ। पूछने पर उन्हें मालूम हुआ कि उत्तरापथ में यह एक प्रसिद्ध अथच अति दुर्गम योगाश्रम है।

चारों ओर उत्तरंग पर्वतमाला नील मेघराजि की तरह शोभायमान है, बीच-बीच में झरने और गिरि नदियाँ झंकार के साथ प्रवाहित हो रही हैं। उपत्यका के मध्यस्थल में लगभग ७-८ मील इर्द-गिर्द क्षेत्र में एक विराट् आश्रम है। आश्रम के चारों ओर ऊँची दीवारें हैं, प्राकार के चारों ओर जलपूर्ण परिखा है, बाहर आने-जाने के लिए परिखा के ऊपर रमणीय धनुषाकार सेतु बने हुए हैं। आश्रम स्थान-स्थान पर सजा हुआ है, शिक्षा के क्रम के अनुसार स्तरों को सजाया गया है। आश्रम में योग और विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था अत्यन्त चमत्कृत है। दीक्षा के पश्चात् शिक्षा के लिए ब्रह्मचर्य अवस्था में अधिकांश समय इस स्थान पर सभी को व्यतीत करना पड़ता है। विज्ञान का विभाग स्वतन्त्र है—यह विभाग सम्पूर्ण रूप से एक पृथक् आचार्य के अधीन हैं। उनका नाम है श्री श्रीमत् श्यामानन्द परमहंस। आश्रम के मुख्य अधिष्ठाता श्री श्रीमत् ज्ञानानन्द परमहंस हैं। यह स्थान काफी प्राचीन है, प्रवाद है कि इसका प्राचीन नाम—'इन्द्र भवन' था। बाद में ५-६ सौ वर्ष पहले इस स्थान का संस्कार करके पूजनीय श्रीयुक्त ज्ञानानन्द स्वामी ने यहाँ की व्यवस्था और संरक्षण का भार ग्रहण किया। अभी भी वे इसके मुख्य अधिष्ठाता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। यहाँ अनेक लोग रहते हैं। उनमें निम्नलिखित श्रेणी के लोग उल्लेखनीय हैं—

१. ब्रह्मचारी युवक।

२. कुमारी। ये सभी ब्रह्मचारिणी हैं।

३. विज्ञान शिक्षार्थी। इनमें अधिकांश प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

४. सिद्ध परमहंस। इस श्रेणी के जितने महात्मा यहाँ हैं, उनकी संख्या नितान्त कम नहीं है। इनके वयःक्रम इतने अधिक हैं जो साधारण लोगों के निकट विश्वसनीय नहीं है। २००-३०० से हजार साल तक के लोग यहाँ वर्तमान हैं। सिद्ध महापुरुषों में अधिकतर लोग 'आहार' नहीं करते—पर जो लोग उतना उत्कर्ष प्राप्त नहीं कर सके हैं, वे सामान्य कुछ ग्रहण मात्र करते हैं।

भोलानाथ (श्री विशुद्धानन्द परमहंस का पूर्वनाम) ज्ञानगंज में ८-१० दिन जब व्यतीत कर चुके तब पूज्यपाद नीमानन्द स्वामी अपने गुरुदेव श्री श्रीमत् महातपाः के पास उन्हें ले गये और उनके साथ उन्होंने परिचय कराया। सुनने में आता है कि महातपाः की उम्र १२०० वर्ष से अधिक है। वे एक अतिशक्तिशाली महायोगी पुरुष हैं। वे साधारण तौर पर उक्त आश्रम में नहीं रहते। उनका कोई आश्रम नहीं है। तिब्बत में वे जिस स्थान पर रहते हैं, वहाँ एक गुफा है—उसमें राज-राजेश्वरी देवी की पाषाण मूर्ति स्थापित है, इसीलिए उसे 'राजराजेश्वरी मठ' कहा जाता है। वास्तव में वहाँ घर-द्वार कुछ भी नहीं है। वहाँ जो लोग रहते हैं, उन्हें घर-द्वार की जरूरत भी नहीं है। महर्षि महातपाः अधिकतर यहीं रहते हैं। शायद ही कभी योगाश्रम आते हैं। कभी-कभी अपनी गुरुमाता क्षेपामाई के निकट मनोहर तीर्थ जाते हैं। हिमवत् प्रदेश में उक्त योगाश्रम की तरह और भी कई मठ हैं। वे सभी राजराजेश्वरी मठ के शासनाभुक्त हैं। महर्षि साधारणतः बातचीत नहीं करते। सर्वदा अपने भाव में विलीन रहते हैं—बाह्य जगत् के समाचारों से सम्पर्क नहीं रखते। उनके प्रधान शिष्य श्री श्रीमद् भृगुराम परमहंसदेव उन सभी मठों के प्रधान अधिष्ठाता और कार्यकर्ता हैं। वे परिदर्शक, नियामक, परीक्षक—सब कुछ हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हमने परमहंस नीमानन्द, श्यामानन्द और ज्ञानानन्द की बातें कही हैं—वे सभी भृगुराम स्वामी के गुरुभाई हैं। पर योगैश्वर्य में भृगुराम एकमेवाद्वितीयम् हैं।

महर्षि महातपाः ने भोलानाथ के सिर को स्पर्श करते हुए शक्ति संचार किया और बीजमन्त्र दान किया—दीक्षा देकर उन्हें शिष्य के रूप में ग्रहण किया। दीक्षान्त में शिक्षा के लिए कुछ दिनों तक योगाश्रम में रहना पड़ता है। वहाँ की शिक्षा प्रणाली अत्यन्त विचित्र है। परमहंस श्यामानन्द के निकट भोलानाथ ने सूर्यविज्ञान की शिक्षा प्राप्त की और परमहंस भृगुराम ने उन्हें योग की शिक्षा दी। यह शिक्षा दीर्घकालव्यापी रही। अनेक वर्षों तक अक्लान्त अध्यवसाय, असीम धैर्य और विपुल परिश्रम के साथ भोलानाथ ने विज्ञान और योग दोनों विद्याओं में पारदर्शिता अर्जित की।

विज्ञान की बात सुनकर कोई यह न समझ ले कि यह पाश्चात्य विज्ञान की तरह जड़ विज्ञान है। वास्तव में जड़ के नाम से कोई पृथक् वस्तु नहीं है। हम लोग जिसे सामान्य तौर पर जड़ कहकर वर्णन करते हैं, वह भी एकान्तभाव से जड़ नहीं है। 'विशिष्ट ज्ञान' ही विज्ञान-शब्द का अर्थ है। तथाकथित जड़ और चेतन। दोनों ही विज्ञान के विषय हैं। सूर्य इसका केन्द्रस्वरूप और प्रधान आश्रय है, इसलिए इसे सूर्य विज्ञान कहा जाता है। शास्त्र में है कि एक ऐसा पदार्थ है जिसका ज्ञान-लाभ करने पर सर्वविषयक विज्ञान स्वतः उपलब्ध हो जाता है। श्रुति का यह अनुशासन ब्रह्म विज्ञान अवलम्बन कर प्रवृत्त हुआ है। किन्तु उस विज्ञान का स्वरूप कैसा है, किस उपाय से उसे कार्यक्षेत्र में उपयोग किया जा सकता है, जिन्होंने इसका विशेष रूप से अनुसंधान किया हैं, वे ही जानते हैं कि सूर्य ही सभी प्रकार के विज्ञानों का मूल स्तम्भ है। सृष्टि, स्थिति, संहार—अर्थात् जागतिक व्यावहारिक सभी व्यापार सूर्याधीन हैं। इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का प्रसार सूर्य से हो रहा है। केवल यही नहीं, सूर्य ही देवयान पथ के लक्ष्यस्वरूप हैं। इसे अगर मुक्तिद्वार कहते हुए वर्णन किया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। विशुद्ध आत्मज्ञान—स्वरूपोपलब्धि—करने के लिए सौरतत्त्व का आश्रय ग्रहण करना निश्चित रूप से आवश्यक है। अतएव योग का जो चरम उद्देश्य हैं, वही विज्ञान का भी है। सूक्ष्मरूप से आलोचना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करने पर समझ में आ जाता है कि विज्ञान भी एक प्रकार का महायोग है। हम जिसकी व्याख्या योग के रूप में करते हैं, वह मूलतः विज्ञान के अलावा अन्य कुछ नहीं है। केवल प्रणाली में भेद है। इसलिए साधक के लिए दोनों ही समभाव में आवश्यक हैं। योग मार्ग में विज्ञान एवं विज्ञान-मार्ग में योग परम सहायक है।

सूर्य-विज्ञान आयत्त होने पर अन्य विज्ञान—जो उसके अंगमात्र हैं—सहज ही आयत्त होते हैं। योगशास्त्र में सर्वज्ञातृत्व एवं सर्वभावाधिष्ठातृत्व नामक विशिष्ट सिद्धि जैसे सभी खण्ड सिद्धियों का चरम उत्कर्ष है, विज्ञान-राज्य में सौर-विज्ञान का तद्रूप प्राधान्य लक्षित होता है। चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान, स्वर-विज्ञान, देव-विज्ञान आदि सौर-विज्ञान के अन्तर्गत हैं, खण्ड-विज्ञान विशेष।

भोलानाथ अनन्यसाधारण प्रतिभा के बल से योग और विज्ञान दोनों ही क्षेत्रों में, समभाव से प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे। इस तरह का मणिकांचन योग अन्यत्र दुर्लभ है। प्राचीन ऋषियों में शिक्षा का जो उत्कर्ष था, उसे गुरुकृपा और स्वीय अध्यवसाय के बल से उन्होंने उपार्जन किया था। इसीलिए जगत्, जगदीश्वर और अनादि महाशक्ति के रहस्य को प्रत्यक्ष करने में समर्थ हुए थे—प्राकृतिक शक्तिमाला को स्वकीय इच्छा के वशवर्तिनी कर लेने का अधिकार उन्होंने प्राप्त कर लिया था, लक्ष्य एवं अपने में किसी प्रकार का आवरण रहने नहीं दिया। केवल शास्त्रवाक्य सुनने से धर्म-जीवन-प्राप्त नहीं होता। शास्त्र वाक्य आर्ष होने पर भी, एक दृष्टि से अभ्रान्त होने पर भी, पूर्णज्ञान प्रसव नहीं कर सकता। केवल वाक्य से वस्तुविषयक प्रत्यक्षज्ञान का जन्म नहीं होता और प्रत्यक्ष के बिना आवरण भङ्ग नहीं होता। गुरूपदेश अवलम्बन करते हुए धैर्य, श्रद्धा, संयम और अध्यवसाय के साथ, अक्लान्त भाव से कठोर तपस्या करते हुए उन्होंने जिस गम्भीर सत्य की, हृदय के अन्तर्देश में उपलब्धि की थी, संशयरहित परिपूर्ण जिस विज्ञानतत्त्व को आयत्त किया था, वह केवल ग्रन्थपाठ से सम्भव नहीं होता।

ब्रह्मचर्य के द्वादश वर्ष का समय कठिन परिश्रम करते हुए वे साधना करते रहे। जो विराट्-शक्ति जगत् के अन्तर में रहते हुए अनन्य भाव से समग्र जगत् का संचालन कर रही है; जिसके नियन्त्रण से चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वायु, वरुण आदि सभी पदार्थ स्व-स्व निर्दिष्ट-कर्म यथानियमानु-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सार सम्पादन कर रहे हैं; तिलमात्र भी कर्तव्यच्युत होने में समर्थ नहीं होते—जिनकी मंगलमय विधान से सन्तान-प्रसव के पूर्व से उसके आहार के लिए मातृस्तन्य में अमृतधारा की व्यवस्था रहती है, उसी विश्वजननी आनन्दमयी महाशक्ति पर निर्भर रहने से जीव को किसी विषय की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहती। जब सुख-दुःख में, उत्थान-पतन में, अन्तर-बाहर में, स्वप्न-शयन-जागरण में, सर्वावस्था में एकमात्र उनकी मंगलमय सत्ता प्रत्यक्ष होती है तब क्षुद्र अहंकार सूर्यालोक में नक्षत्र पंक्ति की भाँति कहाँ अदृश्य हो जाते हैं, इसका पता नहीं चलता। ब्रह्मचर्यावस्था में इसी तरह नियन्त्रित करना पड़ता है, जिससे साधक का अहङ्कार दमित होकर वास्तविक निर्भरशीलता उपलब्धि प्राप्त कर सके, साधक यदि निर्भरशील हो जाय तो उसमें भय या उद्वेग नहीं रहेगा—भगवान् स्वयं ही उसके योग-क्षेम को वहन करते हैं।

योग विभूति के बारे में विभिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं। प्रसंगवश यहाँ दो-एक बात कह रहा हूँ—आत्मज्ञान का उन्मेष हुए बिना वास्तविक योगविभूति प्रकाशित नहीं होती। भगवान् शंकराचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध 'दक्षिणामूर्तिस्तोत्र' में 'सर्वात्मकभाव' को महाविभूति कहते हुए वर्णन किया है। सुरेश्वराचार्य ने अपने वार्तिक में स्पष्ट रूप से कहा है कि जैसे पुरुष के दौड़ने पर उसकी छाया उसका अनुसरण करती है, उसी प्रकार आत्मा या ईश्वर का स्वरूप उपलब्ध होने पर ऐश्वर्य स्वभावतः प्रकट हो जाता है—आत्मा से ऐश्वर्य की पृथक् सत्ता नहीं है। ब्रह्मचर्य अवस्था में बिन्दु का शोधन और स्थिरता सम्पादित होती है—वही जीवदेह का सत्त्व है। उसके सिद्ध होने पर, अर्थात् साधना के बल से देह शुद्ध होने से—भूतशुद्धि और चित्तशुद्धि अधिकृत होने से—सभी सिद्धियाँ अपने आप उपस्थित हो जाती हैं, उसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

ऐसी स्थिति में भोलानाथ ने योगीजन वांछित अतिदुर्लभ और दुष्कर नाभि धौति क्रिया प्राप्त की थी। अति दीर्घकाल तपस्या करने और कठोर नियम पालन करने, अनेक प्रकार की क्षमता से सम्पन्न होने पर भी नाभि-धौति का अधिकार प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसी बात से यह समझा जा सकता है कि वास्तव में इस क्रिया का योग मार्ग में कितना उच्चस्थान है। सच तो यह है कि योग की यही एक तरह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से शेष क्रिया है। किरात-धौति नाभि-धौति की उन्नत अवस्था है। मखमल या अन्य कोई शुद्ध वस्त्र का २५-३० हाथ लम्बा एक टुकड़ा लेकर उसे नाभि से मुँह तक यथाविधि अनुलोम और विलोम प्रणाली में बार-बार चलाना पड़ता है। इस धौति कार्य में जब तक अच्छा अभ्यास न हो तब तक 'चात्वर' या आकाश-गमन की क्षमता पूर्ण नहीं होती। दीर्घकाल तक प्रयत्न करने तथा प्रचलित कुम्भक के द्वारा शून्य में उठा जरूर जा सकता है, किन्तु उत्थित अवस्था में बातचीत नहीं की जा सकती, यहाँ तक कि कोई-कोई बाह्यज्ञान तक खो बैठते हैं। इसके अलावा ऊर्ध्व वायुमण्डल में चलते वक्त समय-समय पर प्रतिकूल प्रवाहशील वायु का आघात लगने से पतन का भय उत्पन्न होता है। नाभि-धौति में परिपक्वता कर लेने पर देह शून्यमय[1] हो जाता है। समग्र देह को संकुचित और प्रसारित करने की क्षमता का विकास होता है। उस वक्त एक लोमकूप के जरिये एक अति बृहत् पदार्थ भीतर प्रवेश किया जा सकता है।[2] शरीर के किसी भी अंश को तब अपनी इच्छा के अनुसार क्षुद्र या बृहत् बनाया जा सकता है। किरात धौति के द्वारा देह को शुद्ध कर उसके किसी अंग में वायु पूर्ण करके रखने का नाम ही है किरात कुंभक। इस कुम्भक के बल से शून्य में उठ जाने पर बातचीत करने में कोई बाधा नहीं आती, यहाँ तक कि बातचीत करते हुए उठा जा सकता है। बाह्यज्ञान रहता है अथच बाह्य विषयों में सम्पूर्ण निर्लिप्तता उत्पन्न होती है। नासिकादि द्वारा वायु ग्रहण करने पर साधारणतः वह नहीं होता। परकाया प्रवेशादि के लिए भी साधारण कुम्भक की अपेक्षा किरात कुम्भक अधिक उपयोगी है। किरात-कुम्भक के द्वारा जब देह में विशुद्ध वायु भर ली जाती है तब किसी सूरत से अभिभूत कर नहीं पाता। अतिप्रबल और शक्तिशाली तेजोराशि के दर्शन और संस्पर्श से भी तब ज्ञान नष्ट नहीं होता।

---

१. पूज्यपाद श्रीयुक्त भृगुराम परमहंस महादेव आकाश-मार्ग से आते-जाते थे—वे कभी भूमि स्पर्श नहीं करते थे। स्थूल देह लेकर सूर्यलोक में जाने की क्षमता वर्तमान समय में एकमात्र उनमें ही है, ऐसा सुनने में आया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका स्थूल शरीर हमारी देह की तरह पांचभौतिक और षाट्कौशिक देह नहीं है। यह 'सिद्धदेह' है।

२. इसीलिए ''अमनस्क'' ''योगवीज'' आदि योगशास्त्रीय ग्रन्थों में 'योगदेह' को 'आकाशदेह' कहा गया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सन् १९१७ ई० के दिसम्बर मास में मैंने सर्वप्रथम बाबाजी के श्रीचरणों का दर्शन किया था। यह आज बहुत दिनों पहले की पुरानी बात है। किन्तु आज भी वह मेरे स्मृति-फलक पर उज्ज्वल भाव में अंकित है। उस समय अपराह्ण हो गया था, शायद चार बजे का समय था। एक बंगाली ब्रह्मचारी युवक के साथ मैं हनुमानघाट के समीपस्थ आश्रम (दिलीपगंज, विशुद्धानन्द कुटीर) के दो तल्ले के एक कमरे में महापुरुष से साक्षात्कार के लिए गया। जाकर देखा—सम्पूर्ण कमरा लोगों से भरा हुआ है, एक ओर एक चौकी के ऊपर रखे व्याघ्रचर्म आसन पर महापुरुष बैठे हैं। सुन्दर सदानन्द मूर्ति, प्रसन्न वदन, उज्ज्वल नेत्र, दीर्घ विलम्बित श्मश्रु, प्रशस्त ललाट, परिधान में गैरिक वसन पहने हुए हैं। देखते ही लगा, जैसे प्रज्ञा और करुणा की मूर्ति परिग्रहपूर्वक त्रिपाप तापित मर्त्यधाम के उद्धार की साधना के लिए अवतरित हुए हैं। भारतीय सिद्ध पुरुष और दार्शनिक मण्डली में अग्रगण्य महामहेश्वर अभिनवगुप्तपाद की कूर्चोज्ज्वल शान्त मूर्ति की स्मृति को उनके शिष्यों द्वारा वर्णित हुआ है—बाबाजी का दर्शन करते ही मेरे चित्त में वैसी पवित्र मूर्ति की स्मृति जाग उठी। बाबा के कमरे में प्रवेश कर उन्हें प्रणाम किया, इसके बाद उनके पलंग की बायीं ओर बैठ गया। ब्रह्मचारीजी जरा दूर बैठे। बाबा ने मेरा नाम, कहाँ रहते हो, क्या करते हो आदि बातें पूछीं। मैंने उत्तर दिया। मैं नवागत था, इसलिए बैठे-बैठे सब देखता रहा।

उस समय बाबा सूर्यविज्ञान के कुछ खेल दिखा रहे थे। सूर्यविज्ञान क्या है, यह मैं नहीं जानता था। पहले कभी सुना भी नहीं था। सुना कि इसके द्वारा सृष्टि, संरक्षण और ध्वंस सब कुछ हो सकता है। आप तिब्बत के अन्तःपाती ज्ञानगंज नामक गुप्त योगासन पर योग-साधना के लिए काफी दिनों तक बैठे थे। उस समय वहाँ नाना प्रकार की विज्ञान-शिक्षा प्राप्त करते रहे। इन विज्ञानों में सूर्य-विज्ञान मुख्य था। मैंने यह भी देखा कि घर में प्रार्थियों की इच्छा के अनुसार किसीके हाथ में, किसीके रूमाल में और किसीकी चद्दर के छोर पर केवल दाहिने हाथ की अँगुली स्पर्श कर सुन्दर गन्ध दे रहे हैं। ये सभी गंध न केवल आकर्षक थे, बल्कि दीर्घकालस्थायी होते थे। कपड़ों को कचारने पर भी गंध दूर नहीं होती थी। जिसने जिस सुगन्ध की माँग की, उसे वही उन्होंने दिया था। चन्दन, गुलाब, हीना, खसखस, चम्पा,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बेला, जूही आदि सुगन्ध दी थी। किसी-किसीके साथ योग और अध्यात्म के बारे में बातें करते रहे। लोगों के प्रश्नों के उत्तर देते रहे। कभी कोई ज्ञानगंज के बारे में कुछ जानने की उत्सुकता दिखाता तो उसे उस विषय की समुचित जानकारी देते रहे।

अनेक व्यापार देखे, अनेक तरह की बातें सुनीं। ब्रह्मचारीजी कुछ देर रहने के बाद चले गये। यह देखकर मैं चकित रह गया।[१] आज तक इस प्रकार जोरदार शब्दों में किसीको तत्त्वोपदेश देते नहीं देखा है। प्रथम दर्शन में ही मेरा मन उनके श्रीचरणों में नत हो गया। समझ गया कि आज तक मैं जो कुछ खोज रहा था, वह यहाँ मिलेगा। कवि ने कहा है—"मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्"। जन्मान्तर के सम्बन्धमूलक संस्कार सभी के चित्त में विद्यमान रहते हैं, बाद में विशिष्ट उद्दीपक कारणों का योगायोग होने पर उक्त सभी संस्कार उद्‌बुद्ध होकर स्मृति के रूप में परिणत हो जाता है। तब पूर्वजन्म के अनुभूत सम्बन्ध आदि चित्त की आपेक्षिक विशुद्धि के अनुसार स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से तैरने लगते हैं। बाबाजी का दर्शन करने के साथ ही मुझे ऐसा अनुभव होने लगा—"आप चिरदिनों से परिचित हैं, जैसे अनेक दिनों से अन्तरंग सम्बन्ध है जो आज अर्द्धस्वच्छ आवरण के व्यवधान को भेदकर प्रकट हो गया है।" प्रथम-दर्शन से ही वे भी मुझे अति-परिचित की तरह स्नेह के साथ देखने लगे।

---

१. इस वर्णन के बारे में एक श्लोक है। वह यों है—

आनन्दान्दोलिताक्षः स्फुटकृततिलको भस्मना भालमध्ये
रुद्राक्षोल्लासिकर्णः कसितकचभरो मालया लम्बकूर्चः।
रक्तांगो यक्ष-पंकोल्लसदसितगलो लम्बमुक्तोपवीतः
क्षौमं वासो वसानः शशिकरधवलं वीरयोगासनस्थः॥

आश्चर्य का विषय यह है कि इस घटना के सत्रह वर्ष बाद श्री अभिनवगुप्त की साक्षात् शिष्य परम्परा में परिगणित साधकश्रेष्ठ काश्मीर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डाक्टर बालकृष्ण कौल को मैंने उनके अनुरोध पर श्री गुरुदेव के निकट लाकर परिचय कराने का सौभाग्य प्राप्त किया था। बालकृष्णजी काशीस्थ तदानीन्तन हिन्दू कालेज के अन्यतम प्रति-ष्ठापक थे। बालकृष्णजी स्वयं भी अभिनवगुप्त की तरह लम्बकूर्चधारी थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैंने पूछा—"बाबा, योगशास्त्र में है कि प्रकृति या उपादानों के आपूरण—अनुप्रवेश के कारण एक प्रकार के पदार्थ अन्य प्रकार के पदार्थ में परिणत हो जाता है। (जात्यन्तर परिणामः प्रकृत्यापूरां), यह कैसे सम्भव होता है ?"

उन्होंने कहा—"हाँ, ऐसा हो सकता है। जगत् के सभी पदार्थों में सभी पदार्थों के उपादान हैं। यह जो गुलाब का फूल देख रहे हो, इसमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो जगत् में न हो। पर गुलाब का उपादान इसमें अधिक मात्रा में है एवं अन्यान्य उपादान अल्प मात्रा में हैं, इसीलिए इसमें गुलाब की प्रधानता रहने के कारण उसकी क्रिया लक्षित होती है। अन्यान्य उपादानों की सत्ता साधारण दृष्टि की पकड़ में नहीं आती। किन्तु जो योगी या विज्ञानविद् हैं, उनकी दृष्टि में सब कुछ प्रतिभात हो जाता है। इच्छा होने पर वे क्रिया-कौशल से, किसी उपादान को बाह्य जगत् से उसके स्वजातीय उपादानों को आकर्षण करके पुष्ट कर सकते हैं। पहले जो अव्यक्त था, तब वह अभिव्यक्त होगा और जो अभिव्यक्त था, वह क्रमशः अव्यक्त होकर विलय हो जायगा। इस प्रणाली से जगत् की कोई भी वस्तु किसी भी वस्तु के रूप में परिणत हो सकती है। देवभाव से पशुभाव में प्राप्ति और पशुभाव से देवभाव में प्राप्ति—दोनों ही सम्भव है। प्रकृति की गुण-प्रधान भाव से ही सृष्टि को लीला होती आ रही है। जिस किसी वस्तु में उपादानगत आपेक्षिक साम्य के प्रतिष्ठित होने पर वह अदृश्य और अव्यक्त हो जायगी।" इतना कहने के बाद उन्होंने पूर्वकथित गुलाब को अड़हुल के रूप में परिणत करते हुए, योगशास्त्रोक्त जात्यन्तरपरिणाम को विज्ञान के द्वारा प्रत्यक्ष कर दिखाया।

इसके बाद मैं नित्य नियमित समय पर जाने लगा। तीसरे पहर मन उचाट हो जाता, किसी प्रकार के लौकिक कार्य में मन नहीं लगता था, आश्रम में जाने के लिए मन व्याकुल हो उठता था। अपराह्न काल में बाबाजी टहलने के लिए बाहर निकलते थे, उस वक्त मैं भी उनके साथ-साथ चलता था। कभी गंगा-तट के किनारे-किनारे हनुमानघाट से अस्सी-संगम तक, कभी नाव से पंचगंगा घाट से अस्सी या नगवा तक और कभी आदिकेशव घाट तक घूमते थे। किसी दिन कुरुक्षेत्र और दुर्गा मंदिर की बगल से संकटमोचन तक जाते थे। हमारे साथ अनेक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लोग रहते थे। ठीक सूर्यास्त के समय हम आश्रम वापस आ जाते थे। सूर्यास्त के बाद वे कभी बाहर नहीं रहते थे।

सन् १९१८ ई० में एक दिन दिलीपगंज के आश्रम में सांख्य दर्शन की चर्चा होने पर प्रकृति और पुरुष के तत्त्व सम्बन्धी प्रश्न उठा। बाबाजी से मैंने बातचीत के सिलसिले में सृष्टि तत्त्व के बारे में प्रश्न किया था। उस वक्त प्रकृति और पुरुष के संयोग के सम्बन्ध में आलोचना चल रही थी। बाबाजी ने कहा—"जब तक दो वस्तुओं का संघर्ष नहीं होता तब तक कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता। जगत् में जितनी वस्तुएँ देखते हो, सब इसी संघर्ष के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं और हो रही हैं। प्रकृति और पुरुष के स्वरूप विचार को छोड़ दो, जो कुछ देख रहे हो, सर्वत्र यही नियम प्रबल है। सभी वस्तुओं में प्रकृति और पुरुष दोनों के अंश हैं—अणु और परमाणु तक में यह विभाग मौजूद है। जिनमें प्रकृति का भाग अधिक, पुरुष का अंश कम है, उनमें पुरुष-भाव अभिभूत होता है, प्रकृतिभाव प्राधान्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार पुरुषांश की प्रधानता के कारण पुरुष भाव का विकास होता है। सृष्ट पदार्थ मात्र ही दो प्रतिकूल शक्ति के संघर्ष से जात (जन्म) होता है, इसलिए यह नियम सर्वत्र वर्तमान है।" बाबाजी के आसन पर गुलाब का एक फूल रखा था। मैंने पूछा—"बाबा, यह गुलाब का फूल स्त्री है या पुरुष ? इसमें प्रकृति का अंश अधिक है या पुरुष का अंश अधिक है ?"

उन्होंने गुलाब के फूल को उठाकर एक बार गौर से देखा। बाद में उन्होंने कहा कि यह स्त्री-पुष्प है एवं स्त्री के लक्षणों को दिखाते हुए समझाया। उन्होंने पूछा—"क्या तुम एक पुरुष गुलाब का फूल ला सकते हो ? तब मैं तुम्हें एक बात दिखाकर समझा दूँगा।"

वहाँ दूसरा कोई फूल नहीं था। उस वक्त तीसरा प्रहर समाप्त हो रहा था और टहलने का समय हो गया था। मैंने कहा—"यहाँ अन्य कोई गुलाब का फूल नहीं है। अगर आप आज्ञा दें तो मैं बाहर जाकर कहीं से ले आऊँ ?" उन्होंने कहा—"रहने दो, जरूरत नहीं है। तुम इस फूल की सभी पंखुड़ियों को एक-एक करके नोच डालो। इसके बाद उसे मुझे दो।"

मैंने वही किया। बाबाजी ने पंखुड़ियाँ हीन पुष्प को हाथ में लेकर दो-एक बार नीचे-ऊपर संचालन किया, फिर कहा—"सूर्य रश्मि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के सहारे पुं-गुलाब बीज को आकर्षण कर इस पुष्प में गर्भाधान किया। अब इसे एक कोमल क्षुद्र आवरण में या तुम्हारी मुट्ठी के भीतर कई मिनट बन्द करके रखो। बाहर की शीतल वायु इसे न लगने पाये। फिर देखोगे कि कई मिनट के बाद एक अभिनव, बृहदाकार और अत्यन्त सुगन्धयुक्त गुलाब की सृष्टि हो गयी है।"

दलहीन फूल को मैंने अपनी मुट्ठी में बन्द करके रखा और रह-रहकर जरा-सा खोलकर देखता रहा। लगभग पाँच मिनट के बाद देखा गया कि एक अति बृहद् गुलाब फूल निर्मित हो गया है—इसका आयतन छिन्न पुष्प का दूना था। वर्ण और गंध दोनों में अनेक प्रभेद थे।

उन्होंने कहा—"इसी प्रकार स्वभाव के नियम से सर्वत्र ही प्रकृति-पुरुष के योग की सृष्टि हो रही है। जो विज्ञानविद् हैं, जो स्व-भाव के उपासक हैं, स्व-भाव की आराधना करके-वे भी उसी प्रकार सृष्टि-साधना करने में समर्थ हैं, ऊर्ध्वतम स्तर से लेकर सर्व निम्नतम भमि तक सर्वत्र उनकी शक्ति अव्याहत है।"

उस समय तक मेरी दीक्षा नहीं हुई थी। एक दिन संध्या के समय आह्निक करने के लिए उठने के कुछ पहले मैं बाबा के पलंग की बगल में बैठा था। शास्त्रार्थ हो रहा था। अचानक बाबा ने पूछा—"क्या तुम्हें हार्ट की बीमारी हुई थी? अभी तक तुम्हारा हार्ट दुर्बल है, देख रहा हूँ।"

मैंने विस्मित होकर कहा—"हाँ, बावा। आज से छः साल पहले मैं बीमार हुआ था। इसके कारण लगभग एक साल तक भोगता रहा। काफी कष्ट उठाना पड़ा था। पर आजकल पहले की अपेक्षा अच्छा हूँ।"

बाबा ने कहा—"दीक्षा हो जाने पर सब ठीक हो जायगा। चिन्ता का कोई कारण नहीं है।" इतना कहने के बाद उन्होंने मुझे भोजन के सम्बन्ध में कुछ नियम बताये। उनकी इस अप्रत्याशित करुणा का निर्देश पाकर मैं धन्य हो गया।

मैंने अनेक साधु-संन्यासियों के दर्शन किये हैं। किसी-किसी स्थान पर कुछ कम या अधिक हृदय आकर्षित न हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। खासकर एक महापुरुष की अपार्थिव कृपा और प्यार, पिछले सात वर्षों अविच्छिन्न भाव से, अयोग्य होते हुए भी प्राप्त करता आ रहा हूँ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अक्सर उन्हें अपने जीवन का आदर्श स्वरूप समझा है और नीरव रूप में भक्ति-पुष्पांजलि अर्पण की है। जैसी साधना, वैसा ही पाण्डित्य (प्राच्य और पाश्चात्य, नवोन तथा प्राचीन सर्व विषयों में), उसी तरह शास्त्र-विश्वास, सदाचार और उदार हृदय—इसके पूर्व और कहीं नहीं देखा है।

इनका नाम है—भार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द। आप परा-अपरा विद्या में एवं प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षा में समभाव में शिक्षित थे। आपका पूर्वनाम था—शशिभूषण सान्याल। आप गृहस्थ होते हुए भी अन्तःसंन्याससम्पन्न थे। मनुष्यत्व का एक अक्षुण्ण आदर्श आपके जीवन में मैंने पहले-पहल प्राप्त किया था। आपके साथ मेरा परिचय लगभग आठ वर्ष पूर्व हुआ था।[१] उसी समय से घनिष्ठ रूप में इनसे मिलता-जुलता रहा और इनके जीवन का प्रभाव मेरे व्यक्तिगत जीवन पर पड़ता रहा। पूज्यपाद स्वर्गीय रामदयाल मजूमदार आदि महात्मा आपके सम्पर्क में आकर अपने आध्यात्मिक जीवन में यथेष्ट उपकार प्राप्त कर चुके हैं। मजूमदार महाशय के साथ मेरा परिचय सन् १९०६ ई० में हुआ था और उनके द्वारा संचालित 'उत्सव' पत्रिका प्रारम्भ से ही मेरे अध्यात्म-जीवन में प्रधान सहायक थी। वे जिन्हें गुरुरूप में श्रद्धा करते थे, वे कितने उच्चस्तर के महापुरुष थे, इसे न समझने पर भी एक धारणा बना ली थी। भार्गव शिवरामकिंकर के 'आर्यशास्त्र प्रदीप', 'मानवतत्त्व' आदि ग्रन्थों से मैं काफी पहले से परिचित था। किन्तु इनके पवित्र जीवन की तुलना में इनका असामान्य पाण्डित्य भी तुच्छ ज्ञान होता था। आपके निकट मैं लौकिक और अलौकिक दोनों विषयों के लिए ऋणी था एवं इसे मैं धर्म-जीवन के लिए एक तरह से उपदेष्टा गुरु समझा करता था।

आश्चर्य का विषय यह है कि उनके निकट कभी मैंने दीक्षा के लिए प्रार्थना नहीं की थी। करने पर वे देते या नहीं, यह मैं नहीं जानता। पर मैं सोचा करता था कि मेरा काल पूर्ण होने पर, योग्यता अर्जित कर लेने पर, मेरे न चाहने पर भी मुझे मेरी वस्तु अवश्य मिल जायगी। भगवान् के राज्य में कोई कदापि वास्तविकता से वंचित नहीं रहता।

---

१. योगत्रयानन्द की जीवनी "साधु दर्शन एवं सत्प्रसंग" नामक ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में प्रकाशित है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसीलिए उस दिन जब बाबाजी ने इशारे से मेरी दीक्षा की बातें कीं तो अचानक मेरे मन में पूर्वभाव प्रस्फुटित हो गया। सोचा—शायद अब समय हो गया है। यद्यपि उन्होंने स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा था, तथापि उन्होंने जो कुछ कहा था, उससे मैं यह समझ गया कि अगर मैं जरा उन्मुख हो जाऊँ तो वे निश्चय ही मुझ पर कृपा करेंगे। इस तरह कुछ दिन बीत गये। कितने उपदेश सुनता, कितनी अलौकिक घटनाएँ बीच-बीच में प्रत्यक्ष देखता, इस प्रकार क्रमशः घनिष्ठता बढ़ती गयी।

एक दिन हरिश्चन्द्र घाट स्थित गंगा-तट पर टहलते समय मेरे मन में एक प्रश्न उठा। मैंने बाबा से प्रश्न किया—"बाबा, योगी का क्या परिचय है? योग-साधना करते हुए कैसे समझा जा सकता है कि योग सम्यक् सिद्ध हो गया है। फिर बाहरी लोग योगी को कैसे पहचान सकते हैं?"

यह सुनकर बाबा ने हँसकर कहा—"वत्स, यह सब अनेक बातें हैं—बाद में समझ जाओगे। इस वक्त संक्षेप में यही जान लो कि प्रकृत योगी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होते हैं। जो असम्भव को सम्भव कर सकते हैं, वे ही योगी हैं। योगी के निकट कुछ भी असम्भव नहीं होता।"

मैंने कहा—"यह तो आप ईश्वर के बारे में कह रहे हैं। सर्वज्ञत्व और सर्वशक्तिमत्ता ईश्वर का धर्म है—मनुष्य का धर्म नहीं है। असम्भव को सम्भव करना माया का व्यापार है—माया ईश्वर के अधीन शक्ति-विशेष है।"

बाबा ने कहा—"योगी भी वही हैं। ईश्वरत्व या ऐश्वर्य के विकास हुए बिना मनुष्य कदापि योगीपदवाच्य नहीं हो सकता। ईश्वर ही योगी और योगी ही ईश्वर है।"

समझ गया कि बात सत्य है। आत्मा का स्वाभाविक ऐश्वर्य अविद्या के आवरण में आच्छन्न है, इसलिए उसके चित्त में तृष्णा और वासना निरन्तर उत्थित हो रही हैं। अभाव न रहने पर आकांक्षा क्यों उत्पन्न होगी? किन्तु अभाव तो कल्पित है—अज्ञान दूर हो जाने पर कल्पना नहीं रहती—कल्पित अभाव भी नहीं रहता, जो कुछ रहता है वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्य और स्थिर सत्य है। योग बल से ज्ञान का संचार होने पर अविद्या निवृत्त होती है और आत्मा के नित्यैश्वर्य का विकास होता है।[1]

एक दिन बातचीत के सिलसिले में पतंजलि-दर्शन और उसका व्यासभाष्य के बारे में आलोचना हो रही थी। मैंने कहा था—"योग के बारे में—केवल योग के बारे में ही क्यों, गम्भीर मनोविज्ञान सम्बन्धी विषय—इस प्रकार का ग्रन्थ संस्कृत भाषा में विरल है।"

बाबा ने कहा—"वत्स, ग्रन्थ अच्छा है या बुरा, यह आलोचना निष्प्रयोजन है। ग्रन्थों से ज्ञान नहीं पैदा होता, चित्त के संस्कार के अलावा ज्ञान के उदय होने की कोई सम्भावना नहीं है। सद्‌गुरु निर्दिष्ट क्रम और प्रणाली के अनुसार कर्मानुष्ठान न करने पर चित्त का संस्कार नहीं हो सकता। असंस्कृत चित्त में कहीं तत्त्वज्ञान का विकास हो सकता है? शुष्क ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है।"

मैंने जात्यन्तर-परिणाम के बारे में चर्चा की। कहा—"देखिये, वर्तमान विज्ञान-जगत् में जात्यन्तर-परिणाम और उसके नियामक कारणों के बारे में अनेक प्रकार की आलोचनाएँ हुई हैं और हो रही हैं। प्राणी-जगत्, उद्‌भिद्-जगत्, यहाँ तक कि स्थावर-जगत् में भी प्राकृतिक नियम से जात्यन्तर संघटित होते रहते हैं। कब और किस तरह इस प्रकार के परिणाम होते हैं, इस बारे में वैज्ञानिकगण विचार-विमर्श करते हैं, पर परिणाम-रहस्य की व्याख्या वे लोग नहीं कर पाते। मूल कारण है—उनकी दृष्टि गहरी कुहेलिकाच्छन्न है, इसीलिए ही इस परिणाम को वे लोग स्वेच्छायत्त नहीं कर पा रहे हैं। किन्तु पतंजलि-दर्शन और व्यासभाष्य में जात्यन्तर-परिणाम तत्त्वों के कारण-रहस्यों के उपादान हैं।"

बाबा ने कहा—"बात सत्य है। किन्तु इससे लाभ क्या है? क्या तुम यह कहना चाहते हो कि पतंजलि का दर्शन पढ़कर कोई योगी बन सकता है? क्या कोई जात्यन्तर-परिणाम को शास्त्रीय व्याख्या सुनकर परिणामक्रम स्वायत्त कर सकता है या प्राकृतिक रहस्य कुछ परिमाण

---

१. भगवान् शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य ने कहा है—

"ऐश्वर्यमीश्वरत्वं हि तस्य नास्ति पृथक् स्थितिः। पुरुषे धावमानेऽपि छाया तमनुधावति। अनन्तशक्तिरैश्वर्यं निष्यन्दाश्चणिमादयः। स्वस्येश्वरत्वे संसिद्धे सिध्यन्ति स्वयमेव हि।"—मानसोल्लासः १०.४.५।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में उद्भिन्न कर सकता है ? ऐसा नहीं हो सकता। कर्म न करने पर कोई भी रहस्य उद्घाटित नहीं हो सकता। अच्छा, पतंजलि में जात्यन्तर के सम्बन्ध में क्या है, यह बताओ।"

मैंने कहा—"एकजातीय वस्तु का अन्यजातीय वस्तु में परिणत हो जाने को जात्यन्तर परिणाम कहते हैं। प्रकृति या उपादान के आपूरण से एक प्रकार का परिवर्तन साधित होता है। सांख्य मत से प्रकृति स्वभावतः परिणामशालिनी है, कोई आगन्तुक कारण से उसका परिणाम नहीं होता। मूल प्रकृति जगत् के सभी कार्यों का आदिकारण है। उसी में से निमित्त-भेद निबन्धन विभिन्न कार्यों की उत्पत्ति होती है। किन्तु प्रकृति से सभी कार्य होने पर भी वास्तव में सभी कार्य हो नहीं पाते। कारण यह है कि जब तक परिणाम-पथ के प्रतिबन्धक अवगत नहीं होते तब तक परिणाम सिद्ध नहीं होते। निमित्त विशेष के द्वारा प्रतिबन्धक या आवरण-विशेष विदूरित होने पर प्रकृति अनुरूप-कार्यरूप में अपने आप परिणाम प्राप्त होता है। फलस्वरूप निकृष्ट पदार्थ जिस प्रकार उत्कृष्ट पदार्थ के रूप में परिणत हो सकता है, उसी प्रकार उत्कृष्ट पदार्थ भी निकृष्ट हो सकता है। दोनों ही प्रकृति के आपूरण या अनुप्रवेश आवश्यक हैं। शास्त्र में है नन्दी ने इन्द्रत्व प्राप्त किया था और नहुष ने इन्द्रपद से भ्रष्ट होकर सर्पयोनि धारण की थी। कर्मानुसार सभी सम्भव है। यही जात्यन्तर-परिणामवाद कर्म-विज्ञान का मूल सूत्र एवं अकाट्य सत्य है। पाश्चात्य विज्ञान में सत्य का रूप व्यापक भाव से देखने में नहीं आता।"

बाबा ने कहा—"तुम्हारी बात मान लेता हूँ। किन्तु जात्यन्तर-विज्ञान पतंजलि-दर्शन पढ़कर कोई क्या आयत्त कर सकता है ? बिना योगाभ्यास किये योगशास्त्र का कोई रहस्य सम्यक् प्रकार से समझने का कोई उपाय नहीं है।" इतना कहने के बाद बाबाजी ने मुझे एक फूल लेने को कहा। मैंने पास ही रखे एक गुलाब के फूल को उठा लिया। उन्होंने मेरे हाथ से उस फूल को लेकर कहा—"देखो, यह फूल गुलाब ही है या अन्य कुछ है ?"

मैंने कहा—"यह तो गुलाब ही है।"

उन्होंने कहा—"तुम इसे गुलाब देख रहे हो, किन्तु मैं इसमें सब कुछ देखता हूँ। इस विश्व-ब्रह्माण्ड में कहीं ऐसा कुछ नहीं है जो इसमें

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं है। इसमें सब है।" इतना कहने के बाद वे दाहिने हाथ के अँगूठे से उसे दबाने लगे। कुछ देर बाद मैंने देखा कि गुलाब फूल जवा (अड़हुल) फूल में बदल गया है। उस फूल को मैंने घुमा-फिराकर देखा—वह अति सुन्दर जवा फूल ही था।

इसी प्रकार अधिकतर अनेक प्रकार के परिवर्तन संघटित कर शास्त्रों के रहस्य को समझाते थे। एक बार एक खिले हुए फूल को अस्फुट कोरक में परिणत कर प्रतिलोम-विषयक तत्त्व-व्याख्या कर समझाते रहे। उन्होंने कहा—"जिस प्रकार कली में फूल है, उसी प्रकार फूल में भी कली है। जिस प्रकार बीज में वृक्ष है, उसी प्रकार वृक्ष में भी बीज है। प्रकाश काल या अभिव्यक्ति की कारण-सामग्री पाने पर कली पुष्परूप में और बीज वृक्ष रूप में विकास प्राप्त करता है। स्वभाव के नियम से सर्वत्र यही हो रहा है। क्षेत्र और पारपार्श्विक अवस्था की अनुकूलता इसीलिए विकास के पक्ष में आवश्यक है। अगर यह सब बाह्य कारण पुष्प को आकर्षण कर हटा दिया जाय या पुष्प में सूक्ष्म भाव में निहित कली की सत्ता को अगर उसके सजातीय उपादानों द्वारा पुष्ट किया जाय तो वह पुष्प देखते-देखते पुनः कोरक के रूप में परिणत हो जायगा। यही रूप सर्वत्र समझना चाहिए।"

मैंने कहा—"तब तो ईश्वर में जिस प्रकार जीवत्व है, उसी प्रकार जीव में भी ईश्वरत्व निहित है, हमें मान लेना चाहिए।"

बाबाजी ने कहा—"यह तो सत्य है ही। अगर ऐसा न होता तो क्या जीव चेष्टा करके ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता था? जिसमें जो नहीं है, उसमें वह कभी भी आविर्भूत हो नहीं सकता।"

सन् १९१८ ई० के प्रारम्भ में मैंने दीक्षा ली। इसके बाद से बाबाजी की लोकोत्तर-शक्ति को अन्तर्जगत् में अनुभव करना प्रारम्भ किया। किन्तु वह सब बातें साधन-राज्य के गुप्त और गोपनीय विषय हैं—उसे लोगों के सामने प्रचारित करना सर्वथा अनुचित है समझकर उस बारे में कुछ नहीं कह रहा हूँ।

एक दिन अनुलोम और विलोम के परिणामों की चर्चा हुई थी। बाबाजी ने कहा—"देखो, उभयविध परिणाम सत्य हैं। दूध से दही होता है, दही से नवनीत और नवनीत से घृत उत्पन्न होता है। घृत में दूध के उपादान आत्मगोपन किये रहते हैं। जो प्रकृतधर्मी हैं, अगर वे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इच्छा करें तो उस अन्तर्निहित प्रच्छन्न उपादान को आश्रय करके विलोम क्रम से घृत को पुनः दूध, यहाँ तक कि तृण के रूप में परिणत कर सकते हैं। बालक में वृद्ध के भाव हैं, उसे प्रत्यक्ष कर सकने पर बालक को देखकर उसके भविष्य की अवस्था जानी जा सकती है। इसी प्रकार वृद्ध में बाल्यभाव निहित है, इसलिए उसे देखकर उसकी भूतावस्था को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। लिहाजा परिणामक्रम के दर्शन से स्वभाव के नियम से अतीतागत ज्ञान अपने-आप उदित होता है।" इतना कहने के बाद उन्होंने एक प्रस्फुटित गुलाब फूल को कोरक के रूप में परिणत करके दिखाया। बाद में उस कोरक को मार्शेल नील के कोरक के रूप में परिवर्तित कर उसे प्रस्फुटित कर दिया।

एक दिन शाम के समय पुरीवाले आश्रम में बैठा था। बाबाजी आह्निक समाप्त कर आश्रम के बरामदे में विश्राम कर रहे थे। दो-एक भक्त उन्हें पंखे से हवा कर रहे थे। अचानक उसी समय चैतन्य-चरितामृत का एक वचन मुझे याद आया, जहाँ श्रीकृष्ण के अंग-गंध का वर्णन है ("मृगमद नीलोत्पल" इत्यादि)। मुझे वह पद याद आने लगे। मैंने बाबाजी से पूछा—"बाबा, चैतन्य चरितामृत, गोविन्द लीलामृत आदि ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के अंगों के गन्धों का वर्णन जिस प्रकार है, क्या वह स्निग्ध हैं ?"

उन्होंने पूछा—"किन-किन द्रव्यों के संयोग से उक्त गंध का आभास मिलता है, क्या यह भी लिखा है। एक-एक का उल्लेख करो।"

मैंने गोविन्द लीलामृत के मतानुसार नीलपद्म, कस्तूरी आदि द्रव्यों के नाम बताये। बाबाजी एक-एक नाम सुनते हुए हस्त संचालन करते गये। जब सभी द्रव्यों के नाम बता चुका तब उन्होंने अपनी मुट्ठी मेरे सामने प्रसारित करते हुए कहा—"लो, श्रीकृष्ण के अंग-गंध का आघ्राण ग्रहण करो। जिन-जिन चीजों के नाम तुमने लिये, उन-उन उपादानों को आकर्षण किया और सभी को सम्मिलित कर दिया है। देखो, कैसा लगता है ?"

मैंने अनुभव किया—अपूर्व दिव्य गंध है—जगत् में इसकी तुलना नहीं हो सकती। दूसरे दिन एक शीशी भरकर उक्त अपूर्व गंध सूर्यरश्मि के द्वारा तैयार करके मुझे दिया गया था। मैंने उनसे पूछा—"बाबा, विभिन्न प्रकार के इतने पदार्थ केवल नाम सुनकर आपने कैसे आकर्षण किया ?"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्होंने कहा—"इसमें कष्ट की क्या बात है ? अगर अपने में आकर्षण करने की क्षमता हो और उपादानों में ज्ञान हो तो यह कठिन नहीं है। जितनी दूर तक सूर्य रश्मि का विस्तार है, उतनी दूर तक जो कुछ रहे, उसे खींचकर लाया जा सकता है। वृहत्-वृहत् स्थूल वस्तु तक अनेक दूर देश से, कम समय के भीतर लाकर उपस्थित किया जा सकता है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। सम्पूर्ण जगत् विधाता के अपूर्व कौशल से चल रहा है, इसकी कल्पना तुम लोग नहीं कर सकते। इसीलिए तुम लोगों के निकट यह सब आश्चर्य-सा लगता है। जब सीख लोगे तब समझ जाओगे कि एक ब्रह्माण्ड की रचना करना भी कोई असंभव व्यापार नहीं है।"

वास्तव में किसी चीज का विनाश नहीं होता। किसी एक पुस्तक को आग में झोंककर जला दिया जाय और देशान्तर में तथा कालान्तर में अगर उसी पुस्तक को पुनः उत्पन्न किया जाय एवं यदि वह दृष्टिभ्रम न होकर स्थायी वस्तु प्रमाणित हो जाय तो किसी भी वस्तु का ऐकान्तिक विनाश नहीं होता, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अगर गंगा के किसी घाट पर एक लोटा दूध नदी में गिरा दिया जाय और लम्बे अर्से के वाद दूसरे घाट के पानी से विश्लेषणपूर्वक उसी दूध को निकालकर दिखाया जाय तो यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि किसी चीज की स्वरूप निवृत्ति कभी नहीं होती। इसीलिए जब जीव लोक-लोकान्तर, यहाँ तक कि ब्रह्मलोक में गमन करने पर भी शक्तिमान् विज्ञानविद् उसे आकर्षण कर ले आ सकते हैं। चित्त की विभिन्न वृत्तियाँ, कामादि रिपु, ज्वरादि रोग, ग्रीष्मादि ऋतु, प्रेम भक्ति आदि भाव—विज्ञान के प्रकाश में सब कुछ स्पष्ट रूप में दिखाई देता है।

सूर्य विज्ञान को आयत्त कर लेने पर चन्द्र विज्ञानादि अन्य सभी विज्ञान सहज ही बोधगम्य हो जाता है। दक्षिण हस्त और वाम हस्त के विरुद्ध तड़ित्-शक्तिद्वय के संघर्ष से, यहाँ तक कि नख ज्योति के प्रभाव से भी सृष्टि हो सकती है। चाक्षुष-ज्योति के द्वारा, वायु के कम्पन से, नक्षत्र के प्रकाश से—यहाँ तक कि मानसिक स्पन्दन से भी सृष्टि के प्रवाह को पकड़ा जा सकता है। सौर-विज्ञान सीख लेने पर यह सब विशेष रूप में अलग-अलग सीखने की जरूरत नहीं होती।

एक दिन बाबाजी ने कहा—"वत्स, गुरु कौन-सी वस्तु हैं, इसे तुम

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लोग ठीक से पहचान नहीं सके हो। योगी के अलावा अन्य कोई गुरुपद-वाच्य हो नहीं सकता। शिष्य के ऐहिक और पारत्रिक सभी प्रकार के कल्याण की जिम्मेदारी वे स्वहस्त में ग्रहण करते हैं। योगी गुरु अपनी व्यापक सत्ता के प्रभाव से युगपत् सर्वत्र एवं सर्वदा जाग्रत भाव में विद्यमान रहते हैं। भक्त की आर्तध्वनि उन्हें आविर्भूत कराती है। मैं सर्वदा तुम लोगों में से प्रत्येक के निकट रहता हूँ, जब तुम लोग क्रिया में उन्नत हो जाओगे तब प्रत्यक्ष रूप से समझ सकोगे।"

सन् १९२८ ई० के जून मास में जिन दिनों बाबाजी कलकत्ता स्थित रूपनारायण नन्दन लेन में रहते थे, उन दिनों मैं वहाँ गया था। एक दिन (सम्भवतः ७ तारीख थी) सवेरे प्रातः भ्रमण के पश्चात् योग-तत्त्व के बारे में आलोचना होने लगी। बाबा कह रहे थे—"षट्चक्र की बातें मेरी पुस्तक 'प्रकृति-तत्त्व' में कुछ है। वह भी गलत है। साधारणतः अन्यत्र जो देखा जाता है, उसमें भी गलतियाँ हैं। यह ऐसा जटिल विषय है जिसे भाषा के जरिये समझाया नहीं जा सकता। पर कमल दल के सम्बन्ध में कुछ समझा और समझाया जा सकता है। कमल के दलों की संख्या ४, ६, १०, १२, १६ और २० है। कुण्डलिनी के जागने पर एक तेजोमय चीज प्रकाशित होती है। नाभिकुण्ड से नीचे तक कुण्डलिनी सुप्तावस्था में फैली है। उस तेजोमध्य में चार स्तर हैं, अच्छी तरह समझ में आता है। इसकी तीन इड़ादि नाड़ियों के तीन वर्ण से और चतुर्थ समष्टि वर्ण से उद्भूत है। साधन के बल से ये चारों ऊपर उठते रहते हैं—इनके प्रतिबिम्ब वहीं वर्तमान रहते हैं। ऊर्ध्वस्तर में इड़ा और पिंगला निस्तेज रहती हैं इसलिए दोनों के साम्यजनित सुषुम्ना उज्ज्वल रूप में प्रकाशमान रहती है। इसका ऊर्ध्वस्तर का एक वर्ण रहता है। कुल छह वर्ण तब प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार क्रमशः विकास होता रहता है। आज्ञाचक्र में केवल दो वर्ण हैं। पंच चक्र के ४८ वर्ण जब एकाकार हो जाते हैं तब उसका सारांश एक होकर ऊर्ध्व में जाता है। यही ज्ञानचक्षु है। ऊर्ध्व में जाकर वह वहाँ का आवरण हटा देता है। तब ऊपर से भी एक तेज नीचे उतर आता है। आज्ञाचक्र में दोनों के तेजों का मिलन होता है। इसीलिए यह द्विदल है। सहस्रार का तेज निरन्तर आ रहा है, किन्तु विक्षिप्त चित्त जीव उसे समझ नहीं पाता। जब ज्ञान का उदय होता है तब समझ पाता हैं। यही है आज्ञा-चक्र का व्यापार, सभी चक्रों की शक्ति का सार अंश ही ज्ञान है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्रिया से ही इसका विकास होता है। उस वक्त सभी वर्ण एकाकार हो जाते हैं, वैचित्र्य नहीं रहता अर्थात् वैचित्र्य के अन्तर में भेद दिखाई देता है। बाद में भेद-बोध दूर हो जाता है। क्रिया से चक्र-भेद होता रहता है। निम्न-निम्न स्तरों के सारांशों का लेकर ऊपर उठना पड़ता है, सार को बाहर निकाले बिना ऊपर उठा नहीं जा सकता। अगर कोई जबरन उठा दे तो ऊपर रहा नहीं जा सकता। आज्ञाचक्र में बिना गये बोध या उपलब्धि नहीं होती। सब होता जरूर है, पर उपलब्धि में नहीं आता। कुण्डलिनी के जागने पर नाभिपद्म खिलता है। यह पद्म सभी के शरीर में है—पर मुद्रित है। कुण्डलिनी का जागरण और अन्तःसूर्य का उदय एक ही बात है। यही ज्ञान-सूर्य है—इसके उदय होने पर पद्म स्वयं खिलता है।" इतना कहने के बाद उन्होंने कहा—"हम लोग प्रत्यक्षवादी हैं। प्रत्यक्ष के अलावा हम सब कुछ मानते नहीं।" इतना कहते हुए उन्होंने अपनी नाभि के चारों ओर कई बार हाथ से दबाया। देखा गया—नाभि की ग्रन्थियाँ खुल गयी हैं—बीच में से अति मनोहर कान्तियुक्त एक लाल कमल बाहर निकल रहा है। क्रमशः वह अधिक प्रकाशित होने लगा। हम लोगों ने सूँघकर देखा—मनोहर कमल का सौरभ है—आघ्राण किया। ब्रह्मनाल के ऊपर कमल खिला हुआ था, नीचे मृणाल था। बाबा ने कहा—"विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है—इस पौराणिक वर्णन का प्रत्येक अक्षर सत्य है। कुण्डलिनी के न जागने पर यह कमल खिलता नहीं। नाभि में ग्रन्थि बन्धन है, इसके उन्मोचन के बिना सिद्धि लाभ की आशा दुराशामात्र है।"

बातचीत के प्रसंग में एक दिन साक्षी और लीला तत्त्व के बारे में समझा रहे थे। मैंने कहा—"बाबा, आप महाशक्ति के बारे में जो बातें कहते हैं, उनके साथ गुणमयी प्रकृति का सम्बन्ध क्या है?"

बाबा ने कहा—"वत्स. महाशक्ति ही तो प्रकृति को लेकर खेल रही हैं और वे स्वयं ही अपने खेल को देख रही हैं। प्रकृति में सुधा भी है और विष भी—अन्धकार और प्रकाश दोनों ही हैं। पर जिधर प्रकाश है, उधर अँधेरा नहीं है, जिधर अन्धकार है, उधर प्रकाश नहीं है। किन्तु प्रकाश का ऐसा प्रभाव है कि उसके आघात से अन्धकार हट जाता है। किन्तु अन्धकार प्रकाश को अपसारित नहीं कर पाता। प्रकृति को अतिक्रम कर जो महाशक्ति के चरणतल पहुँच गये हैं, वे प्रकृति के इस खेल को देख सकते हैं। प्रकृति को लेकर वे खेल सकते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं, किन्तु उसमें उनकी जिम्मेदारी नहीं है। वे महाशक्ति का निमित्त-मात्र बनकर खेलते हैं। वे मायातीत और पाप-पुण्य के अनधीन हैं। जो लोग माया के अधीन हैं, वे इस खेल को देखकर सत्य समझते हुए मोहित हो जाते हैं। किन्तु जो योगी, ज्ञानी और भक्त हैं, वे केवल खेल देखते हैं, वे खेल को खेल समझकर देखते हैं। इसीलिए वे स्वयं मोहित न होकर अज्ञानी को खेल दिखा सकते हैं। अज्ञानी की आँखों में आवरण रहता है, इसलिए उसके निकट एक वस्तु में आवरण डालकर अन्य वस्तु को प्रकट किया जा सकता है—गोकि इच्छा के प्रभाववशतः। किन्तु ज्ञानी की दृष्टि निर्मल होती है, उसे ईश्वर भी भुलावा या मोहित नहीं कर सकते। वे सर्वदा मूल सत्ता को देखते हैं—इसीलिए वहाँ आवरण काम नहीं करता। उन्हें कोई धोखा नहीं दे सकता।"

मैंने कहा—"आवरण और विक्षेप ये दोनों अज्ञान के व्यापार हैं। आपने जो कुछ समझाया, उससे ऐसा लगता है कि दोनों ही वस्तु समभाव से मिथ्या है, इसलिए एक को दूसरे की तरह दिखाना संभव होता है। गुलाब फूल को जवा फूल बनाकर दिखाया जा सकता है—जवा फूल बनाया जा सकता है, कारण गुलाब और जवा दोनों ही धोखा हैं। गुलाब को आवृत्त कर वहाँ विक्षेप शक्ति के प्रभाव से जवा का प्रस्फुरण किया जा सकता है। किन्तु जो महासत्ता को देखते हैं, जो गुलाब और जवा दोनों को प्रातिभासिक जानते हैं, उन्हें बहकाया नहीं जा सकता। ऐसी हालत में सभी प्रातिभासिक हैं। प्रतिभास स्वभाव के अधीन है—किसीकी भी इच्छा वहाँ कार्यकारी नहीं होती। इसीलिए इस अवस्था में स्वाधीनता का आभास कुछ-कुछ पाया जा सकता है। यहाँ का नियामक एकमात्र स्वभाव है—यहाँ तक कि स्वेच्छा भी नियामक नहीं है। मुझे तो ऐसा लगता है।"

बाबा ने कहा—"हाँ, कुछ इसी तरह का है।"

एक दिन मन्त्र तत्त्व की आलोचना हो रही थी। प्रसंगवश गायत्री के बारे में चर्चा होने लगी। बाबा ने कहा—"गायत्री की उपासना ब्राह्मण के लिए, ब्राह्मण्य रक्षा के लिए अत्यावश्यक है। आजकल ब्राह्मणों के बालक गायत्री-संध्या छोड़ चुके हैं, यह शुभ लक्षण नहीं है। ब्राह्मण अगर वास्तविक ब्राह्मण प्राप्त कर सके तो उसे अभाव-बोध क्यों होगा? समग्र जगत् ब्राह्मणों के अधीन है।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैंने पूछा—"गायत्री-मन्त्र वैदिक-मन्त्र विशेष है। मन्त्रमात्र ही शब्द समष्टि कहना लौकिक बुद्धि से प्रतिभात होता है। अब सवाल यह है कि गायत्री मन्त्र में कुछ विशिष्टता है क्या ?"

बाबा ने उत्तर दिया—"सभी मन्त्रों में ही विशिष्टता है, पर गायत्री मन्त्र में वैशिष्ट्य कुछ अधिक है।" आपने आगे और कहा—'मैंने गायत्री के तेज को घनीभूत कर आवरण के द्वारा पुटित कर शीशी में रख छोड़ा है। तुम उसका किंचित् अंश ग्रहण कर एक ताम्र-पात्र में स्थापनापूर्वक उसके ऊपर गायत्री मन्त्र मन ही मन जप करके देखो तो समझ पाओगे—गायत्री मन्त्रगत शब्द का क्या प्रभाव है। ताम्र पात्र को गंगाजल से धो लेना और उस पात्र को चारों ओर से रूई के द्वारा घेर देना।" इतना कहने के बाद उन्होंने मुझे एक शीशी से कृष्णाभ एक वस्तु दी। उसे लेकर मैंने उनके आदेशानुसार एक ताम्रकुण्ड को धोकर उसके पीछे चारों ओर रूई से घेर दिया और गायत्री मन्त्र मन ही मन जपने लगा। हाथ से उस वस्तु को स्पर्श नहीं किया। आश्चर्य की बात यह हुई कि जप समाप्त होते ही उस वस्तु में अग्नि जल उठी। प्रदीप्त अग्नि ने रूई को भस्म कर दिया।

संक्षेप में बाबा के चरित्र का उपसंहार किया।

उनका जीवन अति विचित्र, देह अद्भुत, साधनादि सभी कुछ आश्चर्यंजनक था। निर्मल चरित्र, कठोर संयम और नियमानुवर्त्तिता जब कि असाधारण करुणा, स्वातन्त्र्यप्रियता, तीक्ष्ण धीशक्ति—यह सब गुण उनके स्वभाव की विशिष्टता थी। वे कहते—"सहसा किसीका विश्वास मत करना। विश्वास करने पर ठगे जाओगे। इस जगत् का प्रत्येक परमाणु तुम्हारे प्रतिकूल है। तुम्हारा मित्र एक मात्र तुम स्वयं हो—अपने को भूलकर बाह्य मित्रों की ओर कभी आकृष्ट मत होना। अपने को इस जगत् से लिपटा लिया है, अब जगत् से अपने विक्षिप्त उपादान समेट लो–ज्योंही समेट लोगे त्योंही एक स्थान पर अपना पूर्ण आदर्श घनीभूत भाव से प्रत्यक्ष रूप में देख पाओगे। वही तुम्हारी सर्वापेक्षा प्रिय वस्तु है। इसीकी तलाश में कितने जन्मों में कितने ढंग से चक्कर काटते रहे, इस बार उसे पाकर शान्ति प्राप्त करो। विश्वास बड़ी दुर्लभ वस्तु है। जहाँ-तहाँ विश्वास स्थापना नहीं करनी चाहिए। प्रतिपद पर सत्यासत्य की परीक्षा करनी चाहिए, तभी विश्वास स्थिर होगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्थान में विश्वास कर प्रताड़ित होने की अपेक्षा पहले संशय करते हुए अटल विश्वास में स्थितिलाभ करना ही श्रेष्ठ है।" आगे आपने कहा—"तीव्र पुरुषाकार के द्वारा भूतपूर्व कर्मों का खण्डन किया जा सकता है। पुरुषाकार का महत्त्व असीम है। योगाभ्यास ही मुख्य पुरुषाकार है। सद्गुरूपदिष्ट मार्ग पर उनके द्वारा प्रदत्त शक्ति से शक्तिशाली होकर, निरन्तर श्रद्धा और संयम के साथ योग-कर्म का अनुष्ठान करने से चित्त-शुद्धि होती है और ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान के पश्चात् शुद्ध भक्ति का संचार होता है। भक्ति के परिपक्व होने पर प्रेम का उद्भव होता है। तब हृदय पिघल जाता है। जगदम्बा को पाने के लिए यही प्रेम एकमात्र साधन है।"

बाबाजी का कहना है कि योग अत्यन्त गुह्य व्यापार है। आम तौर पर लोग जिसका अनुष्ठान करते हैं, वह वास्तव में योग नहीं है। लोकालयों में बहुत कम लोग योगतत्त्व से परिचित हैं। वे शास्त्र और सदाचार के एकान्त पक्षपाती हैं, लोक-संग्रह के लिए सामाजिक व्यवस्था का अनुगामी, मगर शुष्क आचारमात्र से तृप्त रहने के विरोधी हैं। उनका कहना था कि कर्म न करके केवल ग्रन्थ अध्ययन से कोटि जन्म में भी ज्ञान का उदय नहीं होता। शास्त्र केवल पथ निर्देशक मात्र हैं—कर्मों के द्वारा ही मार्ग पर अग्रसर होना होगा।

उनका स्वभाव अभिमानहीन, सरल और बालकोचित था। इतना ज्ञान, ऐश्वर्य और साधन-सम्पन्न होने पर भी उन्हें एक क्षण के लिए अविनय को प्रश्रय देते नहीं देखा। आम तौर पर देखा जाता है कि परिचय बढ़ने पर भक्ति का ह्रास हो जाता है, किन्तु उन्हें जो जितने घनिष्ठ रूप में पहचानने का सौभाग्य प्राप्त करता, वह उतना ही अधिक मुग्ध हो जाता था। जैसे अनन्त वस्तु देखकर साध नहीं मिटती-प्रतिक्षण नव-नव भावों का उदय होता हैं।

यह सब देखकर समझ गया कि वास्तविक योगी ही अलौकिक शक्ति के अधिकारी होते हैं। प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करने पर, ठीक पथ पर अग्रसर हो तो ज्ञान और ऐश्वर्य के प्रभाव से परमानन्द प्राप्त कर सकता है, यही उनका उपदेश है। मनुष्य कितना महान् है, कितना बड़ा है, इसे वह आत्मविस्मृत होकर भूल गया है जरूर; किन्तु कुछ दिन सत्पथ पर चल सकने पर पुनः सब कुछ समझ जायगा। वे इसीलिए कुछ-कुछ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अलौकिक व्यापार प्रत्यक्ष करके दिखाते थे। यह सब देखकर जब मनुष्य समझ लेगा कि उसमें सर्वशक्ति निहित है, केवल कर्षण के अभाव के कारण उसका विकास नहीं हो रहा है तब वह बहिर्मुखता और विषय-लिप्सा त्यागकर यथार्थ वैराग्य और विवेक को साथ लेकर, अनासक्त कर्मी के रूप में परमानन्दमय श्री भगवान् की ओर अग्रसर हो सकेगा। जो सर्व जगत् और सभी भावों के मूल उत्स हैं, उन्हें प्राप्त करने पर जीव का क्या कोई अभाव हो सकता है? देव-देवी में अविश्वास, शास्त्र के प्रति अविश्वास, गुरु तथा महाजन के वाक्यों के प्रति अविश्वास—यही हैं वर्तमान समाज के अवनति के कारण। किन्तु यह भी अहेतुक नहीं है। दीर्घकाल तक तप-साधना करने के बाद सत्य की उपलब्धि अनेकों को नहीं होती। इसीलिए सत्य-प्राप्ति के महत्त्व को प्रायः कोई प्रत्यक्ष दिखा नहीं पाता। बहिर्भावप्रवण मानव जब कुछ लोकोत्तर शक्ति का प्रभाव नहीं दिखा पाता तब केवल वाक्-प्रपंच से आस्था-स्थापन नहीं कर पाता।

कुछ लोग सोचते हैं कि विभूति दिखाना उचित नहीं है, इससे साधक की हानि होती है। कुछ लोग सोचते हैं कि विभूति तुच्छ चीज है, उसके प्रति श्रद्धा करने का कोई कारण नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि विभूति अनित्य धर्म है, नित्य वस्तु ही साध्य है—अनित्य धर्म के प्रति चित्त का आकर्षण उचित नहीं है। अन्य कुछ लोगों की धारणा है कि ज्ञानी या योगी मायातीत और निस्त्रैगुण्य पद पर आरूढ़ होने पर विभूतियों का अतिक्रम कर जाते हैं—वे विभूति कैसे दिखा सकते हैं? इन सभी शंकाओं का समाधान करना यहाँ निष्प्रयोजन होने पर भी संक्षेप में दो-एक प्रासंगिक बातों की चर्चा करना आवश्यक समझता हूँ।

योग-विभूति के बारे में ये सब धारणाएँ अस्पष्ट होने के कारण ही लोकोत्तर व्यापार मात्र ही विभूतियों का निर्देशन होता है, पर यह सब योग-विभूति नहीं है। परम पदार्थ के साथ संयोग होने पर जीव-भाव अभिभूत हो उठता है, उसमें जो ऐश्वर्यभाव उत्पन्न होता है, वही योग-विभूति है। इच्छा, ज्ञान और शक्ति के रूप में वह त्रिधा विभक्त होकर जगत् में आत्मप्रकाश करता है। समबाहु त्रिकोण के तीन बिन्दु ही उन्मेषप्राप्त शक्तित्रय के प्रकटित रूप हैं। विभाग के पूर्व इच्छादि शक्तित्रय मध्यबिन्दु में एकात्मभाव से पराशक्ति के रूप में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विलीन रहते हैं। इसी मध्यबिन्दु में अवस्थिति ही योग है—यहाँ जो स्फुरण होता है, वही योग-विभूति है। इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप में यह स्फुरण प्रकट होता है इसलिए इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रिया-शक्ति को योगविभूति कहा जा सकता है। ब्रह्मविद्या में विद्वान् न बनने तक स्थिति नहीं होती, परम साम्य संघटित नहीं होता, निरञ्जन साक्षी-भाव का विकास नहीं होता। योग से ब्रह्मविद्या का उदय होता है। अतएव योगविभूति ब्रह्मज्ञान का निदर्शन है। वास्तव में चिन्मयी परा-शक्तिसहित सम्बन्ध होने पर योगी के लिए असाध्य क्या रहेगा? तब महामाया की कृपा से अघटन-घटन-पटीयसी माया वशीभूत होती है—यही ऐश्वर्य है। कारण, माया को अधीन करने का नाम ही है—ईश्वरत्व। यह अखण्डैश्वर्य, सभी खण्डैश्वर्य इसके भिन्न-भिन्न आंशिक विकासमात्र हैं। जब योगी इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है तब उसके च्युत होने का भय नहीं रहता। आत्मविस्मृत जीव को अपने स्वभाव में वापस ले आने के लिए योगीगण अधिकार और योग्यता पर विचार करते हुए किसी-किसीको कुछ-कुछ ऐश्वर्य दिखा देते हैं—किन्तु इसे भी वे परमात्मा के आदेशानुसार करते हैं। इससे उनकी क्षति होने की आशंका क्यों? वास्तविक योगी में आसक्ति और अहंकार नहीं रहता—उनका योग कभी खण्डित होनेवाला नहीं है। पतंजलि-दर्शन में मधुमती की जो कथा वर्णित है, वह निम्नभूमि की बात है। सिद्धयोगी परमेश्वर के साथ योगयुक्त होते हैं—वे पतंजलि-सम्प्रदाय की चतुर्थ भूमि से अनेक ऊर्ध्व में स्थित हैं। उपादान और निमित्त अभिन्न न होने तक अद्वैतभूमि में प्रतिष्ठित न होने तक योगीपदवाच्य नहीं हुआ जा सकता। कुण्डलिनी-शक्ति का उद्बोधन-निबद्धन प्रज्ञानेत्र की क्रम-परिणति में, शिवत्व का विकास पूर्णता प्राप्त कर लेने पर ही वास्त-विक योगभाव की उपलब्धि होती है। विशुद्ध चैतन्य नित्य स्वप्रकाश होने पर भी इस अवस्था में ही आत्मप्रकाश करता है। योगी उस वक्त शक्तिचक्र की नाभि पर अधिरूढ़ होकर अनन्त शक्ति लेकर खेल कर सकते हैं और अपना खेल स्वयं देख भी सकते हैं। वास्तव में महाशक्ति के साथ योगयुक्त होने के कारण उनके लिए खेलना और खेल देखने में कोई प्रभेद नहीं है। जो अहंकारी और विमूढ़ हैं, वे गुणात्मिका प्रकृति के खेल को निजकृत समझकर स्वयं मालिक बन जाते हैं, किन्तु जो ब्रह्मविद्या के प्रभाव से अहंकारविहीन और गुणातीत शुद्ध चिद्-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वस्तु में प्रतिष्ठित हैं, वे निष्क्रिय द्रष्टा होकर भी सभी कार्य करते हैं एवं अखिल कार्य करने पर भी निर्लिप्त गवाह बने रहते हैं। वे चूंकि स्वभाव में हैं, इसलिए उनके लिए खेल करना और खेल देखना एक ही बात है, इधर-उधर मात्र।

हिमालय के योगाश्रम में जिस प्रकार योग, विज्ञान, रसायन आदि शिक्षा की आलोचना की व्यवस्था है, बाबाजी उसीका अनुकरण करते हुए लोकालय में, क्षुद्र रूप में उसे प्रवर्तित करने की इच्छा करते हैं। इसीलिये काशीधाम में 'विशुद्धानन्द कानन' नामक आश्रम में एक 'शिक्षा मन्दिर' और एक 'विज्ञान मन्दिर' का निर्माण कराया गया है। विज्ञान मन्दिर का निर्माण कार्य जब कि पूर्ण हो गया है, फिर भी मन्दिर के ऊपर एक नील रक्तादि वर्णमय शीशे का एक क्षुद्र गृह अभी तक बन रहा है। जब तक शीशे वाला गृह निर्मित होकर सुसज्जित नहीं हो जाता तब तक सूर्य विज्ञान और अन्य विज्ञान-सम्बन्धी प्रयोग की व्यवस्था नहीं हो सकती। काफी तादाद में एक इंच मोटी, सुबृहद्, स्वच्छ रंजित शीशे के टुकड़ों से इस कमरे का निर्माण किया जायगा। बाद में सोना, चाँदी, ताँबा आदि धातुओं की मोटी-पतली तारों के द्वारा इस मन्दिर को घेरना पड़ेगा। शीशे के संग्रह का कार्य जारी है। आशा की जाती है कि शीशों का संग्रह होते ही भविष्य में मन्दिर का उद्दिष्ट कार्य आरब्ध हो सकेगा।

जो विज्ञान विज्ञान-जगत् का शिरोमणि है, जिस पर अधिकार कर लेने पर जीव सभी अभाव से निष्कृति पाकर अपने जन्मकालीन उपादानों अर्थात् व्यक्तिगत प्रकृति, आमूल परिवर्तनपूर्वक विशुद्ध अवस्था आयत्त कर सकेगा, जो भारतवर्ष का निजस्व होने पर भी वर्तमान समय में लुप्त होने को है, जिसे अति दुष्कर क्लेश स्वीकार करते हुए दुर्गम पर्वतीय प्रदेश से प्राप्त करने के लिए दीर्घकाल तक साधना के द्वारा उन्होंने सिद्ध किया है, वह उनके साथ-साथ पुनः लुप्त हो जायगा, ऐसी उनकी इच्छा नहीं है। वे इसे योग्य पात्र के हाथ सौंप देना चाहते हैं। इस विद्या के प्रभाव से जगत् का कल्याण हो, यही उनकी आन्तरिक अभिलाषा है। इस विज्ञान की शक्ति असाधारण है, यहाँ तक कि अपरिसीम कहने पर अत्युक्ति नहीं होगी। बाबाजी कहते हैं कि योगशास्त्र में ऐसी किसी अलौकिक सिद्धि का वर्णन नहीं है जिसे अपेक्षाकृत सुगम

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपाय से इस विज्ञान के द्वारा उपलब्धि न की जा सके। पतंजलि-दर्शन के विभूतिपाद में, शिवपुराणादि पौराणिक ग्रन्थों में, तन्त्रशास्त्र में, बौद्ध और जैन शास्त्रों के योगविषयक ग्रन्थादि में, सूफी तथा ईसाई योगिगणों के ग्रन्थों में, ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं हुआ है, जो सूर्य-विज्ञानविदों के लिए अलभ्य हो।

'विज्ञान' शब्द से बाबाजी क्या समझते रहे, इस बारे में उनके निम्नलिखित कई पत्रों (लेखक को लिखे) के उद्धृत अंशों से समझा जा सकता है। उन्होंने लिखा है—"वत्स, सब उनकी इच्छा है। उक्त इच्छामयी के प्रति विशेष लक्ष्य रखने पर सभी विषयों को अच्छी तरह जाना जा सकता है। उक्त इच्छामयी की कृपा के बिना किसी भी विषय को किसीको समझने की शक्ति नहीं होती। मनुष्य ने श्रेष्ठत्व प्राप्त क्यों किया है ? शुद्ध स्वभाव के भाव और गुण के बारे में जानने की चेष्टा करके वहुत कुछ जाना है, जानकर मायाजनित दुष्कर प्रलोभन से छुटकारा पाने का उपाय किया है और कर भी रहे हैं। जिससे सम्पूर्ण त्रिपापजनित ताप से छुटकारा मिल जाय, फिर न हो, इस तरह के प्रयत्न को ही सम्पाद्य ज्ञान कहते हैं, यह भी दो भागों में विभक्त है—ज्ञान और विज्ञान। जिनके दारा सृष्टि और लय होता है, वह कौन हैं, क्यों ऐसा कर रहे हैं, इत्यादि को जानने का ही नाम है ज्ञान। इसकी परावस्था—सृष्टि, लय जो करते हैं, उन्हें जो कर रहे हैं।[1] घोररूपिणी, महाशक्ति व्योमातीत हैं, उनके बारे में जानने का नाम है विज्ञान। जगत् मिथ्या है, एक वही सत्य है।" (पुरी धाम से, २१ वैशाख, फसली १३३२ ई० को लिखा गया पत्र) उनके एक अन्य पत्र में है—"वत्स, जो कुछ देख रहे हो, वह महाशक्ति का व्यापार है। सचराचर मानव की चिन्ताशक्ति जड़ की अन्धशक्ति के वशीभूत होकर विविध रूपों में भ्रमण करती है, महाशक्ति के विज्ञान-तत्त्व को पकड़ने में सक्षम नहीं होती। सर्वव्यापिनी शक्ति में स्थूलता-बोध जो गलत बात है और उसके द्वारा तो महाशक्ति का ज्ञान सम्भव नहीं है—इस विषय

१. एक अन्य जगह बाबाजी ने लिखा है—"जो सभी के लिए मंगलप्रद और सभी के आधार में वर्तमान एवं ज्ञान और निर्वाण मुक्ति के मूल हैं, उन्हें जिन्होंने प्रसव किया है, वे तुम सभी लोगों का मंगल करें—यही मेरा इष्ट है।" (गोमो से, २० माघ, १३३३ फ० को लिखे पत्र से)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को सहज ही जाना जा सकता है। महाशक्ति-ज्ञान और उनका चिन्तन दोनों ही प्रबल योग से स्वाभाविक-अस्वाभाविक परिमित पदार्थ द्वारा चालित नहीं है। उनकी गति महाकाशभेदी एकमात्र महाशक्ति से है। यह महाविज्ञान चिन्ता के मध्यवर्ती में अन्य कोई नहीं है। यह महाशक्ति की कृपा से प्रकट होती हैं। मानव-हृदय में अगर सर्षप-सदृश स्थान पर पवित्रता है तो अखण्ड महामाया के विशुद्ध रूप से चिन्ता का जो ज्ञान है, उक्त ज्ञान के उज्ज्वल तेज से सभी प्रकार के पाप-ताप, ज्वाला-यंत्रणा, आसक्ति की आवर्जना आदि भस्मीभूत हो जाते हैं। उस समय हृदय में महाशक्ति जगत्शक्ति का ज्ञानामृत प्रकट होकर कलुषित सन्तप्त चित्त महाआवरण से परित्राण पाता ही है। बाह्यिक सभी व्यापारों को भूल जाता है। महामाया की कृपा विज्ञान के जोर से महाशक्ति के महातत्त्व को स्थूल जगत् में ले आ सकती है। सीमाशून्य महाशक्ति के महाविज्ञान के प्रकाश से प्राणों में क्या होता है—जिनको हुआ है, वही जानते हैं। भाषा नहीं है, भाषा रहने पर लिखता। यह अच्छी तरह समझ में आता है कि योग और विज्ञान के अलावा इस विषय के बारे में कुछ भी जाना नहीं जा सकता।" (७ फाल्गुन, १३२९ फ०, ७ नं० कुण्डू रोड, भवानीपुर, कलकत्ता से लिखा गया पत्र)

इन सभी पत्रों से स्पष्ट समझ में आता है कि ज्ञान से विज्ञान श्रेष्ठ है—ज्ञान का सारांश ही विज्ञान है। तत्त्ववस्तु को सामान्य रूप से जानने का नाम 'ज्ञान' है और उसके अशेष-विशेष को जानकर उसे सम्पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लेने का नाम 'विज्ञान' है। ज्ञान के द्वारा परमात्मा की तुरीय भूमि तक उपलब्धि की जा सकती है, किन्तु तुर्य्यातीत महाशक्ति का स्वरूप समझने के लिए, जो सभी तत्त्वों के अतीत होकर भी परमतत्त्व हैं, उन्हें पकड़ने के लिए विज्ञान के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। ज्ञानी का चित्त भी भगवती महामाया के मायाचक्र में पतित होकर मोहावर्त में उभचुभ हो सकता है, ऐसी संभावना है—किन्तु ज्ञान जब विज्ञान में परिणत हो जाता है, जब एक ओर शुद्धा भक्ति और दूसरी ओर शुद्धा कृपा उदित होकर महाशक्ति के सुशीतल अंक में भक्त को आकर्षित कर लेती है तब फिर पतन की आशंका नहीं रहती। शिशु जब जननी का हाथ पकड़कर चलता रहता है तब उसके पतन की संभावना रहती है, कारण दुर्बल शिशु की क्लांत मुष्टि स्खलित होने में कितनी देर लगेगी? किन्तु जब जननी स्वयं शिशु को करावलम्बन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दान करती हैं, स्वयं हाथ पकड़कर चलाती हैं तब भय का कोई कारण नहीं रहता। ज्ञान और विज्ञान का परस्पर सम्बन्ध किस प्रकार का है, इस उदाहरण से समझना पड़ेगा। विज्ञान के उज्ज्वल प्रकाश में ज्ञान और अज्ञान समसूत्र होकर दोनों ही निष्प्रभता प्राप्त करते हैं। द्वैत और अद्वैत, नित्य और अनित्य, गति और स्थिति का समभाव से दर्शन करने के लिए एकमात्र विज्ञान का आश्रय लेना पड़ेगा। इस प्रसंग में बाबाजी के एक पत्र से कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। उन्होंने लिखा है—"वत्स, सभी शक्ति की मूल जो शक्ति हैं, वे ही प्रथम और अन्तिम हैं, सभी विषयों में उनके प्रकाश के अलावा और कुछ नहीं है। अगर वे अपनी शक्ति संकुचित कर लें तो चन्द्र, सूर्य, ग्रह, उपग्रह एवं विचित्र जगत् के सभी देवी-देवता—जो कुछ भी हैं, उनका अस्तित्व नहीं रहेगा और दिखाई नहीं देंगे। एकमात्र पूर्ण परमानन्दमयी, ब्रह्ममयी, द्वैताद्वैत, नित्य और अनित्य लीला में सुख-दुःख, हाय-हताश, पिता-पुत्र, सेव्य-सेवक आदि को लेकर मजे से खेल रहे हैं। प्रयोजन-अप्रयोजन स्वयं ही जानते हैं और जो उनके विषय के बारे में आलोचना करते हैं, वह कुछ-कुछ जानता है। जीवात्मा, स्वरूप आत्मा, परमात्मा, स्थूल आत्मा, मूल आत्मा आदि जो कुछ है, वे सभी महाशक्ति माँ के भाव हैं। इसके अलावा और कुछ समझा नहीं जा सकता—वत्स, असार युक्ति-तर्क से तो कुछ पाया नहीं जा सकता—प्रत्यक्ष चीज के लिए युक्ति-तर्क क्यों? जगत्-प्रसविनी प्रत्यक्ष माँ–योग में ब्रह्मातीत–माँ–महाभावतत्त्व की सारमर्म क्रिया के द्वारा हृदय में सर्वदा ग्रहण करो, बाह्यिक भाव के भीतर न गिरकर सर्वदा माँ को स्पर्श करने में सक्षम हो, तब सब हो जायगा।" (१७ चैत्र, १३३२ फ०, २० नं० रूपनारायण नन्दन लेन, भवानीपुर, कलकत्ता से लिखित पत्र।)

ज्ञान और विज्ञान दोनों के साथ सवितृतत्त्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्य में संयम करने पर जो भुवन-ज्ञान होता है, विभिन्न पदार्थों का ज्ञान लाभ होता है, वह सब योगशास्त्र में है। इसका एकमात्र कारण यह है कि सूर्य ही सभी पदार्थों के प्रसवकर्ता, मूलस्तम्भ और केन्द्रस्वरूप हैं। सूर्यालोक में ही परिदृश्यमान जगत् के सभी पदार्थ प्रकाशमान होते हैं। क्या जाग्रत, क्या स्वप्न, सर्वदा और सर्वत्र ही सृष्टि के मध्य सूर्य एकमात्र प्रकाशक हैं। सूर्य से जो तेज निकलकर चारों ओर विक्षिप्त होकर बिखर रहा है, उसे संयत कर एक मुख से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रवाहित कर सकने पर समग्र जगत् ज्ञानहीन होगा—बाह्यज्ञान, भेदज्ञान सब लुप्त हो जायगा। सूर्य रश्मि के विक्षेप से जागतिक ज्ञान का उद्भव होता है। जब रश्मि का संघात प्रतिष्ठित होगा तब जीव का विक्षिप्त ज्ञान निवृत्त होकर उसमें एकाग्र ज्ञान उदय होगा। इसके बाद वही संहत रश्मि, वही केन्द्रीकृत घनीभूत प्रभाराशि जब सूर्यमण्डल त्यागकर ऊर्ध्व में उठता रहेगा तब प्रणव के प्रकाश में परमतत्त्व प्रकाशमान होता रहेगा, प्रबुद्धा कुण्डलिनी शक्ति आहत फण की तरह घोर नाद करती हुई ब्रह्म पथ अवलम्बन कर, महाव्योम राज्य को भेद करती हुई व्योमातीत महाशक्ति की ओर अग्रसर होती रहेगी। यही है विज्ञान का आत्मप्रकाश। जो बृहत् ब्रह्माण्ड में होता है, क्षुद्र देहरूप पिण्ड में भी ठीक यही होता रहता है।

सूर्य का आश्रय लेकर ही ज्ञान और विज्ञान दोनों का विकास होता है। सूर्यालोक से देह के मध्य में स्थित इड़ामार्ग-संचारी चन्द्र प्रकाशित होकर स्निग्ध अमृतधारा से समस्त देह को आप्यायित करता है। पिंगलावर्ती सूर्य जब क्रिया-कौशल से प्रबल तेजोमय रूप धारण करता है तब उसके संस्पर्श से मध्यशक्ति किंचित् परिमाण में उत्तेजित होकर बायीं ओर स्थित इड़ामार्ग में संचरणशील चन्द्रमा को उग्रभाव में परिणत करती है। क्रमशः दक्षिणशक्ति, मध्यशक्ति और वामशक्ति—तीनों शक्तियाँ समभाव से उत्तेजित होती हैं, त्रिकोण के तीनों कोण ही समरूप क्षुब्ध हो जाती हैं तब वे तीनों शक्तियाँ समष्टिभूत होकर मध्यस्थ ब्रह्मबिन्दु को आघात कर जगा देती हैं—यही है कुण्डलिनी-जागरण अथवा मंत्र-चैतन्य-संपादन। अतएव सूर्य की प्रबलता के द्वारा ही चन्द्र-सूर्य का साम्य स्थापित होता है, अन्त में सुषुम्ना के साथ अभेद सम्पन्न होता है। जब ये तीनों पृथक् स्रोत एक गड्ढे में गिरकर सामंजस्य प्राप्त करते हैं तब स्वभावतः अद्वैत मार्ग उन्मुक्त होता है और उसी मुक्त प्रकाश में तत्त्व-वस्तु के दर्शन होते हैं। एकाग्र भूमि के अवसान पर निरोध के आयत्त न होने से, चित्तवृत्ति की ऐकान्तिक निवृत्ति न होने से, स्वयंप्रकाश विज्ञानतत्त्व का स्फुरण होना सम्भव नहीं होता। महाशक्ति के राज्य में प्रवेश करने के लिए एकाग्रभूमि के ज्ञान को निरुद्ध करते हुए परिपूर्ण विज्ञान शक्ति का आश्रय ग्रहण करना अत्यावश्यक है।

तन्त्र का मातृकातत्त्व और वर्णतत्त्व का गहराई से अध्ययन करने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पर पता चलता है कि उसमें सूर्य विज्ञान का रहस्य निहित है। जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार, सर्वविध व्यापार, मातृका-मण्डल की क्रिया तन्त्रशास्त्रों में प्रतिपादित हुई है। षड्ध्वा के विचार प्रसंग पर एक ओर पद, मंत्र और वर्ण एव दूसरी ओर भुवन तत्त्व और कला के परस्पर सम्बन्ध का निरूपण करने पर समझ में आता है कि वर्ण और कला अपने अच्छेद सम्पर्क से जड़ित है। शिव-शक्ति की भाँति वाक् और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है, वास्तव में अकारादि वर्णमाला शुद्धावस्था में विक्षुब्ध सवितृबिन्दु से निःसृत नादमय रश्मि-चक्र के अलावा अन्य कुछ नहीं है। शब्दब्रह्मरूप हिरण्यगर्भ या सविता केन्द्रस्थल में, व्योम में, एक ओर अखण्ड रूप में रहते हुए भी बाह्यभाव में उनचासशत वायु के कम्पन से, उनचासशत वर्ण या रश्मि के रूप में बाहर निकल रहे हैं। यही पंचशत वर्ण ही व्यष्टि और समष्टिभाव में, अकारादि-क्षकारान्त वर्णमाला या अक्षमाला के रूप में मूलाधार से आज्ञाचक्र तक छः चक्रों में, पंचाशत् दल में प्रकाशमान हो रहे हैं। इस वर्ण या नाद के तत्त्व को बिना आयत्त किये ब्रह्मविद्या में अधिकार नहीं होता, कारण 'शब्द-ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।' शब्द से ही जगत् की सृष्टि और शब्द में ही तय होती है—यहाँ तक कि सृष्टि और लय से अतीत, संकोच-प्रसारण के ऊर्ध्व में स्थित, अच्युत ब्रह्मबिन्दु में जाने के लिए मन्त्ररूपी शब्द ही कर्णधार है। देवतादि की देह भी इसी मंत्रमय ज्योति के द्वारा गठित है। यन्त्रादि का स्वरूप भी वही है। शुद्ध विद्या के द्वारा आत्म-संस्कार कर इस विद्याधाम का अधिष्ठाता बन जाने पर अर्थात् मन्त्रेश्वर, मन्त्रमहेश्वरादि पद प्राप्त होने पर, वर्णमाला पर अधिकार होता है—तब सभी मन्त्र और देवता किंकरवत् (सेवक) उसके अधीन हो जाते हैं। वे गुरुपदवाच्य सदाशिवावस्था प्राप्त करते हैं। प्रभाव और व्याहृति के रहस्य से जो लोग परिचित हैं, वे लोग जानते हैं कि वेद में भी इस बिन्दु और नाद की साधना ही देशोचित और कालोचित नाना आकारों में अधिकार-भेद से उपदिष्ट हैं। क्रिश्चियन मत, प्राचीन और मध्ययुग का पाश्चात्य योग-सिद्धान्त, सूफी मत एवं अन्य देशों की अन्तरंग प्रणालियों की खोज करने पर पता चलता है कि सर्वत्र इसी एक विज्ञान का प्रचार हुआ है। इसे समझ न पाने के कारण अनाधिकारी लोगों ने इसे स्थूलभाव में स्वीकार किया है।

प्रकृति के सभी व्यापार रंगों का खेल है—जो निर्लिप्त दर्शक हैं, वे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तटस्थभाव से देखते हैं कि एक सर्वव्यापक शुभ्रसत्त्वमय वर्ण के ऊपर नीलरक्तादि अनन्त प्रकार के मिश्र और अमिश्र वर्णों के घात-प्रतिघात चल रहे हैं। फलस्वरूप जल-बुद्बुद की तरह विश्वरूप इन्द्रजाल की रचना हो रही है, अज्ञानी के रंजित नेत्र में उक्त इन्द्रजाल या मायिक व्यापार सत्य समझकर प्रतिभात हो रहा है। जब तक आँखों से वर्णों का आवेश दूर नहीं होगा, जब तक मोह की निवृत्ति नहीं होगी, तब तक मिथ्या दर्शन समाप्त नहीं होगा। जिस शुभ्र भित्ति पर यह अपरूप माया-चित्र क्रीड़ा कर रहा है, उसे यथार्थ रूप से देख न पाने पर इस विचित्र जगद्दर्शन में मोहित होना ही पड़ेगा। वैचित्र्य के अन्तःस्थित उस व्यापक और अखण्ड ऐक्यसूत्र को आविष्कार करने के लिए चित्त तथा उसके सहकारी इन्द्रियों की मार्जना आवश्यक है। जितने वासनात्मक चित्र-विचित्र वर्णराशियों ने अन्तर्दर्पण को आच्छन्न कर रखा है, उन सबको दूर कर उसकी स्वाभाविक स्वच्छता को प्रकट करना होगा। चित्त के स्वयं शुभ्र होने पर शुभ्रसत्त्वमय जगदाधार को सहज ही देखा जा सकता है तब मायावी की माया समझने में देर नहीं लगती।

विज्ञान का उद्देश्य है इस विराट् इन्द्रजाल के मूलसूत्र को आविष्कार करना। वर्णमाला के संयोग और वियोग से ही सभी व्यापार संघटित हो रहे हैं। सृष्टि और प्रलय इसी संयोग और वियोग का अवश्यम्भावी फल है। विज्ञानविद् कार्यमात्र के उपादान और निमित्तस्वरूप विशिष्ट रूप परिचित होकर विधाता के कला-कौशल को साक्षात् रूप में पकड़ लेते हैं। यहाँ तक कि कुछ परिमाण में विधाता के ऐश्वर्य को भी आयत्त कर सकते हैं। केवल यही नहीं, इच्छा होने पर विधाता का अतिक्रम कर सर्वमूलभूता अनादि महाशक्ति के श्रीचरण तक उपस्थित हो सकते हैं। विश्वामित्र द्वारा जगत्-निर्माण, भण्डासुर द्वारा नवीन और बृहत् ब्रह्माण्ड-रचना, साधन-राज्य के इतिहास में अप्रसिद्ध घटना नहीं है।

ग्रन्थ अध्ययन करने के लिए जिस प्रकार पहले वर्ण-परिचय आवश्यक है, उसके बाद वर्णों की संयोजन-प्रणाली सीखी जा सकती है, उसी प्रकार विज्ञान-शिक्षा का प्रथम सोपान है—विशुद्ध रश्मि के साथ परिचय की स्थापना। सूर्य-रश्मि का विश्लेषणपूर्वक आवश्यकतानुसार शुद्ध वर्ण को पहचानकर बाहर निकालते हुए उसे पकड़ लिया जाय तो भिन्न-भिन्न रश्मियों के साथ परस्पर मिलन-पद्धति कैसी है, समझ में आ जाता है। वेदान्त शास्त्रों में पंचीकरण और उपनिषदादि में त्रिवृत्-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करण-प्रणाली का उल्लेख है। किन्तु विज्ञान की क्रिया-कुशलता मर्मज्ञ के अलावा अन्य कोई समझ नहीं पाता। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह तो रश्मि-संयोजन की एक अवस्थामात्र है। बहरहाल इस विषय पर यहाँ अधिक लिखना अनावश्यक है।[1]

१. 'सूर्य-विज्ञान' के बारे में यथाशक्ति विस्तारपूर्वक लिखने की इच्छा है। बाबाजी की कृपा से अनेक लोग सूर्य-विज्ञान का प्रयोग देख चुके हैं। अंग्रेजी, बंगला आदि पत्र-पत्रिकाओं में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों में कुछ लोगों ने इसकी चर्चा की है। कुछ लोगों की समझ में न आने के कारण उन्होंने सूर्य-विज्ञान को इच्छाशक्ति का अवस्थाभेद कहा है। किन्तु उन लोगों को यह मालूम नहीं कि वास्तव में इच्छाशक्ति किसे कहते हैं। इच्छाशक्ति में उपादानों की अपेक्षा नहीं की जाती। सत्य संकल्पवाले योगी के इच्छामात्र से ही निमिषभर में कार्य उत्पन्न हो जाता है—बाह्य उपादानों के आकर्षण की आवश्यकता नहीं होती। यह अभिन्ननिमित्तोपादानवादी वैदान्तिकों की सिद्ध या अद्वैत-भूमि की बहिर्मुख अवस्था है। उत्पलदेव ने कहा है—"चिदात्मा हि देवो हन्तः स्थित-मिच्छावशाद् बहिः। योगीर निरुपादानमर्थंजातं प्रकाशयेत्।" अभिनवगुप्त-पादाचार्य ने अपनी कृति 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी' में स्पष्ट रूप से समझाया है कि ईश्वरसृष्टि और योगिसृष्टि दोनों ही निरुपादान हैं। आत्मा चैतन्यस्वरूप है—उसमें विश्व-प्रपंच अभिन्न रूप में निहित है। इच्छा-निबन्धन उक्त अन्तःस्थित पदार्थ बाहर केवल प्रकटमात्र होता है। प्रचलित भाषा मे इसीको 'सृष्टि' कहते हैं। लिहाजा सृष्टि के लिए आत्मा के अलावा अन्य दूसरी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। वेदान्त के सिद्धान्त भी लगभग इसी प्रकार के हैं। केवल माया के स्थान-निर्देश से भेद दिखाई देता है। किन्तु द्वैतवादी नैयायिकादि आचार्य लोग उपादान के पार्थक्य को स्वीकार करते हैं। उनके मत से सत्यसंकल्प योगियों के संकल्प करने से ही सर्वगत परमाणु मण्डल से अभीष्ट सभी परमाणु आकृष्ट होकर द्व्यणुकादि क्रम झटपट सम्मिलित होते हैं और इच्छानुसार कार्य करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों ही मत से इच्छा ही सृष्टि का मूल है—इसीलिए ज्ञानतः उपादान की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है। किन्तु वैज्ञानिक सृष्टि में उपादानों को प्रत्यक्ष रूप में पहचान लेना पड़ता है और उसके संयोग-वियोग की प्रणाली को यथाविधि आयत्त करना पड़ता है। इसके बाद यथाप्रयोजन कार्य करना चाहिए। वैज्ञानिक-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सृष्टि ज्ञानपूर्वक और योगी-सृष्टि इच्छापूर्वक होती है। इन दोनों प्रणालियों में अन्तर इतना है कि प्रथम प्रणाली में ज्ञान अंगी और इच्छा उसके अंगस्वरूप होते हैं, द्वितीय में इच्छा ही अंगी और ज्ञान अव्यक्त भाव में उसके अंगरूप में वर्तमान है, जो विज्ञानविद् नहीं हैं और योगी भी नहीं हैं, ऐसे लोग दोनों प्रणालियों के सूक्ष्म भेद को ग्रहण नहीं कर सकते। दोनों ही सृष्टि व्यावहारिक हैं, प्रातिभासिक मात्र नहीं। लिहाजा इन दोनों के इस अंश में कोई भेद नहीं है। Hallucination (माया), Hypnotic Illusion (निद्रा उत्पन्न करनेवाली माया) आदि स्वप्न दृश्य की तरह प्रातिभासिक सृष्टि का निर्देश है। स्वप्न में देखे गये पदार्थ जिस प्रकार स्वप्न के अन्त में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार माया आदि भी गायब हो जाती हैं। इन्द्रियादि के विकार शान्त होने पर वह सब अपने-आप गायब हो जाते हैं। जब तक बोध रहता है तब तक उसकी सत्ता है। वे सब व्यावहारिक जगत् में कार्यसक्षम नहीं होते। इन्हें 'दृष्टि-सृष्टि' नाम से उल्लेख किया जा सकता है। किन्तु योगि-सृष्टि और वैज्ञानिक-सृष्टि उस तरह के अचिरस्थायी या मिथ्या नहीं हैं। पारमार्थिक दृष्टि से वह सम्पूर्ण जगत् की भाँति तुच्छ होने पर भी व्यवहार-भूमि पर सम्पूर्ण सत्य और चिरस्थायी है। जगत् के अन्य सृष्ट पदार्थ जिस प्रकार के हैं, ठीक उसी प्रकार का वह भी है। सत्यासत्य निर्णय के जितने उपाय हैं, उनके द्वारा विचार करने पर उसे सत्य के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। 'पंचदशी' आदि ग्रन्थों में ईश्वर सृष्टि और जीव-सृष्टि का जो भेद प्रदर्शित हुआ है, उसके अनुसार वैज्ञानिक-सृष्टि और जीव-सृष्टि से विलक्षण है यह समझ में आता है। जीव की उपाधि मलिन सत्त्व अर्थात् रजः और तमोमिश्र सत्त्व है। इस उपाधि से जिस सृष्टि का उदय होता है वह है—प्रातिभासिक, स्वप्नदृश्यवत् भ्रान्तिजाल मात्र। यही बन्धन के कारण हैं। किन्तु ईश्वर-सृष्टि विशुद्ध सत्त्व या ईश्वरोपाधि से उद्भूत होती है, इसलिए व्यावहारिक-सत्ता-सम्पन्न है, इसे झूठ कहा नहीं जा सकता। परमार्थ-दशा में व्यवहार-भूमि का जरूर अतिक्रमण हो जाता है, पर इससे व्यवहार का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता। योग और विज्ञान दोनों ही विशुद्ध सत्त्व में प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए योग और विज्ञान के रूप में जिस पदार्थ का निर्माण होता है, वह सत्य होता है। इस सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा यथास्थान पर करूँगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूर्य-विज्ञान की अनेक घटनाएँ मैंने प्रत्यक्ष रूप से देखी हैं। यहाँ उन सभी घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। उनकी सिद्धि-संख्या अगण्य है।

लेकिन यह सब सिद्धि उनके निकट बिलकुल तुच्छ और नगण्य है। महाधन से धनी बनकर आज वे अतुल योगैश्वर्य को तृणवत् समझकर अग्रसर हो रहे हैं, उसी भगवत्-प्रेमस्वरूप अमूल्य चिन्तामणि को हम सब उनसे माँगने में आज भूल न जायँ। उनके आशीर्वाद और उनकी संचारित शक्ति से बलवान् होकर आज हम उनका अनुगमन करने में समर्थ हों। वे हम लोगों को असत्य से सत्य की ओर, अज्ञान से ज्ञान-लोक में और मृत्युराज्य से अमरधाम की ओर ले जायँ—यही उनके श्रीचरणों में विनीत तथा भक्तिपूर्ण प्रार्थना है। ●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानगंज-रहस्य

ज्ञानगंज के तत्त्व के बारे में यथास्थान किंचित् प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा। कारण देह और कर्मतत्त्व के साथ ज्ञानगंज का अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब तक ज्ञानगंज के रहस्य का उद्घाटन नहीं होगा तब तक इस सम्बन्ध में वास्तविक सिद्धान्त प्राप्त होने का कोई उपाय नहीं है।

सिद्धभूमि अनेक हैं—शास्त्रों के अध्ययन से उनका परिचय मिल जाता है तथा कोई-कोई शक्तिशाली महात्मा अपने जीवन में, इस दिशा में कुछ न कुछ प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करते हैं। कहा जाता है कि ज्ञान-गंज हमारी इस परिचित पृथ्वी का एक विशेष गुप्तस्थान है, किन्तु वह इतना गुप्त है कि विशिष्ट-शक्ति के बिना विकास हुए और उस स्थान के अधिष्ठाता की आज्ञा बिना हुए मर्त्यलोक के जीव देख नहीं सकेंगे। प्रत्येक सिद्धभूमि का यही वैशिष्ट्य है। सिद्धभूमि स्वयं प्रकट होने पर भी जितने जीव उस स्थान से किसी प्रकार की शक्ति अपने अनुकूल प्राप्त नहीं कर सके हैं, उनके लिए उसके दुर्भेद रहस्य को भेद करना असम्भव है, अगर यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। विभिन्न सिद्धभूमियों के स्वरूप, परिस्थिति और क्रिया विभिन्न प्रयोजन साधन के लिए विभिन्न भूमियाँ प्रतिष्ठित हुई हैं। इस प्रसंग में सिद्धभूमि, दिव्यभूमि आदि अलौकिक जीव-निवास-स्थान सभी को एक वर्ग के अन्तर्गत मानकर हम चल रहे हैं। किन्तु दरअसल उनमें परस्पर भेद और प्रत्येक की निजी विशेषता विद्यमान है। गोलकधाम, नित्य-वृन्दावन, कैलास, नित्यसाकेत आदि स्थानों के महत्त्व विभिन्न प्रकार के हैं। इस तरह के विशिष्ट स्थान मायिक-जगत् में विभिन्न स्तरों में अनेक हैं। माया के ऊर्ध्व में भी हैं। उदाहरणस्वरूप कहा जा सकता है कि केदारेश्वर, जल्पेश्वर, महाकाल एवं श्रीशैल—यह सब भुवन तेज-तत्व में विद्यमान हैं। इनके अंशों का अवलम्बन कर योगियों ने पृथ्वी पर यानी भारतवर्ष में इन्हीं नामों से तीर्थस्थलों की स्थापना की है। इस प्रकार अट्टहास, कनखल, कुरुक्षेत्र और गया—ये सब वायु-तत्त्व के भुवन हैं। अविमुक्त, गोकर्ण, स्थाणु—आकाश-तत्त्व के भुवन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। इसी प्रकार प्रत्येक जगह को समझना चाहिए। मलिन माया के ऊर्ध्व में विशुद्ध माया-राज्य में भी अनेक भुवन हैं जिनके प्रतिरूपक पृथ्वी पर स्थापित हैं। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अनास्रव धातु में भी विभिन्न बौद्ध-क्षेत्र और दिव्यधाम विद्यमान हैं। पृथ्वी पर ऊर्ध्वलोक के प्राय: समस्त स्थान आंशिक रूप में अवतीर्ण या प्रकट हैं। इन सभी अंशों का अवलम्बन करते हुए थोड़े प्रयास से मूल स्थान को प्रकट किया जा सकता है। इसीलिए हमारे इस सुपरिचित वृन्दावन से भी नित्य-वृन्दावन का पता प्राप्त हो जाता है तथा जागतिक दृष्टिगोचर में काशी से भी शंकर के त्रिशूल पर प्रतिष्ठित नित्यकाशी का दर्शन प्राप्त किया जा सकता है। सर्वत्र अविच्छिन्न योगसूत्र मौजूद हैं।

ज्ञानगंज की चर्चा करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि यह स्थान साधारण भौगोलिक स्थान नहीं है। यद्यपि यह गुप्त रूप से भू-पृष्ठ पर विद्यमान है, तथापि इसका वास्तविक स्वरूप काफी दूर है। वास्तविक योगी के अलावा इस स्थान का पता दूसरा कोई नहीं पा सकता, यहाँ प्रवेश करना तो दूर की बात है। मगर अधिकारियों का अनुग्रह होने पर इस जगत् के साधारण मनुष्य भी वहाँ जा सकते हैं। भौम (भूमि-सम्बन्धी) ज्ञानगंज कैलास के आगे ऊर्ध्व में स्थित है। फिर भी वह साधारण पर्यटकों की गतिविधि के अतीत है। ज्ञान-गंज, राजराजेश्वरी मठ तथा परम गुरुदेव का श्री मन्दिर स्तर-विन्यास की दृष्टि से विभिन्न स्तरों में अवस्थित है। ज्ञानगंज सभी के नीचेवाला स्तर है, राजेश्वरी मठ मध्य स्तर और परमगुरु महातपा का स्थान सर्वोच्च है। यह स्थान योगियों द्वारा निर्मित है। यह सृष्टि के आदि में लोकस्रष्टा की सृष्टि के रूप में प्रकट नहीं हुआ था। ध्रुवलोक जिस प्रकार साधकों की तपस्या के फलस्वरूप कालविशेष में प्रकट हुआ है, गोलक जैसे श्रीकृष्ण के भू-पृष्ठ पर अवतरण के साथ ही संसृष्ट उच्च-तम नित्यधाम है, सुखावती जिस प्रकार अनास्रव (क्लेशरहित) धातु से अमिताभ बुद्ध की विशुद्ध शक्ति के प्रभाव से प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार ज्ञानगंज भी योगीविशेष की तीव्रतम योग-साधना के प्रभाव से विश्व-कल्याण के महालक्ष्य को पूर्ण करने के उद्देश्य से निर्मित हुआ है। वास्तव में नित्य होकर भी वह निमित्त योग से प्रकट हुआ है।

ब्राह्मी सृष्टि के साथ उसका अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध किस प्रकार का है, उसकी चर्चा करना ही देह-कर्म की चर्चा करना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। अब उसी बात को संक्षेप में यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ। कर्म के असंख्य प्रकार भेद हैं, उनकी चर्चा यहाँ नहीं करनी है। हम यहाँ केवल साधक और योगी के कर्म के बारे में चर्चा करेंगे। जो साधक नहीं हैं, योगी भी नहीं हैं, उनके कर्मों की आलोचना करना इस निबन्ध का उद्देश्य नहीं है। जन्म-मृत्यु के अतीत हो जाना साधक का एकमात्र लक्ष्य होता है। प्राचीन बौद्ध-सम्प्रदाय में श्रावकों का जो स्थान था, हमारी आलोचना के क्षेत्र में साधकों का स्थान लगभग इसी तरह का है। साधक ज्ञान प्राप्त करता है और उसी ज्ञान के अनल में अशुद्ध वासनाओं को जलाकर मायिक उत्पत्ति के मूल बीज को जलाने में समर्थ होता है। फलस्वरूप वह जन्म-मरण के अतीत कैवल्य-स्थिति की भाँति स्थिति प्राप्त करता है। यह ठीक है कि इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर पतन नहीं होता, किन्तु वह फिर ऊर्ध्व में उठ नहीं पाता तथा पूर्ण भगवत्ता के मार्ग में अग्रसर नहीं हो पाता। साधक का लक्ष्य जैसा क्षुद्र है, उसका आधार भी उसी तरह का क्षुद्र है। वह गुरु की तीव्र-शक्ति को धारण नहीं कर पाता, इसीलिए गुरु उसे उसके सामर्थ्य के अनुरूप ज्ञान प्रदान करते हैं।

ज्ञान-प्रदान के बारे में अभी जो बातें कही गयीं, इसके साथ कुण्डलिनी-शक्ति के प्रबोधन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सद्‌गुरु साधक को शक्तिपात के समय, ठीक उसी परिमाण में शक्ति-संचार करते हैं, जिससे उसकी कुण्डलिनी-शक्ति उद्‌बुद्ध होकर ऊर्ध्वगति अवलम्बनपूर्वक अग्रसर होने में समर्थ हो सके। जितनी अशुद्ध वासनाएँ साधक की अन्तर्निहित ज्ञान-शक्ति को आच्छन्न करके रखती हैं, वह सब गुरु-कृपा से कुण्डलिनी जागरण के साथ-साथ जल जाती हैं। इसके फलस्वरूप साधक की अन्तरात्मा शुद्ध होकर गुरुप्रदत्त चिन्मयी शक्तिस्वरूप इष्ट का आकार धारण करती है। यह क्रमशः होता रहता है। इसीलिए साधक की दीक्षा के बाद उसकी यथाविधि निज कर्म के प्रभाव से प्रबुद्ध कुण्डलिनी-शक्ति वर्द्धित होकर क्रमशः चैतन्यरूप में आत्मविस्तार करती है और धीरे-धीरे सम्पूर्ण देह, इन्द्रिय, मन आदि को चिन्मयत्व प्रदान करती है। अशुद्ध वासनाओं को दूर करना ही चित्शक्ति का कार्य है। यह कार्य सम्पन्न होते-होते क्रमशः अपने साथ अभिन्न रूप में, इष्ट-स्वरूप क्रमशः अभिव्यक्त होता रहता है, मगर उसे साधक देख नहीं पाता। कारण अशुद्ध-वासना का किंचित् अवशेष रहने तक शुद्ध वस्तु का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साक्षात्कार सम्भव नहीं है। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि अशुद्ध सत्ता किंचित् परिमाण में न रहने पर देह, इन्द्रिय आदि की आत्मसत्ता की रक्षा असम्भव है। यह शोधन-कार्य सम्पन्न होने पर मलिन वासना क्षीण हो जाती है। बाद में वह बिलकुल नहीं रहती। तभी निर्विकल्प ज्ञान का उदय होता है और साथ ही साथ देहपात होता है। निर्विकल्प ज्ञान के उदय का अर्थ यह है कि उस वक्त साधक वासना-मुक्त होकर अपने को इष्ट के साथ अभिन्न रूप में दर्शन करता है। यही एक हिसाब से इष्ट-दर्शन है तथा दूसरी ओर से देखने पर यही उसका आत्म-दर्शन है।

गुरु-कृपा को सहाय बनाकर साधक अपनी शक्ति के प्रभाव से सम्यक् ज्ञान प्राप्त करता है तथा सिद्धावस्था में, चिदाकाश में स्थिति प्राप्त करता है। उस वक्त वह वासनामुक्त चैतन्यमय आत्मा होता है—उसमें किसी शक्ति का विकास नहीं रहता और न उसकी उसे आवश्यकता होती है। किन्तु जो साधक इस प्रकार की देहावस्था के रहते-रहते साधनकर्म सम्पूर्ण नहीं कर पाते, उनके लिए इस प्रकार मृत्यु के बाद चिदाकाशवाली स्थिति प्राप्त नहीं होती। उस साधक को अपने अपूर्ण कार्यों को पूर्ण करने का अवसर नहीं मिलता, कारण साधक का आसन तो है नहीं। वर्तमान देहत्याग के बाद आसन-प्राप्ति के अभाव में साधक निष्क्रिय हो जाता है। उसकी अग्रगति बिलकुल रुद्ध हो जाती है। यह देह रहते-रहते उसका जितना विकास हुआ था, वह वहीं निश्चल रूप में अवस्थित रहता है। प्रकृति का स्रोत उसे अर्थात् उसके तत्त्व को चिदाकाश की ओर खींच जरूर ले जाता है, किन्तु साधक इसे समझ नहीं पाता।

योगी की आध्यात्मिक गति इस प्रकार की नहीं होती। जन्मकाल से ही योगी का आधार अधिकतर शुद्ध रहता है। इसीलिए सद्गुरु उसे योग-दीक्षा प्रदान करते हैं। इसके फलस्वरूप संचारित-शक्ति की मात्रा तीव्र हो जाती है और अग्रगति की पद्धति भी भिन्न हो जाती है। आधार परिपक्व हुए बिना तीव्र शक्ति का धारण नहीं किया जा सकता। योगी की उपलब्ध शक्ति केवल परिमाण में तीव्र ही नहीं होती, बल्कि उसकी प्रकृति भी भिन्न है। इस शक्ति के प्रभाव से न केवल वासनादि-संस्कार जल जाते हैं, बल्कि वह शोधित होकर योगी के सहायक बनकर नित्य के साथी बन जाते हैं। साधकों के लिए भगवान् की कृपा से प्रति-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कूल शक्ति, प्रतिकूल भाव त्यागकर तटस्थ रूप धारण करती है, मगर योगी के मामले में न केवल शक्ति की प्रतिकूलता की निवृत्ति होती है, बल्कि वह अनुकूल शक्ति के रूप में परिणत हो जाती है। यही अनुकूल-शक्ति योगी की आत्मशक्ति के रूप में प्रकट होती है। साधक साधना की परिसमाप्ति के बाद चित्स्वरूप में स्थिति प्राप्त करता है, किन्तु योगी योगक्रिया की महिमा से विशुद्ध साकार रूप में विराजमान होता है। योगी कभी भी निराकार या कायाहीन नहीं रहता। साधक के कुण्डलिनी-जागरण और योगी के कुण्डलिनी-जागरण में अनेक अन्तर हैं। साधक गुरुप्रदत्त शक्ति को मूलधन के रूप में ग्रहण करके उसे अपने कर्मों के द्वारा संवर्द्धित करता है, फलस्वरूप उक्त शक्ति-रूपी चिदग्नि के द्वारा उसके मलिन वासनादि क्रमशः जल जाते हैं, चरमावस्था में वासनादि को पूर्ण निवृत्ति के साथ-साथ साधन-कर्मों की परिसमाप्ति होती है एवं साधक इष्टरूप में अपने को पाता है। यही उसकी सिद्धि—यही विदेह-अवस्था है। वासना-निवृत्ति का आनुषंगिक फल है देहपात। दूसरी ओर योगी को कर्म द्वारा चित्शक्ति से चिन्मय आकार का गठन नहीं करना पड़ता। योगी उच्च अधिकारसम्पन्न होने के कारण दीक्षाकाल में ही गुरुदत्त चिदाकार प्राप्त कर लेता है। योगी का कर्त्तव्य चित्शक्ति के द्वारा आकार-रचना करना नहीं है, पर कर्म-बल से गुरुदत्त चिदाकार के साथ संघर्ष करते हुए मलिन वासनाओं का शोधनपूर्वक उसे अनुकूल शक्ति के रूप में परिणत करना पड़ता है। सर्वशक्तिसम्पन्न इस चिन्मय आकार को योगी अपने साथ अभिन्न रूप में अनुभव करता है, किन्तु योगी इसका भी अतिक्रम कर ऊपर उठता है। अर्थात् योगी इस चिन्मय आकार को प्राप्त करने के बाद उद्वृत्त रूप में इसका साक्षी तथा नियामक होता है। वस्तुतः यह आकार महाशक्ति विश्वजननी का आकार-विशेष है। योगी निज स्वरूप में इस आकार को प्राप्त कर क्रमशः इसके पूर्णत्व के साधन में लग जाता है। इस पूर्णता-प्राप्ति की मात्रा पर ही उसके विश्व-कल्याण के साधन की मात्रा निर्भर करती है।

साधक संकुचित होता है, किन्तु योगी उदार। अपने व्यक्तिगत दुःखों को निवृत्ति साधक का लक्ष्य होता है; किन्तु योगी का लक्ष्य अपने दुःख की निवृत्ति नहीं होता। कारण योगी परार्थ सेवक होता है, अपने दुःखों की निवृत्ति के साथ-साथ दूसरों के दुःख की निवृत्ति के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपायों का अवलम्बन करता है। इसीलिए योगी के अलावा अन्य कोई यथार्थं गुरु नहीं बन सकता।

साधक और योगी के स्वरूप और क्रिया-भेद के बारे में यहाँ संक्षेप में उल्लेख किया गया। किन्तु सभी योगी एक प्रकार के नहीं होते। यह सही है कि योगी के सामान्य लक्षण प्रत्येक योगी में विद्यमान रहते हैं, किन्तु लक्ष्यगत तारतम्य भी अवश्य रहते हैं। इस दृष्टि से योगी को खण्ड और अखण्ड दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है एवं खण्डयोगी को खण्ड तथा महाखण्ड इन दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। इस बँटवारे के कारण खण्ड, महाखण्ड और अखण्ड, इन तीन प्रकार के योगियों के तत्त्वों की चर्चा हमारा मुख्य विषय है। खण्डयोगी एक ऐसे उच्च आदर्श को लक्ष्य में रखकर अग्रसर होता है जो चिदाकाश के ऊर्ध्व में प्रतिष्ठित है। चिदाकाश जो कि साधकों की कर्मसमाप्ति का स्थान है, उस परम लक्ष्य को अगर भेद न कर सका तो योगी लक्ष्य स्थान में उपनीत नहीं हो सकेगा। यह अत्यन्त उच्चावस्था एवं जागतिक दृष्टि से परमेश्वरत्व इसी भूमि पर प्रतिष्ठित हैं। खण्डयोग का लक्ष्य है, कर्म-प्रभाव से इस भूमि को प्राप्त करना। हम आगे चलकर महाखण्ड और अखण्डयोग की बातें करेंगे। फिलहाल खण्डयोग के रहस्य के बारे में किंचित् वर्णन कर रहा हूँ।

खण्डयोग का लक्ष्य यह है कि जो योगभूमि है, उसे योग-दीक्षा न मिलने तक प्राप्त नहीं किया जा सकता। कारण दीक्षा के बाद कर्म की अभिव्यक्ति आवश्यक है। दीक्षा के द्वारा उस भूमि को प्राप्त करने का अधिकार-बीज हृदय में निहित होता है, किन्तु उस बीज को अंकुरित कर वृक्ष बनाना, पुष्प तथा फलदार बनाना योग-कर्म के अधीन है। अगर योगी कर्महीन अथवा कर्म के प्रति उदासीन हो तो गुरु प्रदर्शित लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। दीक्षा के समय गुरु, कृपा अथवा अनुग्रह-शक्ति संचार करते हैं। उस शक्ति को पूर्ण करना पड़ता है—अपने पुरुषाकार या कर्म के द्वारा। यह कर्म कृपा द्वारा संचालित है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु कर्म कर्म है, कृपा कृपा है। कर्म का प्रयोजन कृपा द्वारा सिद्ध नहीं होता। अगर कोई खण्डयोगी गुरु अर्थात् सद्गुरु द्वारा दीक्षित होकर उनकी कृपा-शक्ति प्राप्त करता है, फिर भी स्वयं उसके अनुरूप कर्म न करे तो उसे नितान्त अभागा कहना चाहिए। कारण गुरु ने तो महालक्ष्य को उसके सामने रख दिया है, उसे आयत्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करने का पूर्ण अधिकार गुरु से प्राप्त होने पर भी जो कर्मगत आलसवश लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सका। जीवन का काल परिमित है। इस परिमित समय के भीतर कर्म का समाधान करना आवश्यक है। कारण देहत्याग के बाद विदेह-अवस्था में कर्म-देह के साथ सम्बन्ध न रहने पर कर्म करने का अवसर नहीं मिलता एवं योगपथ की अग्रगति स्तम्भित हो जायगी। रक्त-मांसवाली इस देह के रहते कर्म समाप्त करना आवश्यक है, वर्ना लक्ष्य-प्राप्ति की आशा एक प्रकार से सुदूर पराहत है। मरदेह से कर्म करने पर बहुत कम समय के भीतर कर्म समाप्त हो जाता है। कर्म समाप्त किये बिना स्रोत में बहते हुए लक्ष्य-भूमि तक पहुँचने पर उसका कोई विशेष मूल्य नहीं रहता। कारण तब कमल-बिन्दु में स्थान प्राप्त नहीं होता, दल (कमल-दल) में अपने योग्यतानुसार स्थान प्राप्त हो जाता है। किन्तु साधारणतः दल में बैठने का अधिकार होना कठिन रहता है। दल के बाहर ज्योति में डुबकी लगाकर रहना पड़ता है।

किन्तु योगी गुरु शिष्य को योग-दीक्षा देने के बाद उसे आश्रयस्वरूप आसन-दान करते हैं। यह आसन-दान एक रहस्यमय व्यापार है। आसन देने पर समझना चाहिए कि उसे निरन्तर कर्म करने का अवसर दिया गया। आसन का विस्तार भूमि पर किया जाता है। इसलिए गुरु को आसन-दान के साथ-साथ आसन बिछाने लायक भूमि भी दान करनी पड़ती है। किन्तु यह भूमि है कहाँ ? योगी शिष्य जब आसन प्राप्त कर लेता है तब समझना चाहिए कि देहत्याग के बाद भी उसकी आत्मिक सत्ता निरालम्ब अवस्था में, उड्डीयन भाव में विद्यमान रहेगी। उसे भूमि पर बैठने का अवसर मिलेगा। इसी भूमि में अपने-अपने आसन पर बैठकर उसे कर्म करना पड़ेगा। यह कर्म अति दीर्घ काल तक करना पड़ेगा, क्योंकि यह मर-देह का कर्म नहीं है। किन्तु मर-देह न होने पर भी यह कर्म-देह है, जब कि इस कर्म-देह से तेजी से कर्म सिद्ध नहीं होता। योगी शिष्य के निधन के बाद अपविष्ट कर्म सम्पादन करने के लिए जो विशुद्ध व्यापक भू-खण्ड प्राप्त होता है, उसे गुरुधाम कहा जाता है। उस स्थान पर प्रत्येक योगी अपने-अपने आसन पर बैठे कर्म में निरत रहते हैं। लम्बे अर्से के बाद उस कर्म के प्रभाव से योगी का योग-चक्षु उन्मीलित होता है। वास्तव में इसी समय योगी का वास्तविक योग-पथ खुल जाता है। इस पथ पर चलते समय गुरुधामवाली काया नहीं रहती। उस वक्त दृष्टिमय दिव्य स्वरूप में मध्य रेखा का अवलम्बन-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्वक क्रमशः चलते-चलते, चिदाकाश भेद करते हुए लक्ष्यस्थान में उपस्थित हुआ जाता है। यहाँ लक्ष्यस्थान से मतलब है कमल का कोई न कोई एक दल-कर्णिका नहीं। कमल की कर्णिका में जाने का अधिकार एकमात्र उसे प्राप्य है जो मरदेह में रहते हुए सभी कर्मों को समाप्त करने में समर्थ होता है। सर्वत्र मरदेह के कर्मों का पूर्ण प्रभाव न रहने पर, कमल की कर्णिका में बैठने की योग्यता प्राप्त नहीं होती। कर्णिका में बैठने का मतलब है—अंगिरूप में या अंगरूप में चक्र का अधिष्ठाता होना अर्थात् समग्र राज्य का अधिकारी होना, किंवा राजा की भाँति सिंहासन पर बैठना। दल में बैठने का अर्थ है—साधारण प्रजा की भाँति विन्दु की अधीनता स्वीकार करते हुए प्रजा के रूप में अपना स्थान प्राप्त करना। दोनों में अनेक पार्थक्य है।

अतएव पूर्वोक्त विवरण से यह समझा जा सका कि वास्तविक योग-दीक्षा प्राप्त होने पर मृत्यु के पश्चात् गुरु-स्थान में गति होती है तथा वहाँ पूर्वनिर्दिष्ट स्थान प्राप्त होता है। सिद्धभूमि अधिकांश जगहों में इन्हीं गुरुस्थानों के अन्तर्गत है। गोकि इसके बाहर सिद्धभूमि नहीं है, ऐसी बात नहीं है। गुरुधाम से जो गति प्राप्त होती है, जो खण्डयोगी को लक्ष्य तक संचालन करती हुई ले जाती है, उससे देहभेद सिद्ध नहीं होता एवं प्रकृत मध्यरेखा भी प्राप्त नहीं होती। बात अत्यन्त दुरूह है, किन्तु समझ न पाने पर वक्तव्य का अभिप्राय स्पष्ट नहीं होगा। स्वयं विश्वजननी कोई न कोई रूप धारण कर उन्मीलित-योगचक्षु योगी के निकट आकर प्रकट होती हैं। उनका प्रकृत स्वरूप साधक को प्राप्त होता ही नहीं, खण्डयोगी को भी प्राप्त नहीं होता। खण्डयोगी केवल आभासमात्र प्राप्त करता है, पर इस आभास का भी तारतम्य है। योगचक्षु के उन्मीलन के बाद विश्वजननी का जो रूप और राज्य प्रकट होते हैं, वह सबसे निम्नस्तर के हैं। इस राज्य में साधक भी आ सकते हैं और आते भी हैं, किन्तु माँ का स्वरूप-दर्शन नहीं कर पाते। दुर्बल खण्डयोगी स्वरूप-दर्शन जरूर करते हैं, किन्तु वहीं वह विश्राम प्राप्त करते हैं। उसकी अग्रगति वहीं रुद्ध हो जाती है। इसके आगे जो राज्य है, वह विश्वजननी का राज्य है। वहाँ भी कमल-दल पर विश्वजननी का आसन है, किन्तु वह मध्यम खण्डयोगी का आदर्श है। वे उनका दर्शन पाते हैं और वहीं रह जाते हैं। साधक का वही चरम लक्ष्य है, किन्तु साधक की स्थिति एवं योगी की स्थिति एक ही

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थान पर विभिन्न रहती है। खण्डयोगियों में जो उत्तम हैं, उनका आदर्श चिदाकाश के ऊर्ध्व में है, जिसके बारे में कहा जा चुका है। मरदेह में कर्म की समाप्ति न होने तक केन्द्र में जाकर माँ की गोद में बैठा नहीं जा सकता।

विश्वजननी के तीन रूपों के बारे में जो कुछ मैंने कहा, यही तीनों उनके स्वरूप की छाया, अनुछाया एवं प्रतिच्छाया है—इनमें कोई भी वास्तविक स्वरूप नहीं है। किन्तु जो खण्डयोगी हैं पर पूर्णकर्मी हैं, वे छाया को प्राप्त करते हैं, गोकि मरदेह में कर्म-समाप्ति के बाद। कारण रक्तहीन देह में कर्म का उस परिमाण में संवेग उत्पन्न नहीं होता जिसके जरिये मध्यबिन्दु में प्रविष्ट होना सम्भव है। योगी की इस योगभूमि में ऐश्वर्य अतुलनीय रूप में प्रकट होता है, किन्तु महाज्ञान नहीं आता। कारण खण्डयोग के चरम उत्कर्ष की अवस्था में भी महाज्ञान उदित नहीं होता।

महाज्ञान उसी रास्ते में प्रकट होता है जो निज काया-भेद करने के पश्चात् शुद्ध दृष्टि के सामने आत्मप्रकाश करता है। इस पथ के यात्री अत्यन्त दुर्लभ होते हैं, क्योंकि जो यात्री खण्डयोग के पथ पर चलते हैं, वे लोग ठीक से इस पथ को नहीं पहचानते और इस पथ का सन्धान न पाने तक विश्वजननी के स्वरूप-दर्शन की आशा करना अलीक कल्पनामात्र है। प्रत्येक पथ में आदिबिन्दु से अन्तिम बिन्दु तक चिदाकाश की ऊर्ध्वस्थ महाभूमि लक्षित होती है, इसके बाद अथवा बाहर और जो कुछ है या रह सकता है, वह धारणा में नहीं आता। किन्तु महाखण्डयोगी की दृष्टि में जो पथ तैरता है, वह पूर्वोक्त पथ से भिन्न है। कारण पथ के अन्तिम सिरे पर विश्वजननी का वास्तविक स्वरूप दिखाई देता है। यह दृश्य खण्डयोगी के परम आदर्श से ऊर्ध्व में स्थित है और उसकी दृष्टि अगम्य है। उसका लक्ष्य विश्वजननी का स्वरूप होने पर भी वह इस महास्वरूप की प्रथम छायामात्र है। इसकी जो छाया या अनुछाया है वही साधकों की सिद्ध अवस्था का लक्ष्य है। द्वितीय छाया की जो प्रतिच्छाया है वह निम्नस्तर के खण्डयोगियों का लक्ष्य होता है। उसमें से जो रश्मि निर्गत हो रही है, वही अखण्ड रूप में प्रसारित होकर समग्र साधक-कुल के ध्येयरूप में आत्मप्रकाश करती है।

अध्यात्म-मार्ग में कृपा और कर्म का परस्पर जो सम्बन्ध है, वह विशेष रूप से अनुधावन के योग्य है। साधक के जीवन में कृपा का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थान प्रधान एवं कर्म का स्थान गौण है। सच तो यह है कि साधकों का वास्तविक कर्म एक प्रकार से नहीं है, कहा जा सकता है। जो कर्म-रूप में प्रतीत होता है, वह कर्म का आभासमात्र है। कहने का आशय यह है कि योगी के योग-पथ में कर्म ही प्रधान है, गोकि कृपा सर्वत्र है, किन्तु कृपा की अपेक्षा कर्म की महिमा अधिक है। इसमें भी खण्ड और महाखण्डयोग में कर्म का प्राधान्य और उत्कर्ष रहने पर भी आपेक्षिक दृष्टि से कृपा ही प्रधान है। किन्तु अखण्डयोग में कृपा गौण है, यहाँ तक कि स्थूलतः लुप्तप्राय है, किन्तु कर्म ही अपनी प्रधानता लेकर खण्डकृपा को अभिभूत रखते हुए आत्मप्रकाश करता है। इस प्रकार कर्म जब स्वप्रतिष्ठित होने पर पूर्ण पुरुषाकार प्रकटित होता है एवं महाकृपा आत्मप्रकाश करती है। महाकृपा भी परमपुरुषाकार अभिन्न रूप में, एक ही क्षण में प्रकट हो जाती है।

दीक्षाकाल में खण्ड योगी जैसे आसन प्राप्त करता है, उसी प्रकार महाखण्डयोगी भी आसन प्राप्त करता है, पर यह उच्चतर आसन होता है। खण्डयोगी स्वकर्म को अगर असमाप्त रखकर देहत्याग करता है तो देहान्त के बाद एक भुवन प्राप्त करता है, जहाँ स्थित होकर निज-निज आसन में कर्म करने का अधिकार उत्पन्न होता है एवं कर्म-समाप्ति के बाद नेत्र उन्मीलित होने पर दिव्य दृष्टि उन्मीलित हो जाती है और इसीके सहारे चिदाकाश के ऊर्ध्व में स्थित भूमि तक अग्रसर होना सम्भव होता है। महाखण्डयोगी उच्चतर लोक से आते हैं। उन्हें ऊर्ध्वतर भूमि का पता चल जाता है एवं उनका अनुसरण कर चलते-चलते यथासमय उक्त भूमि पर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। खण्डयोगी के लक्ष्य से महाखण्डयोगी का लक्ष्य विशाल होता है। खण्डयोगी के चरम लक्ष्य के बाद से महाखण्डयोगी के चरम लक्ष्य तक जो मार्ग दिखाई देता है, वह एक प्रकार से अभिनव आविष्कार है। आपात दृष्टि से इसे विश्व का केन्द्र मान लिया जा सकता है। अखण्ड योग में इस विश्व के सहित विश्वातीत महासत्ता का योग प्रतिष्ठित होता है। किन्तु उस प्रसंग को यहाँ उपस्थित करना उचित नहीं है।

महाखण्डयोग-दीक्षा के बाद परम प्रकृति के स्नेहमय उत्संग में बैठने का अधिकार प्राप्त होता है। गोकि यह कर्म साक्षेप है, किन्तु जो योगी मरदेह में कर्म समाप्त करने के पूर्व देह-त्याग करता है, वह खण्डयोगी की तरह एक ऐसा आसन प्राप्त करता है जिसका आश्रय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेकर वह प्रकृति के ऊर्ध्वदेश में एक सिद्धस्थान प्राप्त करता है जहाँ अपना आसन बिछाकर अपना शेष कर्म पूर्ण करने में समर्थ होता है। यह सिद्धस्थान तिब्बतीय गुप्त योगियों की भाषा में 'ज्ञानगंज' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ज्ञानगंज सिद्धभूमि है और पूर्ववर्णित गुरुधाम भी सिद्धभूमि है, किन्तु दोनों में भेद है। गुरुधाम में अपूर्ण खण्डयोगी कर्म पूर्ण करने के लिए स्थान प्राप्त करते हैं—इसी स्थान पर उनके गुरु-प्रदत्त आसन हैं। उसी प्रकार ज्ञानगंज में अपूर्ण महाखण्डयोगी आरब्ध कर्म पूर्ण करने के लिए स्थान ग्रहण करते हैं--उनकी आसन-प्राप्ति है। वास्तव में दीक्षाकाल में यह आसन या बैठने का स्थान प्राप्त हो जाता है, गोकि यह स्थान दीक्षाकाल में दीक्षार्थी या दीक्षितों को दिखाई नहीं देता।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि योगी के साधना-जीवन में कर्म ही प्रधान है। फलस्वरूप इस जीवन में गुरु से जो कृपा प्राप्त होती है, उसे सम्यक् रूप में शोध कर देना चाहिए। कृपा से अपनी शक्ति का विकास स्थगित रहता है, जब कि साधना की प्राथमिक अवस्था में कृपा के बिना एक पग आगे बढ़ने का उपाय नहीं है। इसीलिए योगी के लिए यह नियम है कि गुरु से जो कृपा ग्रहण की जाती है, आगे चलकर स्वकर्म के द्वारा गुरु को शोध (वापस) करना चाहिए। गुरुदत्त कृपा ऋण के रूप में ग्रहण कर अपने द्वारा ऊर्जित कर्म के द्वारा उसे चुका देना चाहिए। तब भविष्य का पथ सुप्रशस्त होता है, इसके पूर्व नहीं। गुरु का प्रधान कार्य है—शिष्य को काल के राज्य से उद्धार करना। साधन-मार्ग में यह सम्पन्न होता हैं, योग-मार्ग में भी होता है। किन्तु साधन-मार्ग में केवल काल की उत्ताल तरंगों से शिष्य का उद्धार कर गुरु की करुणा निवृत्त हो जाती है, उसे कालातीत किसी उच्च पद पर वे अभिषिक्त नहीं कर सकते। योग मार्ग में कर्मों की प्रधानता रहती है इसलिए कालातीत राज्य में योगी विशिष्ट अधिकारसम्पन्न स्थान प्राप्त करता है। खण्डयोगी के अधिकार से महाखण्डयोगी का अधिकार श्रेष्ठ है एवं सर्वश्रेष्ठ अधिकार अखण्डयोगी को है जो अभी तक जगत् में प्रकट नहीं हुआ है। अखण्डयोगी का महान् अधिकार ही समग्र विश्व को सभी प्रकार के अभाव से मुक्त करते हुए पूर्ण आनन्द और ऐश्वर्य से प्रतिष्ठित करने में समर्थ है।

साधकों के कर्म की समाप्ति होती है, पर योगियों की कर्म समाप्ति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं होती। योगी पूर्णत्व प्राप्त करने के बाद भी क्रियाहीन होकर बैठा नहीं रहता। उसका स्वभावसिद्ध कर्म चलता रहता है। इसकी निवृत्ति नहीं होती और न हो सकती है। इसीलिए पूर्णता प्राप्त करने के बाद भी पूर्ण को पूर्णतर, पूर्णतम आदि क्रम से अनन्त अवस्था के भीतर से उत्कर्षण करना पड़ता हैं, यही है योगी के कर्मों की स्वाभाविक परिणति। श्री अरविन्द ने अपने ग्रन्थ विश्व-समस्या (The Riddle of the World) में इंगित किया है कि आपातदृष्टि से अज्ञान सम्यक् प्रकार से निरत न होने तक कर्म की धारा अथवा क्रम-विकास अवश्यम्भावी है। किन्तु वास्तव में भगवत्-स्वरूप में प्रविष्ट होने पर भी अनन्त अग्रगति की सम्भावनाएँ हैं। उनका यह वाक्य अत्यन्त सत्य है। साथ ही साथ यह भी सत्य है कि यह अनन्त अग्रगति अखण्ड स्थिति के भीतर ही होती है। स्थिति प्राप्त न करने पर अनन्त कर्म का कोई अर्थ नहीं होता—तब स्थिति ही कर्म का लक्ष्य होती है। किन्तु स्थिति के बाद भी कर्म को रखा जा सके तो वही होता है—दिव्य कर्म, जिसका अन्त कभी नहीं हो सकता।

ज्ञानगंज की योग-दृष्टि के अनुसार तीन योग-क्षेत्रों का पता चलता है। पहले क्षेत्र में महाभाव तक लक्ष्यरूप में मिलता है। इस क्षेत्र की भूमि होती है गुरुधाम। खण्डयोगी अगर कर्म पूर्ण कर लेता है तो लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, अगर पूर्ण नहीं कर पाता तो जिस अवस्था में देह-त्याग होता है, उसी अवस्था में अनुरूप स्थिति प्राप्त कर क्रमशः लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की संभावना रहती है। स्थूल देह के त्याग के बाद क्षिप्रगति से कर्म नहीं होता, धीरे-धीरे चलता है।

दूसरा योग-क्षेत्र पहलेवाले से व्यापक है, इसका लक्ष्यस्थान महाभाव के अतीत है, यहाँ तक कि सूर्य-मण्डल के ऊर्ध्व में है। यही परम प्रकृति का स्वरूप प्रकाश है। इसकी भूमि ज्ञानगंज है। महाखण्ड-योग-क्रिया के अवसान पर यह लक्ष्य खुल जाता है। पहले की भाँति इस स्थल में भी स्थूल देह से कर्म समाप्त कर लेने पर लक्ष्य के सन्निहित होना सहज-साध्य है, किन्तु कर्म असंपूर्ण रखकर देह-त्याग करने पर ज्ञानगंज से कर्म की गति चलती रहती है। पहले की तरह यह गति भी अपेक्षाकृत खराब हैं, स्थूल-देह के कर्म की तरह क्षिप्र नहीं है।

तीसरा योग-क्षेत्र अभी तक अंकन के भीतर ही समाप्त हैं। इसकी भूमि और लक्ष्य विश्व-गुरु है। कालराज्य के बाहर नहीं है इसलिए भूमि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और लक्ष्य-प्राप्ति में काल का कोई व्यवधान नहीं है। इसका क्षेत्र अखण्ड विश्व है। इस स्थल में भी स्थूल देह से कर्म की पूर्णता के बिना भूमि और लक्ष्य की प्राप्ति असंभव है।

तीनों ही क्षेत्र कर्मस्थान हैं। पहलेवाली की परिधि अति विशाल है। काल का राज्य इस परिधि के बाहर अवस्थित है। दूसरेवाली की परिधि पहलेवाली की अपेक्षा अनेक अधिक विशाल है, इसके फलस्वरूप काल का राज्य काफी संकुचित हो गया है। तीसरे की परिधि विश्व या सृष्टि जगत् है। यहाँ काल का राज्य शून्य के रूप में परिणत हो गया है। इसीसे समझा जा सकता है कि तीनों योग-क्षेत्रों में कर्म की तीव्रता क्रमशः अधिक है। सूर्य-मण्डल को भेद न करने पर तीसरे क्षेत्र में प्रतिष्ठित नहीं हुआ जा सकता। साथ ही साथ यह भी प्रतीत होगा कि गुरु की करुणा-शक्ति की मात्रा पहले क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रबल है और दूसरे क्षेत्र से तीसरे क्षेत्र में और अधिक प्रबल है। वास्तव में इसीका नामान्तर है—महाकरुणा। केवल यही नहीं, कृपा का क्षेत्र भी क्रमशः अधिक प्रसारित होते-होते तीसरी भूमि में विश्वव्यापी हो गया है।

कृपा और कर्म दोनों मूलतः एक ही शक्ति है। एक ही अखण्ड सत्ता अविभक्त रहती हुई अपने को लीला के द्वारा द्विधा विभक्त करती रहती है। इस प्रकार एक ओर अणु और दूसरी ओर महान्, एक ओर बृहत् और दूसरी ओर क्षुद्र, इस प्रकार दो परस्पर विरुद्ध भावों का उदय होता है। अणु को महान् के पास जाने के लिए कर्म का अवलम्बन करना पड़ता है। अणु में जो शक्ति निहित है, वही कर्मरूप में अभिव्यक्त होकर अणु की अग्रगति में सहायता करती है। किन्तु केवल कर्मशक्ति के द्वारा अणु के लिए महान् को प्राप्त करना संभव नहीं है। महान् की कृपा-शक्ति भी अणु के लिए सहायक बनना आवश्यक है। अतएव महान् की कृपा-सहकृत अणु की कर्मशक्ति एक प्रधान उपाय है। इसी प्रकार कृपा-शक्ति की प्रधानता के स्थान पर भी समझना होगा। महान् की कृपा उद्रिक्त (बढ़ जाना) होते ही अणु महान् हो जायगा अथवा महान् अणु हो जायगा यह कहा नहीं जा सकता। कृपा के सहकारी रूप में अणु की कर्मशक्ति अभिव्यक्त और प्रयुक्त होना आवश्यक है। इस प्रकार दोनों शक्तियों के परस्पर मिश्रण से अणु और महान् का योग सिद्ध होता है। साधारण दृष्टि से देखने पर कर्म-सापेक्ष कृपा और कृपा-सापेक्ष कर्म दोनों आवश्यक हैं। अणु के प्रकृतिभेद से सापेक्षता का तार-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तम्य होता रहता है। यहाँ याद रखना होगा कि निरपेक्ष शक्ति की क्रिया भी कहीं-कहीं संभव है। यहाँ वह पूर्ण शक्ति का द्योतक है, कारण अपूर्ण शक्ति निरपेक्ष नहीं हो सकती। अगर यही शक्ति कृपा-रूप में प्रकट होती है तो उस कृपा को धारण करने के लिए उपयोगी अणुनिष्ठ कर्म शक्ति भी उसमें से प्रकट होगी। दूसरी ओर से यही पूर्ण-शक्ति अगर अणु की कर्म-शक्ति प्रकट होती है तो वह कर्म-शक्ति के सहकारी के रूप में कृपा-शक्ति को, वह स्वयं ही महाकृपारूप में अभिव्यक्त कर देती है। फलस्वरूप अवस्थान और आत्मैश्वर्य का विकास यथावत् होता है। किन्तु इसके भीतर एक गम्भीर समस्या विचारणीय है। कृपा के प्राधान्य से मिलन और अद्वैतस्थित ऐश्वरिक शक्ति का आश्रय लेने पर होता है अर्थात् ऐश्वरिक कृपा जैसे-जैसे वर्द्धित होती है, वैसे-वैसे आत्मा कर्मानुरूप ऊर्ध्वगति प्राप्त करती है और गति के अवसान पर परमात्मा के स्वरूप में एकत्व प्राप्त करती है। अगर कर्म की प्रधानता स्वीकृत होती है तो उस कर्म के प्रभाव से अनुरूप अनुग्रह-शक्ति के विकास में, ईश्वर-सत्ता क्रमशः सन्निहित होती रहती है तथा अन्तिम दशा में ईश्वरभूत योगी के स्वरूप में आत्म-समर्पण करती है। ये दोनों अद्वैत स्थिति हैं। किन्तु दोनों में पृथकता है।

प्रथम अवस्था में 'मैं' 'तुम' के रूप में परिणत होकर अद्वैतभाव ग्रहण करता है। उस समय गोकि तुम-मैं एक हो जाते हैं। द्वितीय परिस्थिति में तुम मैं में परिणत होता है, गोकि इसके बाद उसी मूल स्थित में प्रवेश होता है। एक और स्थिति है। उस समय 'मैं' को 'तुम' के निकट जाना नहीं पड़ता तथा 'तुम' को 'मैं' के पास आना नहीं पड़ता। उस वक्त मैं अपने में ही तुम को खोज लेता है, तुम को खोजने के लिए बाहर जाना नहीं पड़ता। उसी प्रकार तुम भी अपने भीतर मैं को खोज लेता है, मैं के लिए तुम को भी बाहर जाना नहीं पड़ता। दोनों में ही आश्रयतत्त्व और विषयतत्त्व विद्यमान रहता है। जो आश्रय है वही विषय है एवं जो विषय है वही आश्रय है। अतः एक का अभाव, दूसरे का अभाव, एक की प्राप्ति, दूसरे की प्राप्ति—दोनों में कोई भेद नहीं है। इन दोनों का समीकरण होने पर परम परिपूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा होती है। उस वक्त आश्रय और विषय का साम्य अभिव्यक्त होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No........8594..................

तीनों योग-क्षेत्र काल के अतीत हैं। किन्तु प्रथम और द्वितीय के क्षेत्र के बाहर काल का राज्य मौजूद है। तृतीय क्षेत्र अभिव्यक्त होने पर काल का राज्य अलग से नहीं रहेगा। प्रथम और द्वितीय क्षेत्र काल के राज्य के समसूत्र में रहने पर भी उन दोनों राज्यों पर काल का प्रभुत्व नहीं है। किन्तु प्रभुत्व न रहने पर भी किंचित् प्रभाव विद्यमान है। प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न स्तर हैं। निम्नवर्ती स्तर में काल का किंचित् प्रभाव दिखाई देने पर भी ऊर्ध्व स्तर में उसका अत्यन्त ह्रास हो जाता है। गोकि अत्यन्त सूक्ष्म भाव में वह रहता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। तृतीय क्षेत्र में, बाहर काल-राज्य के न रहने पर भी अन्तःप्रविष्ट रूप में, उस क्षेत्र के भीतर काल की शक्ति क्रिया करती रहती है। परिपूर्ण अवस्था पाने के लिए यह आवश्यक है। यह क्रमशः परिस्फुट होगा।

काल का धर्म है—जरा और मृत्यु। शरीर का क्रमिक विकास, जिसकी वजह से सद्योजात शिशु-देह वृद्ध शरीर में परिणत होता है—वही जरा है। काल के प्रभाव के कारण ऐसा होता है। काल के जगत् में जरा से कोई मुक्त नहीं हो सकता। काल का दूसरा धर्म है मृत्यु। काल के जगत् में यह सर्वत्र दिखाई देता है। इसीलिए काल के जगत् को मरलोक अथवा मृत्युलोक के नाम से अभिहित किया जाता है। अतः काल के राज्य के ऊर्ध्व में किसी राज्य की स्थापना होने पर उसमें से काल के इन दोनों धर्मों को स्वभावतः वर्जित होना चाहिए। इसके अलावा भूख-प्यास ये दोनों काल-राज्य के आनुषगिक धर्म हैं। लिहाजा क्रमशः शुद्ध जगत् में ये दोनों धर्म तिरोहित हो जाते हैं। काल-राज्य एक और आनुषगिक धर्म है—कामवृत्ति का प्रभुत्व एवं तदाश्रित अन्य मानसिक वृत्ति क्रियाएँ। शुद्ध राज्य के सम्बन्ध में वैशिष्ट्य देखने में आता है।

मर्त्यलोक के ऊर्ध्व में नाना प्रकार की स्वर्गीय भुवनावली और उसके अनुरूप भोग प्रधान दिव्य स्थान हैं। इसलिए इन सभी स्थानों में काम का अभाव नहीं है और न भोग की निवृत्ति है। पर वहाँ काल का वेग भूलोक से अन्य प्रकार का होने के कारण जरा का अनुभव नहीं होता एवं काल में देह का पतन होता है। ये सब स्थान कर्म-भूमि नही हैं। वह सब भोगभूमि एवं योगियों के लिए सर्वथा हेय हैं। पहले जिस योगक्षेत्र के बारे में कहा गया है, वह सब स्थान अत्यन्त विशुद्ध एवं कर्म-भूमि हैं इसलिए उन स्थानों मे भोग का आधिपत्य नही है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. ....

यद्यपि वहाँ काल का प्रभाव अनुभूत होता है, किन्तु ऊर्ध्व स्तर में वह भी नहीं होता। मगर काल का किंचित् प्रभाव रहने के कारण निम्न स्तर मृत्यु-वर्जित होने पर भी जरा वर्जित नहीं है। स्वर्गादि भोग-स्थानों में जैसे जरा वर्जित होने पर भी आपेक्षिक मृत्यु वर्जित नहीं है, यह सब ठीक इसके विपरीत है—मृत्यु वर्जित होने पर भी जरा वर्जित नहीं है। ऊर्ध्व स्तर में न मृत्यु है और न जरा। निम्न स्तर में जरा रहने के कारण वहाँ के योगी, ऋषि सहस्रों वर्ष तपस्या कर वृद्धत्व प्राप्त करते हैं तथा जराजीर्ण देह लेकर कर्म को पूर्ण करने के लिए निरन्तर उद्यत रहते हैं। इसी कर्म-फल के कारण वे लोग निम्न स्तर से ऊर्ध्व स्तर में उन्नीत हो जाते हैं। उस वक्त उन लोगों की स्थविर जीर्ण देह किशोर अथवा तरुण दिव्य लावण्यमय श्री-विग्रह रूप में परिणत हो जाती है। गुरुधाम तथा ज्ञानगंज दोनों ही स्थानों में यह विशिष्टता देखने में आती है।

ज्ञानगंज के बारे में पहले कुछ चर्चा की गयी है। उससे ज्ञानगंज के तत्त्व के बारे में किंचित् आभास हुआ है। ज्ञानगंज एक प्रकार से अभिनव आविष्कार है, यह कहा जा सकता है, जब कि यह स्थान अनादिकाल से विद्यमान है—पहले अव्यक्त रूप में, इसके बाद अभिव्यक्त और पुष्ट रूप में। हम पहले एक के बाद एक, तीन योगभूमियों के बारे में बता चुके हैं—ये सब योगियों की उपलब्धि गोचर एवं प्राप्य माया-तीत और कालातीत राज्य हैं। इन तीनों में पहलेवाले को हमने गुरु-धाम अथवा गुरुराज्य नामकरण किया है—दूसरे को ज्ञानगंज कहा है और तीसरे का कोई नामकरण नहीं किया है, क्योंकि वह अभी तक अव्यक्त अवस्था से व्यक्त अवस्था में प्रकट नहीं हुआ है। पहलेवाला योग-भूमि के रूप में गुरुराज्य के बारे में आगमशास्त्र में विशुद्ध, अध्वा नाम से सांकेतिक रूप में वर्णन किया गया है। साधारणतः प्रचलित साधन-प्रणाली से उसका स्पष्ट सन्धान जरूर नहीं मिलता, किन्तु गुह्य साधन-संक्रान्त आगम-साहित्य में इसका स्पष्ट निर्देश है।

अगर हम शुष्कज्ञान और दिव्यज्ञान की चर्चा करें तो इन दोनों ज्ञानों में भेद-दर्शन कर सकते हैं। शुष्कज्ञान का संधान सर्वत्र प्राप्त है, किन्तु उसके द्वारा पूर्ववर्णित गुरुराज्य में प्रवेश नहीं किया जा सकता, ज्ञानगंज में प्रवेश करना तो दूर की बात है। दिव्यज्ञान का आश्रय लिये बिना गुरुराज्य का द्वार उन्मुक्त नहीं होता। प्राचीन गुह्य शास्त्रों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में यहीं तक स्पष्ट रूप से निर्देश किया गया है। यह गुरुराज्य सृष्टि के अवतरण मुख पर लक्षित नहीं होता। कारण आत्मा अणुरूप में संकुचित होकर साक्षात् भाव से, ईश्वरी की प्रेरणा पर माया-गर्भ में पतित होती है एवं कर्मजाल में फँस जाती है। तदनन्तर उसका भोग-प्रधान सांसारिक जीवन आरम्भ होता है। गुरुराज्य का अस्तित्व अवतरणशील चिदाणु को दृष्टिगोचर नहीं होता। दूसरी ओर वापस लौटते समय उच्च अधिकारसम्पन्न होने पर गुरुराज्य में प्रवेश मिलता है और भाग्य में रहने पर भेद भी हो जाता है। जिन आत्माओं की कुण्डलिनी-शक्ति कम जाग्रत होती है, वे सब भी गुरु कृपा से अंशीदार होते हैं यह सत्य है, किन्तु यही गुरु-कृपा प्रत्यगात्मा का कृपात्मक पुरुषाकार रूप में आत्मप्रकाश करती है। फलस्वरूप विवेक ज्ञान का उदय होता है, जिसके प्रभाव से अनात्मा में आत्मदृष्टि रूप भ्रान्ति निवृत्त होती है और आत्मस्वरूप अनात्मभाव से मुक्त होकर चिद्रूप में प्रकाशित होता है। इस ज्ञान के अनल में कर्मबीज दग्ध हो जाने के कारण आत्मस्वरूप स्थिति से च्युत होने की सम्भावना नहीं रहती और न पुनर्वार जन्म-मृत्यु के चक्र में आवर्तित होने की आशंका रहती है। यही है—प्रचलित केवली भाव या कैवल्य।

जो आत्माएँ गुरु की तीव्रतर कृपा प्राप्त करती हैं, वे और उच्चपद के अधिकारी होते हैं—उनकी कुण्डलिनी जब जागृत हो जाती हैं तब वे क्रमशः ऊर्ध्वगति प्राप्त करती हैं। पूर्वोक्त आत्मा के कुण्डलिनी जागरण से द्वितीय प्रकार की आत्माओं के कुण्डलिनी जागरण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कारण इसी स्थान पर ऊर्ध्वगति की सूचना होती है एवं चरम अवस्था में ऊर्ध्वतम शिखर तक पहुँचा जा सकता है। बोध ही आत्मा का स्वरूप है, यह प्रथम क्षेत्र में भी अभिव्यक्त होता है। इसलिए यह स्थिति भी चित्स्वरूप में स्थिति है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु चित्शक्ति का विकास इसमें नहीं होता। द्वितीय जागरण में चित्शक्ति का उन्मेष होता है। गोकि यह आभास है—इसीका नाम है शुद्ध विद्या का उदय या गुरुराज्य में प्रवेश। शुद्ध विद्या के पूर्णत्व से भविष्य में शिवत्व की अभिव्यक्ति होती है। शुद्ध विद्या गुरुराज्य की वस्तु है, यही दिव्यज्ञान है। इसमें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति दोनों रहती हैं। कैवल्यरूप स्थिति पर चित्स्वरूप में स्थिति होती जरूर है, किन्तु चित्-शक्ति का आभासात्मक उन्मेष भी नहीं रहता। किन्तु गुरुराज्य में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चित्शक्ति का क्रमशः अधिकतर विकास होता रहता है। पहले मिश्र भाव में अर्थात् रिपु के साथ मिलित भाव में, बाद में शुद्धभाव में। गुरुराज्य का द्वार खुल जाने के साथ-साथ ज्ञानशक्ति का परिपूर्ण उन्मेष होता है एवं समग्र विश्व को केन्द्रस्थ एक अहंभाव के ऊपर स्पष्ट रूप से तैरते हुए देखा जाता है। उस वक्त अहंभाव ही आत्मस्वरूप का परिचायक होता है--यही आत्मा में आत्मबुद्धि के उदय का प्रतीक है, इसीका नाम बल का विकास है। शक्ति का ज्ञानांश अनावृत्त रहता है सम्पूर्ण भाव में, किन्तु क्रियांश धीरे-धीरे आत्मप्रकाश करता है। क्रिया-शक्ति की क्रमिक अभिव्यक्ति के फलस्वरूप आत्मनिष्ठ अहंभाव क्रमशः परिस्फुट होकर उठता रहता है--पूर्ण गुरुतत्त्व में जाकर अखण्डबोध का पूर्ण अहंभाव प्रस्फुटित हो उठता है। पहले जिस अहं पर इदंभाव का आभास था, बाद में वह फिर नहीं रहता। यही प्रकाशात्मक शिव-भाव ही गुरुराज्य का केन्द्र है। यहाँ ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति और इच्छा-शक्ति सम्मिलित रूप में या स्वतन्त्र रूप में दिखाई देती है। इसका भी क्रमिक विवर्तन है--इच्छा का जो पूर्णतम विकास है, वहीं ज्ञान-क्रिया और इच्छा का पूर्ण एकत्व सिद्ध है। वास्तव में शिव और शक्ति का एकत्व भी वहीं है। प्राचीन गुफा-साधना में यहीं परम शिव की स्थिति तथा यही पूर्णत्व का निर्देशन है। जिसे दिव्य ज्ञान कहा गया है, उसके प्राथमिक स्तर की समाप्ति भी यहीं है।

इस तरह ज्ञात होता है कि चिदणु माया में उतरते समय गुरुराज्य का पता नहीं पाता, किन्तु वापस आते समय उच्च अधिकारसम्पन्न होने पर पता प्राप्त कर लेता है। पर इसके बाद जो कुछ और रह जाता है, उसे अनभिज्ञ पथिक सामान्य तौर पर जान नहीं पाता। ज्ञानगंज की सत्ता वास्तव में गुरुराज्य के अतीत है। यथार्थ रूप से देखने पर ज्ञात होता है कि ज्ञानगंज ही उच्चतर गुरुराज्य का भूमिस्वरूप है, अर्थात् ज्ञानगंज से ज्ञानगंज का लक्ष्यस्थान परमा-प्रकृति तक जो विशाल राज्य है, वह पहले ज्योति मात्र था, राज्य रूप में परिणत नहीं हुआ था, किन्तु वह महाखण्ड योगी के कालदेहानुष्ठित कर्म के प्रभाव से राज्यरूप में परिणत हो गया है। ज्ञानगंज और पूर्वोक्त गुरुराज्य के स्तर में भिन्नता रहने पर भी प्रकार में भिन्नता नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह विशाल योगभूमि भी अर्थात् महाखण्ड योगी का अधिकार क्षेत्र भी वास्तव में गुरुराज्य नहीं है। पर वर्तमान समय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तक गुरुराज्य का श्रेष्ठतम आदर्श इसे कहा जा सकता है। वास्तव में चरम आदर्श अखण्ड गुरुराज्य जो है, उसकी अभी तक प्रतिष्ठा नहीं हुई है, उसकी प्रतिष्ठा के लिए कर्मठ योगिमण्डल में आन्दोलन चल रहा है। प्रथम गुरुराज्य से द्वितीय गुरुराज्य अधिकतर व्यापक और उच्चतर है, किन्तु अखण्ड-गुरुराज्य प्रतिष्ठित होने पर यह उच्च और निम्न भाव नहीं रहेगा, तब व्यापकत्व समग्र सृष्टि को आश्रय देगा, इसीलिए पूर्व का गुरुराज्य एवं मध्यवर्ती ज्ञानगंज काल की सृष्टि के साथ उसके अन्तर्गत आ जायगा।

काल के राज्य में काल की देह का आश्रय लेकर कर्म की समाप्ति आवहमान काल से अभी तक सिद्ध नहीं हुई है। यद्यपि मैं योगी के कर्म की बात कह रहा हूँ, साधक की बात नहीं। कर्म की आपेक्षिक समाप्ति अवश्य हुई है, यहाँ तक कि काल-राज्य में किसी-किसीने इसका सम्पादन किया है, यह भी सच है—कारण अगर यह न होता तो पूर्वोक्त ज्ञानगंज और गुरुराज्य की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती थी। कर्म की यथार्थ समाप्ति नहीं हुई है इसलिए पूर्वोक्त किसी भी राज्य में मध्यबिन्दु ठीक-ठीक स्थापित नहीं हुआ है—इन सभी स्थानों के मध्यबिन्दु, जो गुरु के आसन हैं, उस पर अधिकार किया है 'माँ' ने—गुरु ने नहीं। गोकि उन स्थानों में 'माँ' ही गुरु हैं। प्रथम राज्य में अर्थात् पूर्वोक्त गुरुराज्य में माँ ही शिवरूप में प्रकट हुई हैं। ज्ञानगंजात्मक द्वितीय क्षेत्र में, विशाल त्रिशक्तिमय त्रिकोण राज्य स्थापित है, तीन कोणों में तीन शक्ति के राज्य हैं—एक से दूसरा अधिकतर व्यापक है। त्रिकोण के मध्यबिन्दु में परमाप्रकृति का अधिष्ठान है। यही तुरीय बिन्दु एवं विश्व-सृष्टि का अन्तरतम और ऊर्ध्वतम स्थिति-केन्द्र है। ज्ञानगंज के कर्म काल की देह में समाप्त होने पर इस विशाल परमाप्रकृति के राज्य में प्रवेश कर, मध्यबिन्दु में स्थिति प्राप्त की जा सकती है। पहले-वाले से यह श्रेष्ठतर गुरुराज्य है यह सत्य है, किन्तु पहले ही कह चुका कि यह भी वास्तविक गुरुराज्य नहीं है। यहाँ भी माँ ने ही गुरुरूप में आत्मप्रकाश किया है। यह भी वास्तव में गुरु का स्व-स्थान नहीं है। इस राज्य को भेद करने के बाद अखण्ड गुरुराज्य का प्रारम्भ होता है, कहा जा सकता है। किन्तु यह भी अभी तक अव्यक्त है। अखण्ड गुरुराज्य की चर्चा अब आगे होगी। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकृति या माँ का राज्य ही आनन्द का राज्य है। परमा प्रकृति के भेद के बाद चैतन्य राज्य का सूत्रपात होता है, इसके पहले नहीं।

यहाँ एक और बात स्मरण रखनी होगी। प्रथम गुरुराज्य का जो चरम लक्ष्य है, वहीं पर वास्तविक अखण्ड गुरुराज्य में जाने का पथ विद्यमान है। यह पथ सूर्य मण्डल के भीतर से अग्रसर हुआ है तथा योग्य अधिकारी के बिना हर कोई इस पथ पर चल नहीं सकते। सूर्य मण्डल भेद करने के लिए महाज्ञान आवश्यक है। इस महाज्ञान को प्राप्त कर प्रथम गुरुराज्य के केन्द्र में स्थित हो जाने पर ऊर्ध्व से आपेक्षिक महाकृपा संचार के फलस्वरूप अपने आप हो जाती है। इस आंशिक महाकृपा को प्राप्त किये बिना प्रथम गुरुराज्य भेद करना सम्भव नहीं होता। यह सच है कि इसके कारण अखण्ड गुरुराज्य की उद्‌भावना के पक्ष में अपरिहार्य सहायता प्राप्त होती है; किन्तु ज्ञानगंज की लक्षीभूत परमाप्रकृति को जब तक भेद न किया जाय तब तक प्रथम कृपा कार्यकारी नहीं होती तथा अखण्ड गुरुराज्य की प्रतिष्ठा की सम्भावना नहीं होती। परमाप्रकृति को भेद करने के लिए पूर्वोक्त महाज्ञान आवश्यक है। अगर पहले ही सूर्य मण्डल भेद करा लिया जाय एवं उसके बाद प्रकृति-राज्य को भेद किया जाय तो प्रकृत गुरु या विशुद्ध भगवत्-सत्ता को प्राप्त किया जा सकता है। प्रथम गुरुराज्य में केन्द्र की स्थापना नहीं हुई है—उसके बाहर काल का घेरा विद्यमान है। द्वितीय गुरुराज्य और ऊर्ध्व में अवस्थित है। इसकी भूमि पूर्ववर्णित ज्ञानगंज एवं शिखर बिन्दु वही है, जिसे लोकोत्तर कर्म के प्रभाव से प्राप्त किया जा सकता है। अभी तक सूर्य-मण्डल को भेद करने का सवाल ही पैदा नहीं हुआ। किन्तु सूर्य-मण्डल जब तक भेद नहीं होगा तब तक गुरुराज्य में प्रवेश की सम्भावना नहीं रहती। प्रथम और द्वितीय महाकृपा इसके लिए पर्याप्त नहीं है, इसके लिए तृतीय महाकृपा आवश्यक है। इसी महाकृपा से वास्तविक अर्थात् अखण्ड गुरुराज्य का द्वार उन्मुक्त हो जाता है। उस वक्त एक ऐसा भयंकर विप्लव होता है जिससे जगत् की सभी प्राचीरें भग्न हो जाती हैं। पूर्वोक्त राज्य टूट जाता है, चिदाकाश में स्थित चिन्मय राज्य टूट जाता है और माया से पृथ्वी तक सभी स्तर के अधिवासियों के लिए लक्ष्य खुल जाता है। इस अभिनव-राज्य में सभी स्तर के जीवों को प्रवेश करने का समान अधिकार है। यह किसीकी उपेक्षा नहीं करता, यहाँ किसीके वंचित होने की सम्भावना नहीं रहती।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसमें प्रवेश करने तथा अवस्थान करने का अधिकार सभी को प्राप्य है। इस अभिनव राज्य का द्वार उन्मुक्त होने पर इसके भीतर समस्त विश्व को स्थान प्राप्त हो जाता है। गोकि यहाँ स्थान प्राप्त करने के लिए योग्यता पर विचार किया जाता है, किन्तु प्रवेश के बारे में योग्यता का कोई प्रश्न नहीं है। योग्य हो या अयोग्य हो, यहाँ प्रवेश करने का समान अधिकार सभी को है। इस परम गुरुराज्य में केन्द्र प्रतिष्ठित होता है तथा इसी केन्द्ररूपी आसन पर कर्मी सन्तान श्रेष्ठतम अधिकार प्राप्त कर बैठती हैं। उस वक्त विश्व कमल प्रस्फुटित होता है, वह अनन्तदल सम्पन्न रहता है--पूर्ववर्ती विभिन्न राज्यों की प्रजा, उन राज्यों के उजड़ जाने के बाद इस अखण्ड गुरुराज्य में आसन प्राप्त करती हैं। पृथ्वीवासी सभी मनुष्य भी उस समय इस महाकमल के दल में आकर स्थित होते हैं, यही उनका आसन है। इस आसन को प्राप्त करने के लिए इस अखण्ड राज्य के केन्द्रस्थ अधिष्ठाता की आज्ञा आवश्यक है, कारण उनकी अनुमति या अनुग्रह के बिना उनके राज्य में प्रजा अवस्थान नहीं कर सकती। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि केन्द्रस्थ अधिष्ठाता से संचारित शक्ति और अनुग्रह प्राप्त करने पर उस राज्य में स्थिति प्राप्त होती है।

किन्तु यहीं अन्त नहीं है। पहले गुरुराज्य में गुरु के अनुग्रह का आश्रय लेकर प्रवेश होता है। अनुग्रह एवं कर्म प्राप्ति काल की देह अर्थात् मरदेह से होती है। मरदेह से कर्म सम्पूर्ण होने पर राज्य के केन्द्र में बैठा जा सकता है अन्यथा चारों बगल में स्थान प्राप्त होता है। यहाँ से कर्मों का अनुष्ठान क्रमशः पूर्ण होने पर केन्द्र तक जाने का अधिकार प्राप्त होता है। यही शिवत्व है। दूसरे राज्य में केन्द्राधिष्ठाता गुरु का अनुग्रह प्राप्त होने पर कर्म में अधिकार प्राप्त होता है। यही है मरदेह की कहानी। उक्त देह से कर्म पूर्ण होने पर पूर्ववत् केन्द्र में बैठने का अधिकार प्राप्त होता है। यही उच्चतर केन्द्र है। काल की देह से कर्म पूर्ण न होने पर—ज्ञानगंज जाकर वहाँ कर्म को पूर्ण करना पड़ता है। यह सुदूर भविष्य की बात है। इन दोनों स्थानों में मरदेह से कर्म सम्पूर्ण होने की जैसी सम्भावना है, उसी प्रकार असम्पूर्ण रहने की भी सम्भावना है। अखण्ड गुरुराज्य के बारे में भी वही एक नियम है। इस स्थान पर भी कर्म प्राप्ति मरदेह से ही होती है। मरदेह से कर्म पूर्ण होने पर उस राज्य के मध्य बिन्दु में आसन मिल जाता है। उस समय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काल का सम्पूर्ण पराजय हो जाता है अर्थात् काल फिर नहीं रहता, मृत्यु की मृत्यु हो जाती है। पहले और दूसरे राज्य के केन्द्र से बाहर कर्म-दान सम्भव नहीं है। केन्द्र से काल के राज्य में कर्म दिया जाता है, इसके बाद उस कर्म को पूर्ण करने का भार आश्रितों पर रहता है। काल के जगत् में अगर उसे पूर्ण कर लिया गया तो कोई बात ही नहीं, वरना किंचित्-काल स्पर्शयुक्त अमर गुरुराज्य में जाकर, सुदीर्घ काल तक उसे पूर्ण करना पड़ता है। उसे पूर्ण किये विना गुरु का ऋणशोध नहीं होता, गुरु का अनुग्रह निरर्थक हो जाता है। दूसरे राज्य में भी यही बात है। किन्तु तीसरे राज्य में ऐसी बात नहीं है, कारण उक्त राज्य सूर्य मण्डल के उस पार है। इसलिए महाज्ञान के द्वारा सूर्य मण्डल का भेद होने पर तथा इधर परमा प्रकृति का भेद होने पर, महाकृपा के अन्तिम उन्मेष से अन्तिम द्वार अपने आप उद्घाटित हो जाता है। उस वक्त इस पार और उस पार के व्यवधान कारक और संयोजक भेद-रेखा मिट जाती है, यह काल और पर काल एवं लोक तथा लोकोत्तर एक ही अखण्ड प्रकाश में प्रकाशित होते हैं। इस महाप्रकाश में उदय-अस्त नहीं है एवं ह्रास-वृद्धि भी नहीं है, यही है तीसरे गुरुराज्य के बिन्दु का परिचय, जब कि गुरुराज्य के केन्द्र से कर्म में आने पर कर्म का पूर्ण होना अवश्यम्भावी है। वर्तमान देह से कर्म पूर्ण न होने पर अलौकिक देह से कर्म पूर्ण होगा ही, यह नियम यहाँ लागू नहीं है, कारण यहाँ लौकिक देह ही लोकोत्तर रूप में परिणति प्राप्त करता है, अतएव इस तीसरे राज्य की प्रतिष्ठा होने पर अर्थात् कम-से-कम एक जन भी अगर इस पूर्ण अवस्था में, कर्म की पूर्णता के साथ-साथ मरदेह प्राप्त करता है तो उसके लिए कुछ भी करणीय नहीं रहेगा। विश्व-जगत् का प्रत्येक अणु-परमाणु उसके साथ युक्त हो जाता है एवं उससे प्रेरणा प्राप्त कर बहुत शीघ्र अपने कर्म की पूर्णता प्राप्त करता है तथा महाबिन्दु के साथ तादात्म्य प्राप्त करता है।

यहाँ एक और निगूढ़ सन्धान देने का प्रयत्न कर रहा हूँ। गुरुराज्य के केन्द्र में हम लोगों ने जिसे पाया है, वे हैं अखण्ड प्रकाश रूप; वे ही शिव तत्त्व हैं। यद्यपि यह शिव देह स्थित समस्त चक्रभेद के बाद सहस्रार में अथवा सहस्रार के ऊर्ध्व में अनन्त प्रकाश के रूप में प्रकाशमान होते हैं। ज्ञानगंज से जिस राज्य की सूचना प्राप्त होती है, उसका लक्ष्य परमा प्रकृति है, इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करने के लिए शिव-भाव को परम शिव-भाव में परिणत करना आवश्यक है, कारण ये परमा प्रकृति परम शिव के नाभिकुण्ड से उठकर कमलासन में विराज रही हैं। शिवावस्था में यह सम्भव नहीं है। गुरुराज्य का लक्ष्य है कि शिव उनके साथ शक्ति का योग सिद्ध होने पर वह शिव परमशिव के रूप में आत्मप्रकाश करते हैं। शक्ति का पूर्ण विकास हो जाने पर नाभिमार्ग खुल जाता है और तब उस नाभिमण्डल से ब्रह्मनाल निकलता है। यह षट्चक्र-भेदनकारी ब्रह्मनाल से उत्कृष्ट है, कारण यह शिव की नाभि से निकलती है तथा इसके ऊपर कमल की कर्णिका में महाशक्ति विराजती हैं। उस वक्त शिव परमशिव, उस वक्त निद्रित-वत् अवस्थित रहते हैं। प्रथम राज्य के शिव शव रूप में स्थित रहते हैं, किन्तु द्वितीय राज्य के शिव अर्थात् परमशिव शव न होने पर भी सुप्त होते हैं (निमेष)। इससे देखा गया कि इस द्वितीय राज्य में भी पूर्णत्व सम्भव नहीं है। तन्त्रशास्त्र में षट्त्रिंश तत्त्व के उपदेशों में शिव का भाव आदर्श प्रदर्शित होने पर भी इशारे से तत्त्वातीत परम शिव की ओर अंगुलि निर्देश किया गया है। किन्तु शिवतत्त्व से तत्त्वातीत परमशिव में किस प्रकार से उपनीत हुआ जाय, उस पथ का निर्देश नहीं है। मगर प्रकारान्तर से कहा गया है कि शिवभाव में शक्ति की पूर्ण सत्ता अभिन्न भाव में विद्यमान है। इसीलिए शिवभाव प्रकाशात्मक होने के कारण विश्वातीत होने पर भी वही पूर्णत्व की मूल भित्ति है, किन्तु शक्ति-जागरण के अलावा ऊर्ध्वगति सम्भव नहीं है। शक्ति के किंचित् जागरण से शिव बन जाते हैं शव, किन्तु शक्ति के और अधिक जागरण से शिव सुप्त हो जाते हैं। शक्ति के पूर्णतम जागरण से शिव भी पूर्ण जाग्रत हो जाते हैं। काली आद्याशक्ति, ये शिवमयी शक्ति के जागरण के प्रथम पर्व हैं। उस वक्त शिव शव रहते हैं। तारा संधिस्थान तब तक शिव का शवत्व परिहृत नहीं हुआ है। ललिता या राजराजेश्वरी तृतीया शक्ति हैं, इनके पूर्ण जागरण से शिव निद्रित हो जाते हैं। अब शव-भाव दूर हो गया है, किन्तु निद्राभाव (निमेष) अभी मौजूद है। ज्ञानगंज की परम अवधि यहीं तक है। अभी भी पूर्णत्व अवशिष्ट है। ज्ञानगंज की साधना में शास्त्र का जो अस्फुट इंगित है, वह स्पष्ट हो गया है। कारण शिवभाव के बाद परम शिवभाव यहीं प्रतिष्ठित है।

हम जानते हैं कि श्री श्री गुरुदेव ज्ञानगंज की साधना पूर्ण करते समय नाभिधौति-क्रिया प्राप्त करने के लिए किस कदर उत्कण्ठित हो गये

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थे एवं कैसे उसे श्रीगुरु कृपा से प्राप्त किया था। इस नाभिधौति के फलस्वरूप वे शिवभाव से परम शिवभाव तक उन्नीत हुए थे, ऐसा सोचा जा सकता है। साथ ही साथ महाशक्ति राज राजेश्वरी को अपनी नाभि से निकले कमल पर आसन देने में समर्थ हुए थे। उन्मुक्त नाभि कमल के साथ नवोदित ज्ञान-सूर्य का गहरा सम्बन्ध है। इस सूर्य के उदय होने पर नाभि कमल प्रस्फुटित होता है, यह बात जितनी सत्य है उसी प्रकार नाभि कमल प्रस्फुटित न होने पर इस सूर्य का पता नहीं लगता, यह भी सत्य है। यही ज्ञान सूर्य ही महाज्ञान के द्योतक हैं। गुरुराज्य के केन्द्र में जिस शिवभाव की स्थापना हुई है, उसके बाद इसी महाज्ञान की सम्भावना है। सूर्यमण्डल को भेद करना आवश्यक है वरना सूर्यमण्डल के उस पार स्थित अखण्ड गुरुतत्त्व से साक्षात्कार करना बहुत ही कठिन है। साथ ही साथ यह भी सत्य है कि परमाप्रकृति अथवा राज राजेश्वरी को भी भेद करना होगा। जिस अखण्ड गुरुराज्य या तृतीय राज्य के बारे में कह चुका हूँ, उसकी प्रतिष्ठा के लिए ये दोनों आवश्यक हैं, यह सत्य है कि शिव का शवत्व मुक्त हो गया है, किन्तु परमशिव का सुप्ति भंग (निमेष त्याग) अभी तक नहीं हुआ है। परम-शिव का जागरण सिद्ध होने पर पूर्ण जागरण हुआ—कहा जा सकता है। उस समय शिव-शक्ति नाम से कुछ भी पृथक् नहीं रहेगा, एक अखण्ड चैतन्य रहेगा। पर इसमें भी क्रम है, कारण पहले होती है आनन्द की प्रतिष्ठा, इसके बाद होती है विज्ञान की प्रतिष्ठा, इसके बाद होती है सत्य की प्रतिष्ठा।

यहाँ एक बात प्रणिधान योग्य है। योगी कर्म के प्रभाव से अग्रसर होता है यह सत्य है, किन्तु इस कर्म के साथ कृपा या अनुग्रह का ऐसा घनिष्ठ है कि चरमावस्था में इन दोनों का भेद नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि गुरुराज्य में गुरुदत्त प्राथमिक अनुग्रह कर्म के आकार से शिष्य के जीवन में प्रकाश होता है, कारण ऐसा न होने पर दीक्षा प्राप्ति के अव्यवहित पर मृत्यु होने से शिष्य गुरुराज्य में स्थान प्राप्त करता है किसके जोर से ? आसन-तत्त्व एक ओर कृपा और दूसरी ओर कर्म को अभेद में धारण कर रहा है। गुरुदत्त आसन से यही समझ में आता है कि एक ओर यह जैसे गुरु की कृपा है, दूसरी ओर उसी प्रकार शिष्य के भावी कर्मों की सम्भावनीयता है। यह ठीक है कि बाद में कर्म करना पड़ता है, किन्तु इसकी सम्भावना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आसन के बिना नहीं होती। यद्यपि यह कृपा भी एक हिसाब से ऋण है, कारण बाद में वह शिष्य के कर्मों के द्वारा शोधित होता है, तथापि इसे काल राज्य से उद्धार करने का अव्यर्थ उपाय है। द्वितीय राज्य में यह कृपा जैसी गभीर है वैसे ही इसके संसृष्ट कर्मों का बल और प्रसार भी अधिक है। किन्तु द्वितीय राज्य में ही सब समाप्त नहीं होता, कारण यहाँ भी कर्म बाकी रह गया है एवं कृपा भी अवशिष्ट रहती है। कृपा और कर्म का मिलन अभी तक नहीं हुआ है। अभी तक गुरु की कृपा और शिष्य के कर्म कुछ अलग-थलग मौजूद हैं, जब कि दोनों का काफी हद तक मिलन संघटित हुआ है। परमाप्रकृति के राज्य के अन्तिम छोर तक कृपा की अवधि है। वहाँ तक जो कर्म है, वह कृपा के अधीन है अर्थात् स्पष्ट-कृपा के अधीन है। किन्तु परमाप्रकृति के राज्य को भेद करना, अखण्ड गुरुधाम में प्रवेश करना तथा सर्वप्रथम शिवावस्था से ऊर्ध्व में उठना, सभी महाकृपा का साक्षेप है, किन्तु यह गुप्त है। यह अजानकारी में घट जाती है, किन्तु कृपा का कार्य सिद्ध हो जाता है। कृपा के रूप में कृपा का परिचय जरूर नहीं मिलता, किन्तु कृपा अपना फल प्रसव करती है। परमाप्रकृति के राज्यभेद हो जाने पर अखण्ड गुरुधाम के द्वार तक पथ दुर्गम है। इस पथ पर कृपा अर्थात् प्रकट कृपा का संधान नहीं मिलता। तृष्णार्थ पथिक प्यास से आर्त होकर रोने लगता है। तृष्णा निवारण जल को अर्पण करने के लिए कोई उसके पास हाथ बढ़ाकर नहीं देता। किन्तु यह न देने पर भी अज्ञात रूप से, अचिन्त्य ढंग से उसकी प्यास की बेचैनी घटती जाती है और कष्ट कम होता जाता है।

साधक के कुण्डलिनी-जागरण की पूर्ण परिणति चिदाकाश में इष्ट के साथ तादात्म्य होता है। उद्वृत्तशक्ति की कमी के कारण साधक योगी बन नहीं सकता। खण्डयोगी का कुण्डलिनी-जागरण का चरम फल शुद्ध विद्या का उन्मेष और उसके विकास में शिवत्व प्राप्ति है। यहीं जीव का जीवभाव दूर होकर शिवभाव की प्राप्ति होती है। साधक शिव नहीं हो सकता। किन्तु केवली हो सकता है अर्थात् विदेह-केवली। यह निरंजन पशु की एक अवस्था है। योगी खण्ड होने पर भी कर्म की पूर्णता से शिव होता है, उसमें जीवभाव नहीं रहता, विदेह भी नहीं होता—सिद्ध खण्डयोगी होता है और उसकी काया होती है शक्ति। गुरुराज्य में सर्वत्र वैन्दव काया है, किन्तु ज्ञानगंज के अधोक्षेत्र में वैन्दव-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काया और ऊर्ध्व में शक्ति काया है। बैन्दव काया अमर है, किन्तु वैन्दव काया में पूर्व काल-सम्बन्ध संस्कार के रूप में रहने तक जरा रहने पर भी मृत्यु नहीं रहती, किन्तु शक्ति काया में जरा नहीं रहती। वह अजर-अमर है, वही श्रेष्ठ दिव्यकाया है। दिव्यज्ञान के बिना दिव्यकाया का उद्‌भव नहीं होता। शुष्कज्ञान से मायिक काया की निवृत्ति जरूर होती हैं और यह भी सच है कि कर्म बीज नष्ट हो जाते हैं, किन्तु शुद्ध विद्या के अभाव के कारण काया की प्राप्ति नहीं होती। ज्ञानगंज के ऊर्ध्व की ओर सभी स्वरूप से किशोर-किशोरी हैं—सभी की स्थिति शिवत्व रूप में महाप्रकाश में है। भैरवी-अवस्था में जरा रहती हैं, पर देवी-अवस्था में जरा नहीं रहती।

गुरुराज्य की साधना जीव की साधना शिव होने के लिए है; किन्तु ज्ञानगंज की साधना शिव की साधना परमशिव होने के लिए है अर्थात् अपने आधार पर पराशक्ति के पूर्णतम विकास के लिए है। गुरुराज्य की साधना में जिस षट्‌चक्र का भेद होता है, वह जीवदेह का षट्‌चक्र है, किन्तु ज्ञानगंज की साधना में उक्त षट्‌चक्र भेद नहीं करना पड़ता तथा शिवत्व प्राप्ति के साथ-साथ उसकी आवश्यकता भी नहीं होती। किन्तु शिवत्व प्राप्त होने से सब तो नहीं हुआ। कारण शिवत्व में अगर शक्ति अन्तर्लीन रहे तो शक्ति की कोई क्रिया नहीं रहती है। इसीलिए शिव भी प्रायः अव्यक्त हो जाते हैं। ये शिव विश्वातीत महाप्रकाश के साथ अभिन्न हैं। शिव के साथ उनकी निजशक्ति का पूर्ण संयोग होने पर सामरस्य भाव का उदय होता है। पहले हुआ था शिव का जागरण, अब हुआ शिव की पूर्ण शिवत्व की प्राप्ति के साथ-साथ शक्ति का जागरण। इसके बाद होगा एक ऐसी अवस्था का उदय, जहाँ जाग्रत शिव और जाग्रत शक्ति अभिन्न होकर प्रकाशमान होंगे। उस वक्त शिव की महानिद्रा भंग होगी एवं परमशिव पृथक्-सत्ता लेकर नहीं रहेंगे—पूर्ण अद्वैत सत्ता का उदय होगा। किन्तु सूर्यमण्डल भेद न होने तक इस तरह की स्थिति सम्भव नहीं है। सूर्यमण्डल भेद कर लेने पर अन्तराल-वर्ती सभी पर्दे कट जाते हैं। अखण्ड गुरुराज्य का प्रकाश तभी सम्भव है। ज्ञानगंज की साधना और सिद्धि इसी अखण्ड भूमि की प्राप्ति में सहायक है।

ज्ञानगंज अथवा गुरुराज्य की चर्चा के बारे में स्वभावतः एक प्रश्न जिज्ञासुओं के मन में उत्पन्न हो सकता है। प्रश्न यों है—कोई शुष्कज्ञान

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राप्त कर प्रकृति से विवेक प्रतिष्ठित होने के कारण कैवल्य प्राप्त करते हैं, और कोई दिव्यज्ञान प्राप्त कर उस ज्ञान के क्रमिक उत्कर्ष से गुरुराज्य अथवा ज्ञानगंज आदि भूमि में प्रवेश करने में समर्थ होते हैं। सद्गुरु के अनुग्रह के मूल में इस प्रकार पार्थक्य क्यों देखने में आता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है—सद्गुरु एक हिसाब से अखण्ड विश्व-गुरु हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु जिस आधार से उनकी शक्ति संचारित होती है, उसके धारण-सामर्थ्य के तारतम्यानुसार, संचारित शक्ति का तारतम्य घटती है। इसोलिए अनुग्रह के प्रकाश में पार्थक्य का अनुभव होता है। वास्तव में उसका कोई पक्षपात नहीं है। आधार सामर्थ्य के तारतम्य का कारण यह है कि सभी अवतरण मुख से एक ही स्थान पर अवतीर्ण नहीं होते। कोई ज्योति से माया में विसृष्ट होता है—गोकि अणु रूप में ज्योति के भीतर पहले ही स्थिति प्राप्त कर चुका था, कोई ज्योति के अतीत चिन्मय राज्य से अवतीर्ण होता है। इस चिन्मय राज्य का इतर विशेष है, यह सच है कि मूल में सभी उसी अखण्ड अचैतन्य शक्ति-स्पन्दन से उद्भूत होते हैं। इसोलिए वापस जाते समय जो जहाँ से उतरकर आया है, उसे वहीं खींच लिया जाता है। जिस ज्योति से सुप्तावस्था के साथ माया-गर्भ में पतित हुआ है—गोकि कर्म समष्टि के भीतर से—संसार में प्रविष्ट होने के बाद, उसके लिए शुष्कज्ञान प्राप्त कर प्रकृति के बाहर शुद्ध बोधस्वरूप में स्थित होना ही मुक्तिपद है, इससे अधिक की आकांक्षा वह कर ही नहीं सकता। फिलहाल यह उसका प्राप्य भी नहीं है। अनात्मा में आत्मबोध निवृत्त होने पर कर्म बीज स्वभावतः नष्ट हो जाता है। उस समय जन्म-मृत्यु के कारण कट जाते हैं एवं कैवल्यपद में अवस्थान होता है। इन सभी आत्माओं के लिए दिव्यज्ञान प्राप्ति की सम्भावना कहाँ है?

किन्तु जो आत्मा चिन्मय भूमि से उतर आयी हैं, वे अगर वापस जाना चाहें तो ज्योतिभेद कर चिन्मय राज्य में जाना आवश्यक है। इस अवस्था में केवल अनात्मा में आत्मबोध की निवृत्ति पर्याप्त नहीं हैं, आत्मा में आत्मबोध का उदय भी आवश्यक है। यह आत्मबोध ज्यों-ज्यों विकास प्राप्त करता है त्यों-त्यों आत्मा में अनात्मबोध दूर होता रहता है अर्थात् शुद्ध अहंभाव बढ़ता जाता है एवं इदंभाव कटता रहता है। चरमावस्था में, शुद्ध आत्मा में पूर्ण अहंभाव विराजता है। यही शिवत्व है। इसी प्रकार गुरुराज्य की ऊर्ध्व सीमा तक गति की प्रणाली

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुह्यभाव से होने पर भी तांत्रिक साहित्य में इसे प्रकट किया गया है। किन्तु गुरुराज्य से ज्ञानगंज में चढ़ने की प्रणाली का कहीं उल्लेख नहीं है, कारण यह और भी गुह्य है। ज्ञानगंज में सब आत्माएँ प्रत्यावर्तन करती हैं, जो उस भूमिप्रपंच में उतर आयी हैं। महाखण्डगुरु छाँट-छाँटकर उन्हें खींच लेते हैं। कारण उनमें ज्ञानगंज वापस जाने की स्वाभाविक प्रवणता है। यहीं तक हम लोगों की आलोचना की वर्तमान सीमा है। इस नीति का अनुसरण करने पर समझ में आयेगा कि अखण्ड गुरुराज्य में अधिकार के अनुसार गति होती है।

प्रत्येक राज्य में दो विभाग हैं—एक केन्द्र, दूसरा बाह्य। केन्द्र का बल कम होने पर उसका अधिकार क्षेत्ररूप गोलक छोटा होता है। केन्द्र का बल अधिक होने पर वह क्षेत्र और बड़ा हो जाता है। केन्द्र का बल अपरिसीम होने पर वह क्षेत्र फलतः विश्वव्यापी, यहाँ तक कि अनन्त हो जाता है। केन्द्र की शक्ति प्रबल होने पर केन्द्र में प्रवेश करनेवाले अधिकारियों की संख्या खूब कम होती है; किन्तु केन्द्र के प्रबल होने के कारण कृपा विस्तार का क्षेत्र अपरिसीम बृहत् नहीं होता। जितना उतर आया जाता है उतना ही केन्द्र दुर्बल होता है, इसीलिए कृपा विस्तार के साथ-साथ कुछ-कुछ नियंत्रणादि के बन्धन रह जाते हैं। अगर केन्द्र और भी दुर्बल हो जाय तो अनुग्रह का क्षेत्र संकुचित होता है, इसलिए नियम और विधान अपेक्षाकृत कठिन होता है। कारण अगर ऐसा नहीं हुआ तो केवल दुर्बल केन्द्र के द्वारा फल सम्पादन संभव नहीं है।

इसीलिए अखण्ड गुरु की दृष्टि से उनके अनुग्रह के अयोग्य या अविषयीभूत कुछ भी नहीं रह सकता।

ज्ञानगंज के बारे में मोटे तौर पर कुछ बताया गया, किन्तु सवाल यह उठ सकता है कि ज्ञानगंज एवं तदनुरूप अन्य स्थान (जैसे वृन्दावन), इन दोनों में पार्थक्य क्या है? ज्ञानगंज कहने पर हम तिब्बत के पास निगूढ़ स्थान-विशेष को लक्ष्य नही बना रहे हैं, यद्यपि यह सत्य है कि उक्त स्थान भी वास्तविक ज्ञानगज से संसृष्ट है, कारण तत्त्वमय ज्ञानगज का ही वह अर्थमय प्रकाश है। इसी प्रकार वृन्दावन कहने से हम उत्तर-पश्चिम प्रदेश के अन्तर्गत मथुरा के समीप स्थान विशेष का लक्ष्य नहीं करते, जब कि यह सत्य है कि यह क्षेत्र भी इस भौम वृन्दावन के साथ वास्तविक वृन्दावन का संसर्ग है, यहाँ तक कि तादात्म्य भी है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वृन्दावन माधुर्यमयी भक्ति-साधना का श्रेष्ठ स्थान है। ज्ञानगंज कर्मभूमि है। पृथ्वी पर पार्थिव देह से आरब्ध कर्म यहीं पूर्ण हो सकता है, देहादि का संस्थान उसके अनुकूल भाव में यहाँ मिल जाते हैं एवं कर्म पूर्ण होने पर जिस लक्ष्य तक पहुँचा जायगा, वह भी वहाँ से आभास रूप में दिखाई देता है। किन्तु वृन्दावन इस तरह का कर्म-स्थान नहीं है, पर भावस्थान है। भाव-साधना यहाँ आरब्ध होकर अगर असम्पूर्ण रह गयी तो वृन्दावन में तदुपयोगी देह की प्राप्ति होती है एवं इस साधना का क्रम-विकास चलता रहता है, कारण वहाँ भी स्तर-विभाग है। जिस प्रकार ज्ञानगंज में अभिनव देहादि की प्राप्ति होती है, जिसका चरम लक्ष्य जरा और मृत्यु से छुटकारा है, वृन्दावन में भी उसी प्रकार भगवान् के बहिरंग और अन्तरंग साधन के लिए उपयोगी देह-भाव की प्राप्ति होती है एवं उस भाव-देह का क्रम-विकास किसी न किसी समय पूर्ण रस की अभिव्यक्ति होती है और तब चरम सिद्धि प्राप्त होती है।

ज्ञानगंज में दिवा-रात्रि का विभाग नहीं है, यही बात वृन्दावन में भी है। ज्ञानगंज भूमि मृत्तिकारूपी नहीं है, उसी प्रकार वृन्दावन की भूमि भी मृत्तिकारूपी नहीं है, दोनों ही चिन्मय हैं। इतना होने पर भी दोनों में भेद है। ज्ञानगंज का लक्ष्य 'माँ' है जिसे पाने के लिए शिव को नाभिधौत सिद्ध कर परमशिवरूप धारण करना पड़ता है। वृन्दावन का लक्ष्य 'माँ' नहीं, वृन्दावन में माँ का कोई स्थान नहीं है। यहाँ तक कि उनकी भी नहीं है जो ज्ञानगंज के परम लक्ष्य राजराजेश्वरी या ललिता। वृन्दावन में वे मातृरूप परिहार कर रासलीला की प्रधान सखीरूप हैं। इसका अति निगूढ़ तात्पर्य है। श्री श्री गुरुदेव के श्री गुरु की धारा ज्ञानगंज से माँ को पकड़कर अनन्त की ओर अग्रसर हो रहे हैं, किन्तु गुरुदेव के श्री गुरु के गुरुभ्राता श्रील भवदेव गोस्वामी की धारा माँ का परिहार कर क्लान्त भाव को धरकर युगल-उपासना में पर्यवसित हुए हैं।

आलमन्दार संहिता में है कि भगवान् की लीला तीन प्रकार की है—एक वास्तव या पारमार्थिक, एक प्रातिभासिक एवं एक व्यावहारिक। वेदान्त में जिस प्रकार सत्ता को पारमार्थिक, प्रातिभासिक और व्यावहारिक—इन तीन भागों में विभाग किया गया है, विज्ञानवादी बौद्धों के शास्त्रों में जैसे स्वभाव को परिनिष्पन्न, परिकल्पित और परतन्त्र—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन तीन भागों में विभाग किया गया है, उसी प्रकार वैष्णव लोगों ने लीला को तीन भागों में विभाग किया है। ये त्रिविध लीला के स्थान भी तीन प्रकार के हैं—वास्तव या पारमार्थिक लीला अक्षर ब्रह्म के हृदय-देश में दृष्ट होती है, प्रातिभासिक लीला नित्य वृन्दावन में होती है एवं व्यावहारिक लीला निर्दिष्ट समय पर ब्रजभूमि में होती रहती है। यह याद रखना होगा कि अक्षर ब्रह्म का हृदय वृन्दावन है, प्रातिभासिक लीला की जो भूमि है, वह भी वृन्दावन है तथा ब्रजभूमि भी वृन्दावन का नामान्तर है। ये तीनों वृन्दावन होने पर भी इनमें परस्पर पार्थक्य है। अनुरूप युक्ति और परिभाषा के माध्यम से कहा जा सकता है कि ज्ञानगंज के भीतर भी इस प्रकार के भेद हैं। जो वास्तविक ज्ञानगंज है, वह वही अक्षर ब्रह्म के हृदयस्थ वृन्दावन की तरह चिन्मय प्रदेश है। वह वृन्दावन जैसे—

तत्स्थानं कोटि ब्रह्माण्ड-महाशून्याद् विलक्षणम्।
मानं तस्यापि किमपि विद्यते नैव शाम्भवि॥
तत्रं भूमि स्वप्रकाशामाकाशं च तथाविधम्।
जलं तथाविधं विद्धि तेजश्चैव तथाविधम्॥ इत्यादि

उसी प्रकार वास्तविक ज्ञानगंज की भूमि में आकाश, जल, तेज सब कुछ स्वप्रकाश है अर्थात् वहाँ मिट्टी नहीं है, आकाश आदि नहीं है, एकमात्र चैतन्य ही भूमि आदि के रूप में प्रकाश पाते हैं। जो व्यावहारिक ज्ञान है, वही सिद्ध पुरुष आदि से परिचित है, किन्तु जो पारमार्थिक ज्ञानगंज है वह योग के चरम शिखर पर बिना उत्थित हुए उपलब्ध नहीं किया जा सकता। इसीलिए कहा जाता है कि तिब्बत के स्थानविशेष में ज्ञानगंज है जहाँ अधिष्ठातृ वर्ग लोगों की सहानुभूति न रहने पर प्रवेश नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि उस स्थान का पता नहीं चलता।

कर्म की सार्थकता और भक्ति की सार्थकता साधकों के जीवन में अलग-अलग होती है। कर्म द्वारा अधिकार-सम्पत्ति प्रबल होने पर उक्त स्थान का पता सभी पा सकते हैं। इस अधिकार-सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए स्थूल देह से गुरु निर्दिष्ट कर्मराशि को समाप्त करना पड़ता है—जरा-सा आभास बाकी न रहे। कर्म समाप्त न होने पर आधार में बलाधान नहीं होता, स्वरूप के महान् प्रकाश को धारण करने की योग्यता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्पन्न नहीं होती। कृपा धारण करने के लिए योग्यता आवश्यक है। महाकृपा ही वास्तविक कृपा है, उस समय की योग्यता ही श्रेष्ठ योग्यता है। ज्ञानगंज, केवल-केवल ज्ञानगंज में क्यों, प्रत्येक योग-भूमि में यह योग्यता बढ़ाने के उपाय हैं। इसके फलस्वरूप कर्म क्रमशः पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है। इसीलिए गुरुराज्य, ज्ञानगंज तथा अखण्ड गुरुक्षेत्र जो भावी प्रकाश के अन्तर्गत हैं—सभी भूमिरूप हैं। पारमार्थिक ज्ञानगंज का पता सभी के लिए जानना सम्भव नहीं है। पर किसी-किसीको जिस ज्ञानगंज का पता लगा है, सुनने में आता है, उसे व्यावहारिक ज्ञानगंज से जुड़ा हुआ मानना चाहिए।[1] •

---

१. ज्ञानगंज का विवरण "श्री श्री योगिराजाधिराज विशुद्धानन्द परमहंस" नामक ग्रन्थ में यत्र-तत्र उल्लेख है। "ब्रह्माण्डोनो भेद" नामक सन् १९२६ ई० में प्रकाशित गुजराती ग्रन्थ में, तिब्बत में स्थित जिस "सत्य ज्ञानाश्रम" या "ज्ञानमठ" नामक गुप्त मठ का उल्लेख है, वह ज्ञानगंज से ही सम्बन्धित है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। यह मठ हिमालय पर तिब्बत देश में है। इसके चारों ओर पाँच मील तक तुषार प्रदेश है। इस मठ में जिस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है, उसकी तुलना पृथ्वी में अन्य स्थान से नहीं की जा सकती। प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य के शासनकाल में सिद्धपुरी, आत्मपुरी और ज्ञानपुरी नामक तीन पर्यटक भ्रमण करते हुए ब्रह्मदेश में घूमने के बाद इस गुप्त स्थान में आकर स्थायी रूप से निवास करने लगे थे। यहाँ योग, अमृत सिद्धि, अन्यान्य विज्ञान सम्बन्धी तत्त्व के बारे में चर्चा होती थी। यह स्थान इतना गुप्त है कि दीर्घ काल के भीतर चीन, ब्रह्मा और आसाम के बारह व्यक्तियों के अलावा अन्य किसीको इसका पता ज्ञात नहीं हो सका है। कुछ दिनों बाद दो महात्मा यहाँ से चले गये। (वही, पृष्ठ ७७)

रोम निवासी एक यात्री ने इस स्थान को "ज्ञानमठ" के नाम से एक लेख में उल्लेख किया है। यहाँ तीन महापुरुष अलौकिक दिव्यशक्ति-सम्पन्न हैं, इसका वर्णन किया गया है। इस मठ में बिना आज्ञा कोई भीतर प्रवेश नहीं कर पाता था। (वही, पृष्ठ ७८) एक अन्य ग्रीक पर्यटक ने भी इस स्थान के बारे में लिखा है। उनका कथन है कि तिब्बत के इस मठ की तरह अद्भुत स्थान मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखा है। उनके मत से यहीं पृथ्वी का स्वर्ग है (वही, पृष्ठ ७८) चीन के ऐतिहासिक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Fengliyan ने कहा है कि दुर्गम पथ के अन्तराल में स्थित इस मठ में योग क्रिया की चर्चा होती है जिसे बहुत से लोग नहीं जानते, पर ऐसा लगता है कि कभी पृथ्वी की वास्तविक उन्नति इन योगियों के द्वारा सिद्ध होगी। ये योगी जो इच्छा करते हैं, वह सव कर सकते हैं। एक अन्य ऐतिहासिक ने कहा है कि वायुमण्डल में एक अदृश्य महल बनाकर ज्ञानमठ की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी हैं। (वही, पृष्ठ ७९)

"देव दर्शन" के प्रथम खण्ड में है कि किंवदन्ती के अनुसार अनन्त योगी नामक एक महाराष्ट्रीय योगी भगवान् दत्तात्रेय के आदेश से योग-शिक्षा के लिए ज्ञानगंज गये थे और वहाँ कई वर्ष निवास करते रहे।

ज्ञानगंज नामक वर्तमान लेखक का एक लेख गोरखपुर से प्रकाशित "कल्याण" नामक मासिक पत्रिका के योगांक में काफी पहले प्रकाशित हुआ था। कहने की आवश्यकता नही कि वह लेख व्यावहारिक ज्ञानगंज के बारे में था

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देह और कर्म एवं ज्ञानगंज की सारकथा

श्री श्री गुरुदेव कहा करते थे—"शरीरं केवलं कर्म शोकमोहादि-वर्जितम् ।" कर्म से शरीर होता है यह जिस प्रकार सत्य है, उसी प्रकार कर्म के लिए शरीर है, उतना ही सत्य है। शरीर के बिना कर्म नहीं होता, भोग भी नहीं होता। प्रारब्ध के कर्मों का फल भोगने के लिए शरीर धारण करना पड़ता है एवं जितने दिनों तक वह भोग समाप्त नहीं हो जाता, उतने दिनों तक शरीर-धारण आवश्यक है। भोग-समाप्ति के साथ-साथ शरीर-पात घटता है। जाति, आयु और भोग, ये तीनों प्रारब्ध के फल हैं। देह-सम्बन्ध ही जाति या जन्म है एवं इस सम्बन्ध के विच्छेद से मृत्यु होती है। दोनों के अन्तरालवर्त्ती समय उक्त सम्बन्ध का स्थितिकाल है। इसे प्रचलित भाषा में आयु कहा जाता है। सुख-दुःख जो अपना नियत कर्मफल है, भूतपूर्व कर्म के कारण आता है, उसे बिना विचारे भोग करना पड़ता है। तभी वह कट जाते हैं वरना भोग काल में भी अभिनव कर्मबीज संचित होने की सम्भावना रहती है।

जिस देह से कर्म किया जाता है, वह कर्मदेह है, जिस देह से कर्म-फल, सुख-दुःख भोग किया जाता है, वह भोगदेह है एवं जिस देह से कर्म भी होता है और भोग भी होता है, वह मिश्र देह है। साधारणतः कामातुर, लता, पशु-पक्षी, प्रेतयोनि, असुरादि और नरक-वासी जीवों की देह भोगदेह होती है। मनुष्य की देह कर्मदेह और भोगदेह दोनों ही है। कर्म कर अर्थात् पुरुषाकार प्रयोग करते हुए जीवन-पथ में अग्रसर होने की एकमात्र योग्यता मनुष्य को ही है—अन्य प्राणियों में वह सामर्थ्य नहीं है। इसीलिए मनुष्य का इतना गौरव है। तत्त्वविदों ने इसीलिए नरदेह का इतना अधिक महिमा-कीर्तन किया है। भगवान् शंकराचार्य ने मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष संश्रय—इन तीनों को जीवन की दुर्लभ सम्पद् कहकर कीर्तन किया है। भक्त रामप्रसाद ने भी—

मन रे तुमि कृषिकाज जान ना
एमन मानव जमिन रइल पतित,
आबाद करले फलत सोना,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[हे मन, तुम खेती का काम नहीं जानते। ऐसी मानव-जमीन परती रह गयी। अगर खेती होती तो सोना फलता।]

यह कहकर उन्होंने अपने अमर संगीत में मनुष्य-देह के उत्कर्ष का ज्ञापन किया है। यह जो खेती का काम कहा गया है, इसीका नाम है—कर्म, मानव-देह की सहायता से मन के द्वारा इसे सम्पन्न करना चाहिए। यही कारण है कि मानव-देह का इतना महत्त्व है। प्रकृति के नियमानुसार ८४ लाख योनि भ्रमण करने के बाद जीव को अन्त में मनुष्य-देह प्राप्त होती है। उस समय वह कर्म का अधिकारी होता है और अध्यात्म-मार्ग पर बढ़ने का अवसर प्राप्त करता है। हंसगीता में है—"गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि, न मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।" अविवेक के वश में भोग-वासना द्वारा संचालित मनुष्य असंयत जीवन-यापन करते हुए, दीर्घ काल तक कृतकर्मों के फल-भोग के लिए अन्य रूप में भोगदेह प्राप्त करता है एवं यही भाव अधः, ऊर्ध्व और मध्यलोक भ्रमण करते-करते कदाचित् भोगकाल के अवसान के समीप भाग्यवश विवेक का उदय होने पर विशुद्ध-कर्म करने में समर्थ होता है। योग-कर्म को ही विशुद्ध-कर्म समझना चाहिए। शुक्ल, कृष्ण और मिश्र इन तीन प्रकार के कर्मों से तदनुरूप विभिन्न प्रकार में गति-लाभ होता है। शुक्ल-कर्म ही पुण्य है—जिसके फलस्वरूप देवलोक में देह धारण कर वासनानुसार आनन्द-भोग का अधिकार पैदा होता है। इसी प्रकार कृष्ण-कर्म यानी पाप के फल की वजह से अधोलोक में गति होती है और दुःख भोगना पड़ता है। मिश्र-कर्म से मध्यलोक में मनुष्य-देह प्राप्त होती है। किन्तु जब तक अशुक्ल और अकृष्ण-कर्म अनुष्ठित नहीं होता तब तक मानव-देह की सार्थकता सम्पन्न नहीं होती। पुण्य या पाप के लिए नरदेह ग्रहण नहीं किया जाता—पुण्य-पाप के अतीत शुद्ध आत्म-कर्म के लिए ही इस देह को धारण किया जाता है। जितने दिनों तक यह नहीं होगा, उतने दिनों तक लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करने पर भी स्थूल मानव-देह की आवश्यकता सिद्ध नहीं होगी।

मनुष्य-देह ही कर्म की गति का सूत्र है। यहाँ से ऊर्ध्व में जाया जा सकता है, अधः में भी जाया जा सकता है, विश्व में सर्वत्र जाने का मार्ग मिल सकता है। दूसरी ओर भाग्य में रहने पर यहाँ से कर्म के प्रभाव के कारण ऐसा मार्ग मिल सकता है जिसका आश्रय लेने पर आत्मज्ञान का विकास होकर पूर्णत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त की जा सकती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"योनेः शरीरम्"—योनि से शरीर उद्भूत होता है। नरयोनि श्रेष्ठ योनि—नरदेह श्रेष्ठ देह है। यह देह एक छोटा-सा ब्रह्माण्डस्वरूप है। जो कुछ बाह्य जगत् में है, वह सब मनुष्य की देह में है। अत्यन्त गहरे पाताल-राज्य के निगमस्थ गाढ़तम अन्धकार से लेकर ऊर्ध्वतम महाव्योम के परिस्फुट चिदालोक तक इस देह में विराज कर रहे हैं—किसी चीज का अभाव नहीं है। पृथिवी का देह मिट्टी का देह है, यह सत्य है, फिर भी इसमें प्रकृति के सभी तत्त्व निगूढ़ रूप में मौजूद हैं। आत्मा या पुरुष की भोग-सेवा के लिए तथा कर्म के लिए जो आवश्यक है, वह सब इस देह में खोजने पर मिल जाता है। देह को क्षेत्र कहा जाता है—कारण मन और प्राण के द्वारा इसे यथाविधि आकर्षण करने के बाद इसमें गुरुदत्त बीज वपन करने पर इसमें से कल्पवृक्ष की उत्पत्ति होती है जो यथासमय अमृत फल प्रसव करती है।

चेतन और अचेतन दोनों सत्ताओं के संघर्ष से देह की उत्पत्ति होती है। लिंग और योनि के सन्निकर्ष से इसका जात होता है। लिंग अलिंग का चिह्नमात्र है। महालिंग और महायोनि मूलतः एक होने पर भी व्यक्त भाव से लिंग और योनि में तारतम्य है एवं तारतम्यमूलक क्रमिक उत्कर्ष सम्पन्न ८४ लाख स्तर और उसीके अनुरूप ८४ लाख देह विद्यमान हैं। विशुद्ध अहंभाव के विकास के लिए प्रकृति की इस विशाल विज्ञानशाला में इस विवर्तन के कार्य अनुष्ठित हो रहे हैं। मूल अव्यक्त सत्ता से शक्ति के स्पन्दन में अन्नमय सत्ता का आविर्भाव होता है। अन्नमय सत्ता से प्राणमय सत्ता का विकास और प्राणमय सत्ता से मनोमय सत्ता की अभिव्यक्ति इसी विवर्तन के अन्तर्गत है। साथ ही साथ देह का भी क्रम-विकास समझना चाहिए।

मानव-देह के विकास के पहले तक प्राकृतिक प्रेरणा से ही अपने-आप विकास कार्य सम्पन्न हो जाता है। "God made man after His own IMAGE" जो कहा गया है, उसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य-देह ही भगवत् स्वरूप का प्रतीक या आभास है। मनुष्य की पूर्णता से पूर्ण भगवत्ता की अभिव्यक्ति होती है। नररूपी आधार के अलावा अन्य किसी आधार में अर्थात् पशु आदि के आधार में दिव्य-शक्ति का आविर्भाव सम्भव नहीं है। अवतारादि के मामले में दूसरी बात है। भक्त रामप्रसाद ने जिसे कृषिकार्य कहा है, वह एकमात्र इसी नरदेह से ही सम्भव है, कारण यह देह ही अहंभाव में पहले स्फूर्ति होती

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है एवं इसी देह से ही अहंभाव की पूर्णता सिद्ध होती है। समस्त जड़ और जीव-जगत् की समष्टि-सत्ता घनीभूत होकर मानव-देह का निर्माण होता है। मन और अहंभाव के उन्मेष के साथ-साथ वाक्शक्ति वैखरी रूप में इसी देह में ही पहले-पहल आत्मप्रकाश करती है। कहना न होगा कि यही प्रज्ञा का बीज है। वर्णात्मक शब्दों की क्रिया एवं वर्णात्मक शब्दों के विलयन का व्यापार दोनों ही इसी देह में ही होता है। नाद और ज्योति जिस बिन्दु से निकलती हैं, उसकी प्रथम सूचना मानव-देह में ही मिलती है। यह देह ही बन्धन बोध होता है इसीलिए इसी देह की मुक्ति सम्भव है। कुण्डलिनी की स्थिति इसी देह में ही है। सुषुम्ना नाड़ी और षट्चक्र का अवस्थान मानवेतर योनियों में यथावत् नहीं पाये जाते। ब्रह्मचर्य का अभ्यास अन्य देह में सम्भव नहीं है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति पशु आदि में होते हैं, किन्तु तुरीय और तुरीयातीत एकमात्र मानव में ही सम्भव है। इसीलिए कर्म, ज्ञान और भक्तिरूप योग का अभ्यास भी केवल इसी मानव-देह से ही हो सकते हैं।

वास्तविक दिव्य-देह जो है वह मानव-देह का ही विकासमात्र है। मानवदेह ही जब पूर्णता प्राप्त कर लेती है तब भगवत्-देहरूप में परिणत हो जाती है। इस परिणति-साधन में जो उपाय अनुसृत होते हैं, उसीका नाम कर्म है।

देह में चैतन्य और जड़ की सत्ता सम्मिलित रूप से विद्यमान हैं। मानवेतर देहों में जैसा है, वैसा ही मानवदेह में भी। किन्तु निम्न देह में अहं-भाव का अवयव रूप-रश्मिपुंज क्रम-विकास के नियम से परिस्फुट नहीं होते। ये सब रश्मियाँ देहस्थ कमल के दलों में अपना स्वरूप प्रकट करती हैं। इन सभी विकर्ण रश्मियों को अलग-अलग प्रस्फुटित कर संग्रहीत किया जाय तो ज्ञान-ज्योति का विकास हो सकता है और दिव्य नेत्र उन्मीलित होगा। षट्चक्र भेद का यही तात्पर्य है। आभास अहं क्रमशः विशुद्ध अहं में पूर्णता प्राप्त करता है। मानव-जीवन की सफलता को इसीलिए आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति है समझना होगा।

सभी रश्मियाँ मानव-देह में तेजः और कायाग्नि रूप में जाग्रत होती हैं। पूर्ण रूप में जागने पर ये ही सम्मिलित रूप में ऋषियों द्वारा वर्णित-ब्रह्मचर्य स्वरूप में उपलब्ध होती हैं। विज्ञानविद् योगीगण इसे तड़ित्-शक्ति या विद्युत् नाम से अभिहित करते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि मानव-देह में सभी तत्त्व मौजूद हैं। फिलहाल ३६ तत्त्व न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेकर प्रचलित २४, २५ या २६ तत्त्व को लिया जाय। पर इनमें भी पार्थिव देह में पृथिवी तत्त्वों को प्रधानता है। कहना न होगा कि पंचभूत ही स्थूल देह के उपादान के रूप में रहने पर भी पार्थिव देह में पृथिवी की प्रधानता है। पृथिवी के अंश अन्यान्य भूत या तत्त्वों के अंशों के साथ सम्मिलित रूप में विद्यमान हैं। इस मिलन या संघात के मूल में है—संस्कारोपहित शक्तिरूपी चैतन्य की संहनन शक्ति। चित् और अचित् के मिलन से सृष्टि होती है—इसे याद रखना होगा। योगी या कर्मी जब आत्मकर्म में प्रवृत्त होता है तब उसके क्रियमाण कर्म के प्रभाव से यह संघात टूट जाता है—गोकि क्रमशः। फलस्वरूप चैतन्यांश मुक्त होता है और जड़ांश पृथक् होता हैं। यह पृथक्करण विवेक की क्रिया है।

दूध या दही के मथने पर जैसे मक्खन निकलता है, जैसे गेहूँ को पीसने पर आटा निकलता है, तिल और सरसों पीसने पर जैसे तेल निकलता है, उसी प्रकार कर्म रूप मन्थन-क्रिया के प्रभाव से पार्थिव देह में से देहस्थ चिदुज्ज्वल सत्वांश तड़ित्-शक्ति रूप में पृथक् होता है। क्रमशः जलीय और अन्यान्य भौतिक अंश से भी सत्त्वांश पृथक् हो जाता है। स्थूल देह का समस्त सत्त्वांश जब तक पृथक् नहीं होता तब तक मन्थन-क्रिया को आवश्यकता रहती हैं। इसके बाद फिर यह क्रिया आवश्यक नहीं है। तिल में जिस परिमाण में तेल रहता है, उसमें से सब निकाल लेने पर फिर उसे पीसने की आवश्यकता नहीं रहती, कारण अवशिष्ट भाग तेल-हीन असार पिण्डमात्र रहता है। इसी प्रकार स्थूल देह में जिस परिमाण में चैतन्य-शक्ति आबद्ध थी, वह सब मुक्त होने पर स्थूल देह को क्रिया का अवसान स्वभावतः ही हो जाता है। यही प्रकृति का नियम है। अनन्तकाल तक विवेक-क्रिया नहीं चलती। विवेकमूलक ज्ञान का उद्‌भव होना ही कर्म का उद्देश्य है।

उक्त तेजः या शक्ति स्थूल देह के भीतर स्थित अपंचकृत भूत और अन्य तत्त्वों के अभ्यन्तर में अनुप्रविष्ट होकर उन सबको विगलित करता है और स्थायो आकार में परिणत करता है। सभी सूक्ष्म तत्त्व सूक्ष्म देह के अवयव हैं—किन्तु उन सभी तत्त्वों से स्थायी आकार का गठन इतने दिनों तक नहीं हुआ है। यही कारण है कि प्रकृत-सूक्ष्म देह में साधक की तब तक प्राप्ति नहीं घटती जब तक उसके स्थूल शरीर के कर्मों का अवसान नहीं हो जाता। उपादान के हिसाब से वे सब तत्त्व

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रत्येक मानव में हैं और अपना-अपना काम कर रहे हैं, किन्तु स्थायी देहरूप में कार्य नहीं करते। देहरूप में जब वे सब परिणत होते हैं तब स्थूल शरीर का अभिमानी पुरुष स्थूल में अभिमान रहित होकर, उस सूक्ष्म शरीर में अभिमानी होता है और अपने इच्छानुसार स्थूल-पिण्ड त्यागकर बाहर निकल सकता है और वापस आ सकता है, योगी के अलावा यह कार्य साधारण मानव नहीं कर सकता। इसका एकमात्र कारण यह है कि स्थायी रचनारूप में उसका सूक्ष्म शरीर नहीं है और उसमें उसका अभिमान भी क्रियाशील नहीं है। प्रकृति के नियम और प्रेरणा से सूक्ष्मादि अवस्था में सभी के सूक्ष्म शरीर की गति और संचरण दिखाई देता है, यह सत्य है। किन्तु यह वासनादि के कारण प्रकृति के प्रभाव से होता है—स्वेच्छा से नहीं होता। पहले जो कहा गया, अगर वह सम्पन्न होता है तो स्वेच्छा से जैसे स्थूल जगत् में स्थूल देह लेकर व्यवहार किया जाता है, उसी प्रकार अपने इच्छानुसार सूक्ष्म जगत् में भी सूक्ष्म देह लेकर विचरण किया जा सकता है।

अनात्मा में आत्मबोध रूप अभिमान जब स्थूल शरीर का अवलम्बन कर काम करता है तब इस अभिमान से स्थूल देह का कर्म प्रसूत होता है। किन्तु जब पूर्व लिखित नियम से एक ओर स्थूल देह का कर्म समाप्त होगा और दूसरी ओर स्थायी सूक्ष्म देह सूक्ष्म-सत्ता के उपादानों में अभिव्यक्त होगी तब वही अभिमान स्वभावतः स्थूल देह को त्यागकर सूक्ष्मदेह का सहारा लेगा। उस वक्त उस सूक्ष्म देह को 'मैं' हूँ मन में लगेगा और स्थूलदेह में "अहंत्व-बोध" आभास मात्र हो जायगा। कारण स्थूलदेह चैतन्य के अपगम (मृत्यु) के फलस्वरूप तब वह शववत् हो जायगी। अभिमानशील सूक्ष्मदेह उस वक्त इसी शववत् स्थूलदेह को अपने अधीन कर आसन बना लेगी। यही प्रकृत शवासन है—पूर्ण योगी की योग-क्रिया की परिपुष्टि के लिए यही आसन उपयोगी है। तब स्थूल-निरपेक्ष फिर भी शवासनीकृत स्थूल में अधिष्ठित सूक्ष्म-देह में कर्म आरम्भ होता हैं।

यदि प्रारब्ध-भोग पहले ही समाप्त हो जाय और स्थूल देह की कर्म-समाप्ति के पहले ही स्थूल देह का अन्त हो जाय तो शेष कर्म करने के लिए मृत्यु के बाद पुनः स्थूलदेह ग्रहण करना पड़ता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ आत्मकर्म ही कर्म शब्द का लक्ष्य है। आत्म-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्म न होकर अन्य कर्म होने पर सुख-दुःख भोग के लिए बार-बार जन्मान्तरों की आशंका बनी रहती है। दूसरी ओर अगर किसीके स्थूल कर्मों की समाप्ति के साथ-साथ प्रारब्ध भी समाप्त होता है और उसके फलस्वरूप स्थूल देह का त्याग होता है तो उसे शवासन के रूप में परिणत करने के लिए उसे अधिष्ठान करने से सूक्ष्मदेह में कर्म करने का सुयोग इस जीवन में प्राप्त नहीं होता।

स्थूल कर्मों के प्रभाव से जिस प्रकार स्थूल भौतिक सत्ता से चैतन्य का निष्कर्ष होता है और उसी चैतन्य-शक्तिरूपी अग्नि के ताप से सूक्ष्म-सत्ता विगलित होकर आकार धारण करती है और स्थायीरूप में परिणति प्राप्त करती है, उसी प्रकार सूक्ष्मदेह में अभिमान उदय होने के बाद, सूक्ष्मदेह में अनुष्ठित कर्म के प्रभाव से सूक्ष्म-सत्ता में निहित अविविक्त चैतन्य-शक्ति का विवेचन होता है और वही चैतन्य-शक्ति पूर्वोक्त पद्धति से उत्थित होकर कारण-सत्ता को विगलित करती है जिसके फलस्वरूप कारण-सत्ता प्रकृत कारण-देह रूप में परिणत होती है। जितने दिनों तक सूक्ष्म-सत्ता से तन्निहित समग्र चैतन्य या तेजः समाहृत नहीं होता, उतने दिनों तक सूक्ष्मदेह के कर्मों का अवसान नहीं होता। मृत्यु के पूर्व अगर सूक्ष्मदेह के द्वारा अनुष्ठेय आत्मकर्म समाप्त हो जाता है तो सूक्ष्मदेह भी पूर्ववत् स्थूल की भाँति शव-रूप में परिणत हो जाती है और अभिमान सूक्ष्म को त्यागकर कारण-देह का सहारा लेता है। उस वक्त "अहंत्व" भी कारण-देह का आश्रय लेकर स्थूल और सूक्ष्म इन दोनों शवासनों पर अधिष्ठित होता है और कारण-देह के कर्म को पूर्ण करने के लिए प्रवृत्त होता है। सूक्ष्म देह का कर्म एक आसन का कर्म है, किन्तु कारण देह का कर्म दो आसनों का कर्म है।

अगर सूक्ष्म कर्म पूर्ण होने के पूर्व ही मृत्यु हो जाती है तो कारण-देह के अनुष्ठेय-कर्म अनारब्ध रह जाते हैं। स्थूल देह के कर्म पूर्ण न होकर देहपात होने पर भी उसी प्रकार सूक्ष्म के कर्म अनारब्ध (बिना आरम्भ के) रहते हैं। स्थूलाभिमान रहते-रहते स्थूल-कर्मान्ध होने पर पुनः स्थूल को ग्रहण करने के लिए मातृ-गर्भ में प्रवेश करना पड़ता है। किन्तु स्थूलाभिमान निवृत्त होने के बाद या साथ ही साथ मृत्यु होने पर आम तौर पर मातृ-गर्भ में आने की आवश्यकता नहीं होती। उस वक्त सूक्ष्म देह शवासन में बैठ गयी है। इसीलिए वह मृत्यु वास्तविक मृत्यु नहीं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। सूक्ष्माभिमानी शवीभूत स्थल पर उपविष्ट योगी तथाकथित मृत्यु के बाद भी आसन त्याग नहीं करता। सूक्ष्म शरीर से वह कार्य करता रहता है। उसके कर्म में बाधा नहीं आती। पर जीवित अवस्था में अगर कर्म किया जाय तो कम समय में समाप्त हो जाता है—कारण वह कर्म काल का कर्म है। वह क्षिप्र गति से अग्रसर होता है। किन्तु स्थूल कर्म बिना समाप्त किये अगर मृत्यु हो जाती है तो शवासन प्राप्त नहीं होता। तब पुनः मातृगर्भ में आकर जन्म लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अन्य कोई उपाय नहीं है। कम-से-कम एक शवासन प्राप्त कर लेने से योगी आसन पर बैठ सकता है, इसलिए वह गर्भ-यंत्रणा और कालराज्य में प्रवेश के उपद्रव से छुटकारा पा सकता है। मृत्यु के भीतर से ही अमरत्व का मार्ग है. इसे समझ लेना आवश्यक है। पशु की मृत्यु से अमरत्व नहीं आता—पशु "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति" बार-बार जठर-यंत्रणा का भोग उसके लिए अनिवार्य है। किन्तु स्थूलदेह के आवश्यक कार्य समाप्त कर लेने से और स्थूलदेह को शव के रूप में आसन बनाकर स्वयं अपने को उस पर अधिष्ठित कर लेने पर जन्म-मृत्यु से वर्जित हुआ जा सकता है। मगर कर्म की पूर्णता नहीं हुई है इसलिए कर्म वर्जित नहीं होता, महाज्ञान भी नहीं आता। आपेक्षिक खण्डज्ञान अवश्य आता है।

अब सवाल यह उत्पन्न होता है कि उस वक्त योगी कहाँ और किस रूप में रहते हुए कर्म के क्रमिक विकास को उत्पन्न करता है। इस प्रश्न की विस्तार से चर्चा करना यहाँ सम्भव नहीं है। मगर यहाँ यह कह देना जरूरी है कि आत्मकर्म का गतिरोध नहीं होता और एक बार शवासन प्राप्त होने पर जन्म-मृत्यु के अतीत, काल के अतीत, निर्मल भूमि पर योगी आत्मकर्म पूर्ण करते रहते हैं। मगर उक्त कर्म पूर्ण करने में समय अधिक लगता है। काल के राज्य में विकास की गति जितनी द्रुत होगी, उतनी अमर देह के द्रुत होने की सम्भावना नहीं होती।

जो भी हो, हमारा लक्ष्य है वर्तमान जीवन-कर्म को समाप्त करना और अभिनव अनन्त कर्म की धारा में प्रवेश करना। प्रकृति से पुरुष को पृथक् कर प्रकृतिजन्य कारण-देह तक आयत्त न कर सकने पर इस महालक्ष्य में उपनीत होने की कोई आशा नहीं रहती। अभिमान कारणदेह का सहारा लेकर कारणदेह में कर्म की सूचना देता है। सूक्ष्म कर्म के समाप्त होने पर और सूक्ष्मदेह शवासन होकर कारण में अधिष्ठित होने के बाद योगी कारणदेह के सहारे 'मैं' के रूप में अपने को अनुभव करता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। आत्मकर्म चलता रहता है एवं कारण-सत्ता या मूल प्रकृति में निहित गुप्त चैतन्य विविक्त (मुक्त) होता रहता है। जब प्रकृति-रूपा कारण-सत्ता से चित्शक्ति विविक्त होती है तब योगी को एक अनिर्वंचनीय स्थिति का सामना करना पड़ता है। इस अवस्था में ही जीवात्मा या पुरुष का स्वरूप-ज्ञान जागता है। पुरुष जो कि चौबीस तत्त्वमयी प्रकृति से विविक्त है, उस वक्त वह अपनी आँखों से देखता है। अगर इस समय परमेश्वर की कृपा प्राप्त नहीं होती है तो पुरुष, इस स्वरूप-ज्ञान में प्रकाशमान निज सत्ता को स्थित करता है और कैवल्य प्राप्त करता है। माया में भी इसी प्रकार की अवस्था का उदय होता है। दो आसनों की क्रिया के फलस्वरूप अब तक सिद्धि मिलती है।

किन्तु इसे मैं महासिद्धि नहीं कहता—गोकि यह कम नहीं है। प्रकृति से अलग होने से ही काम नहीं चलेगा—प्रकृति को भी, ठीक प्रकृति को नहीं, किन्तु कारण-देह को भी आसन करना होगा। ऐसा न कर पाने पर प्रकृतिमुक्त पुरुष की कैवल्य प्राप्ति होगी।

कारण-देह को आसन करने के लिए अभिमान का विसर्जन न कर उसे जगाये रखना पड़ेगा। एक हिसाब से देखा जाय तो अभिमान में पूर्णाहुति का समय आ गया है—स्थूल, सूक्ष्म, कारण—तीन देहों की रचना हुई है, तीनों देहों में अभिमान समान रूप से काम कर रहा है, फलतः तीनों देहों के कर्म समाप्त हो गये हैं। इसीलिए प्रकृति का कर्म समाप्त हो गया है एवं चौबीस तत्त्वों के साथ संकीर्ण भाव में अवस्थित बद्ध चित्सत्ता मुक्त होकर, स्वयं पुरुषरूप में आत्मप्रकाश कर रही है—अतएव कर्म के फल से ज्ञान या आत्मज्ञान का उदय हुआ है। अब कैवल्य स्वतः प्राप्त—और अब उसमें अभिमान का स्थान नहीं है, आवश्यकता भी नहीं है। कारण, करणीय कर्म अब शेष नहीं है। इसीलिए यही अभिमान की पूर्णाहुति का समय है।

किन्तु महायोगी यहाँ भी अन्त नहीं देखते। पूर्णाहुति अभिमान की जरूर होती है, किन्तु अग्नि निर्वाण नहीं होता, अथवा निर्वाण के भीतर अनिर्वाण को जगाकर रखा जाता है; उसी प्रकार अभिमान के समाप्त होने पर भी एक विशुद्ध अभिमान के रूप में उसे रखा जाता है। कारण, महाकर्म तो अभी बाकी है।

अप्राकृत विशुद्ध सत्त्वरूपी निर्मल सत्ता में उसी अभिमान का योग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होता है। कहना न होगा कि इस वक्त पुरुष परमपुरुष या महापुरुष के पद पर अभिषिक्त है। प्रकृति के कर्मों को समाप्त कर, तीन शवासनों पर आसीन होकर योगी विशुद्ध सत्त्वमय आधार पर स्थित हो गया है। उस आधार को इस वक्त महाकारण देव के रूप में है समझना पड़ेगा। यही है योगी का विशुद्ध अभिमान या अहंत्व। इसी आसन पर आसीन होकर योगी विश्वकर्म के महाक्षेत्र में प्रवेश करते हैं।

उस वक्त उनकी व्यक्तिगत आवश्यकता नहीं रहती। समस्त जीव-जगत् की आवश्यकता ही उस वक्त उनकी आवश्यकता होती है। भगवान् व्यासदेव ने योगसूत्र के भाष्य में ईश्वर के बारे में कहा है— "तस्य आत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रह एव प्रयोजनद्।" उनका एकमात्र प्रयोजन भूतानुग्रह है—जीवों का कल्याण साधन—अन्य कोई प्रयोजन उनका नहीं है। उस वक्त योगी भी विशुद्ध सत्त्वमय आधार पर स्थित होकर भूतानुग्रह या जीव-सेवा में निरत हो जाते हैं। यही है परार्थे कर्म। गीता में भगवान् ने कहा है—"उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्"—यह भी उसी प्रकार का कर्म है।

यहाँ एक गहरे रहस्य की बात कहना आवश्यक है। मनुष्य जीवित अवस्था में यदि इस भूमि तक उत्थित हो सके अर्थात् तीन आसनों के कर्मों को सम्पन्न कर सके अथवा प्रकृति के चौबीसों तत्त्वों से चैतन्य सत्ता को पृथक् कर प्रकृति और माया को स्वायत्त करते हुए, विशुद्ध अभिमान के साथ महामाया के मुक्तक्षेत्र में आधिकारिक पुरुष-रूप में, आत्मप्रकाश करने में समर्थ हो जाय तो साथ ही साथ उसका प्रभाव विश्व-संसार अनुभव कर धन्य हो जायगा। उसकी प्राकृत और अप्राकृत देह उस वक्त एक हो जाती है—वही महासिद्ध देह के नाम से परिचित होता है।

प्रकृति की विज्ञानशाला में एक विराट् अनुष्ठान का आयोजन चल रहा है। बाह्य जगत् को उसकी कोई जानकारी नहीं है और न जानेकारी रख सकता है।

हम लोग जिसे मृत्यु कहते हैं, वह काफी नीचे का व्यापार है। भले ही वह नीचे का हो, पर वह अपरिहार्य है। स्थूल देह से मानव की सूक्ष्म सत्ता अलग होते ही हम उसे मृत्यु के रूप में वर्णन करते हैं। किन्तु यदि स्थूल का कर्म अर्थात् स्थूलयोग्य आत्मकर्म समाप्त होने के पहले यह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घटना होती है तो जीव को अवशिष्ट आत्मकर्म करने के लिए पुनः स्थूलदेह ग्रहण करनी पड़ेगी या जन्म लेना पड़ेगा। जब तक आत्मकर्म पूर्ण नहीं होगा, उतने दिनों तक ऐसा चलता रहेगा। कारण स्थूल मानवदेह धारण करने के अलावा आत्मकर्म करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। अज्ञानज कर्मफल के कारण अगर शुद्ध या मलिन भोगदेह की प्राप्ति होती है तो उसे कालक्षेप मानना चाहिए। कारण मानवदेह से एक बार च्युत होना भी अत्यन्त दुर्भाग्य है—इस वजह से वह क्रम-विकास के मार्ग में महा अन्तराय है। मानवदेह से केवल प्रारब्ध भोग न होकर अगर अज्ञानवश नवीन कर्म उद्भूत होता है तो भी वह संचित-कर्म के भण्डार में संचित होता रहता है तथा वह नियत विपाक होने पर भी भावी प्रारब्ध की रचना में अंगीभूत होने पर विपच्यमान (चयापचयन) होकर उसके अनुरूप सुख-दुःखरूपी भोग दान के लिए संलग्न हो जाता है। यह कर्म जगत् की दैनन्दिन घटना है। इसकी आलोचना यहाँ अप्रासंगिक है।

यदि स्थूल का आत्मकर्म पूर्ण होता है और तुरत ही प्रारब्ध-भोग भी पूर्ण हो जाता है इसीलिए मृत्यु होती है तथा उस अवस्था में स्थूल देह को शवासन करने का अवसर न मिले तब मानना चाहिए कि साँटी सूक्ष्म शरीर की रचना हुई है (स्थूल के आत्मकर्म के द्वारा) तब मनुष्य भौतिक सत्ता के ऊर्ध्व में कैवल्य प्राप्त करता है। उसे फिर भौतिक जन्म नहीं लेना पड़ता। मगर उस वक्त एक असुविधा यह होती है कि आसन-प्राप्ति के अभाव में परलोक में निरालम्ब अवस्था होने की वजह से निष्क्रिय भाव रहता है—सूक्ष्म देहोपयोगी आत्मकर्म का सूत्रपात नहीं होता। कैवल्य होने पर भी यह ठीक कैवल्य नहीं है, कारण लिंग या सूक्ष्मदेह विद्यमान रहती है—केवल कर्म नहीं कर पाता। वह स्थूल जगत् में नहीं आता—इसीलिए एक हिसाब से मृत्यु वर्जित है। किन्तु उसकी भी भावी मृत्यु है। कारण जब सूक्ष्मदेह है तब उसके कर्मों को कभी न कभी करना ही पड़ेगा तथा बाद मे उसे भी वर्जन करना पढ़ेगा (अगर द्वितीय शवासन न किया गया तो)। सूक्ष्मदेह की मृत्यु भी मृत्यु है।

पहले ही कहा गया है कि स्थूल के आत्मकर्म कीं समाप्ति और प्रारब्ध-भोग के समाप्त होने पर अभिमान सूक्ष्म में योजित होकर स्थूल को शवरूपी आसन में परिणत कर लेने पर वह पूर्वोक्त निरालम्ब

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अवस्था का निष्क्रियत्व होता नहीं। कारण उस वक्त आसन प्राप्त हो गया है और कर्म आरब्ध हो गया है। इनके लिए अमल भूमि के द्वार मुक्त हो जाते हैं—वहाँ कर्म की क्रमोन्नति होती है। पर यह दीर्घकालीन व्यापार है। कारण काल के प्रभाव के बाहर अमर जगत् में, कर्म तीव्र-गति से अग्रसर नहीं होता।

स्थूल शरीर साधारणतः प्रारब्ध द्वारा नियन्त्रित होता है। प्रारब्ध अति जटिल तत्त्व है—आगे कभी इस बारे में आलोचना करने की इच्छा है। कर्म, अनुग्रह, संस्कार (भूतपूर्व) आदि विभिन्न शक्तियों के एकत्र संगठन से प्रारब्ध की रचना होती है और इच्छा की उत्कटता से उसकी सृष्टि होती है। इसीलिए एक दृष्टि से आयु नियत होने के कारण अकाल-मृत्यु नहीं है—यह सत्य है। दूसरी ओर आयु की वृद्धि या ह्रास दोनों ही सम्भव है—यह भी सत्य है। यह वृद्धि-ह्रास शक्ति के संयम या अपचय का फल हो सकता है अथवा बाहर से शक्ति के अनुप्रवेशादि कारण भी हो सकते हैं। कोई भी कारण क्यों न हो, इस देह को कायम रखने के लिए योगी अपने सभी आत्मकर्म को समाप्त करने की इच्छा रखता है। इस देह के रहते यदि भौतिक देह को शव बनाकर स्वयं सूक्ष्म शरीर—चाहे वह आभासमय-भावदेह क्यों न हो या ज्ञानदेह हो—अभिमान करते हुए सूक्ष्म के आत्मकर्म को किया जाय तो इस देह में रहते हुए भी अमल भूमि में अवस्थान किया जा सकता है, पर निम्नस्तर में।

ज्ञानगंज के तत्त्व की चर्चा के प्रसंग में विस्तार के साथ अपने निजी अनुभव और बोध के अनुसार अमल-भूमि के रहस्यों को प्रकट करने का प्रयत्न करूँगा। गुप्त-रहस्यों का उद्घाटन करना जगत् में असम्भव है। मगर अधिकारियों की कृपा होने पर किसी-किसीके भीतर महालोक की क्रिया से कुछ-कुछ प्रकाश के खेल हो सकते हैं।

मैं पहले कह चुका हूँ कि मातृ-गर्भ से संजात (उत्पन्न) स्थूल देह ही कर्मदेह है। मनुष्य जब तक यह देह धारण किये रहता है तब तक वह कर्म करने में समर्थ होता है· यह देह न रहने पर कर्म नहीं किया जा सकता। कर्मफल-भोग मात्र भोगदेह में होता है। कर्म क्या है एवं उसका फल किस प्रकार का है, इसकी चर्चा आंशिक रूप में पीछे की जा चुकी है। अनात्म-कर्म की इस प्रसंग पर कर्म-रूप में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गणना नहीं की गयी है। अनात्म-कर्म अज्ञान अवस्था में हो जाता है एवं उसके संस्कार-निबन्धन से जो सुख-दुःख का फल उत्पन्न होता है, उसे भोग करने के लिए ऊर्ध्वलोक, अधोलोक अथवा मनुष्यलोक के किसी स्थान पर तदनुरूप देह ग्रहण करनी पड़ती है। भोगदेह स्वर्गीय हो सकती है, नारकीय हो सकती है तथा पशु-पक्षी आदि अवचेतन भी हो सकती है। इसके अलावा मनुष्य के कर्मदेह में भी भोगानुभूति होने के कारण आंशिक रूप में मनुष्यदेह भी हो सकती है। किन्तु कर्मदेह मनुष्यदेह के अलावा अन्य कोई देह नहीं हो सकती। यह हुई अनात्म-कर्म की बात। इसी प्रकार आत्मकर्म की उपयोग देह भी एकमात्र मनुष्यदेह ही है, इसमें कोई संदेह नहीं।

आत्मकर्म के द्वारा आत्मिक-स्थिति का उत्कर्ष-साधन हो सकता है। तीव्रता के अनुसार कर्म को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है। आत्म-कर्म तब तक सम्पन्न नहीं हो सकता जब तक देह में चैतन्य-शक्ति का उन्मेष नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य की देह में यह शक्ति कुलकुण्डलिनी के नाम से मौजूद है। जब तक इस शक्ति का उन्मेष होकर शिवत्व की अभिव्यक्ति नहीं होती तब तक मनुष मनुष्यकारसम्पन्न होकर भी प्रकृति में पशु के अलावा अन्य कुछ नहीं है। पशुत्व की निवृत्ति का एकमात्र उपाय है कुण्डलिनी का उद्बोधन एवं शिव-भाव का विकास। किन्तु यह उद्बोधन सभी का समान मात्रा में नहीं होता। अनेक लोगों का तो होता ही नहीं है—उनके बारे में चर्चा वर्तमान प्रसंग में करना नहीं है। किन्तु जिनकी कुण्डलिनी उद्बुद्ध होती है, उन सभी के जागरण की मात्रा समान नहीं है। इसी कारण सभी को एक श्रेणी में निवेश नहीं किया जा सकता। सद्गुरु साक्षात् भगवत्-शक्ति-सम्पन्न होने पर भी शिष्य के आधार के बल पर उनके द्वारा संचारित शक्ति का प्रकाट हो सकता है। जिस आधार पर जिस मात्रा में शक्ति धारण करना संभव है, सद्गुरु उस आधार में उससे अधिक शक्ति-संचार नहीं करते और न अपेक्षाकृत कम शक्ति का भी संचार नहीं करते।

अगर आधार दुर्बल है तो कुण्डलिनी का उन्मेष किंचित् मात्रा में होता है। इसके बाद साधक स्वयं अपने कर्मों के द्वारा उस उन्मेष की अग्रगति का सम्पादन करता है। इस प्रकार धीरे-धीरे साधक के अन्तर में और बाहर उद्बुद्ध चैतन्यशक्ति का विकास होताहै। चैतन्य-शक्ति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के विकास के कारण अनात्मा का आत्मभाव दूर हो जाता है। विशेष रूप से आत्मा में आत्माभिमान की पूर्ण अभिव्यक्ति का मार्ग भी खुल जाता है। प्रकृति और माया से आत्मस्वरूप का विवेकज्ञान जब उदय होता है तब कर्म-संस्कार नष्ट हो जाते हैं और जन्म-मृत्यु के ऊर्ध्व में नित्य स्थिति की उपलब्धि होती है। किन्तु पशुभाव के बीज तब भी रह जाते हैं। पशुभाव जब तक निवृत्त नहीं होगा तब तक भगवत्-स्वरूप में स्थिति होना दुर्घट (दुःसाध्य) है। साधक की आत्मा परमात्मा से अभिन्न है अथवा परमात्मा का ही सनातन अंशभूत तथा स्वरूपतः नित्य दिव्य-भावापन्न है—वह पशु-अवस्था में निम्नस्तर के इन सभी प्राकृतिक सूक्ष्म संस्कारराशि के आवेष्टन में आच्छन्न होकर बद्ध की भाँति विद्यमान रहता है। दिव्यज्ञान के उदय एवं क्रमिक विकास होने पर उन सभी संस्कारों की निवृत्ति तो होती है, परन्तु मौलिक पशु-बीज भी समाप्त हो जाते हैं।

साधक कर्म के द्वारा गुरु से प्राप्त ज्ञानाग्नि के स्फुलिंग को अपनी सत्ता में सम्पूर्ण रूप से विस्तारित करता है और इस विस्तार की मात्रा के अनुसार अज्ञानज सभी कर्म-संस्कार नष्ट होते रहते हैं। चूंकि देह कर्म-सम्भूत है, इसलिए देह में अवस्थित काल तक अज्ञान और कर्म-संस्कार सम्पूर्ण रूप से निवृत्त नहीं होते। कारण सम्पूर्ण निवृत्ति के साथ-साथ साधारणतः देहपात अवश्य होता है। इसीलिए साधक की पूर्ण सिद्धि देह में अवस्थान काल में हो नहीं सकती—जरा-सी अविद्या अथवा अज्ञान देहावस्था में रह ही जायगा। पूर्ण निर्विकल्पक स्थिति प्राप्त होने के साथ-साथ देह से सम्बन्ध छिन्न हो जाता है और आत्मा सर्व-संस्कार-वर्जित होकर चिदाकाश में निज स्वरूप में विराजती है। इसे कोई-कोई कैवल्य अथवा विदेह कैवल्य नाम से वर्णन करते हैं। वे सब साधक जो इस देह में रहते हुए देह के कर्मों को सम्पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर पाते, उनकी गति इस निवन्ध के प्रथम प्रस्ताव के विवरण के अनुसार समझ लेनी चाहिए।

अब तक साधन-क्रम के बारे में जो कुछ कहा गया, वह इष्ट साधन का क्रम है। कारण साधक के इष्ट देवता कुण्डलिनी शक्ति के अलावा अन्य कोई नहीं हैं। साधक चाहे जो नाम या जो रूप भले ही ग्रहण क्यों न करें, पर उसका एकमात्र इष्ट कुण्डलिनी है। सिद्धावस्था में साध्य और साधक में कोई भेद नहीं रहता। साधक की आत्मा उस

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वक्त इष्ट के रूप में प्रतिष्ठित होती है तथा माया का आभास और संस्कार के केंचुल से हमेशा के लिए मुक्त हो जाती है। अपना व्यक्तित्व जरूर नष्ट नहीं होता, पर व्यक्तित्व के लिए उपयोगी नहीं होता, कारण व्यापक महासत्ता के भीतर उस समय अपनी सत्ता मग्न है। यह निराकार, निष्क्रिय चिदात्मस्वरूप अवस्थान करता है।

किन्तु जो आधार अपेक्षाकृत सबल है, गुरुदत्त अनुग्रह-शक्ति के संचार के कारण उसकी अग्रगति अन्य प्रकार की होती हैं। वर्तमान प्रसंग में हम इस प्रकार के आधार-विशिष्ट उपासक को "योगी" नाम से उल्लेख करेंगे। योगी का आधार साधक के आधार से अधिक प्रबल होने के कारण उसकी देह की कुण्डलिनी शक्ति का विकास प्रारम्भ से ही अधिक परिमाण में हो जाता है।

साधक की साधना जहाँ समाप्त होती है, योगी की साधना वास्तव में वहीं से आरम्भ होती है। इसीलिए साधक के कर्म और योगी के कर्म पहले से ही पृथक् हो जाते हैं। केवल यही नहीं, कर्म के फल भी पृथक् होते हैं। साधक के कर्मों के फल से विकल्प समूह अर्थात् वासना, कामनादि संस्कार और उसके बीज निर्मल होकर चिदालोक में परिणत होते हैं। उनके विरुद्ध-भाव दूर हो जाते हैं तथा उनकी सत्ता चित्त-सत्ता के साथ मिलकर एकाकार हो जाती है। अतएव सिद्धावस्था में देह-मन आदि सम्बन्धशून्य हो निर्विकल्पक-चिन्मय-आत्मस्वरूप में स्थिति प्राप्त करते हैं। किन्तु योगी के कर्मों का फल दूसरे प्रकार का होता है। केवल विरुद्ध-शक्ति की विरुद्धता परिहार करना योगी का काम्य नहीं है, किन्तु विरुद्ध-शक्ति जिससे अपना विरोध परिहार कर अर्थात् निर्मल होकर आत्मा की स्वरूप-शक्ति में परिणत हो जाय, वही योगी के कर्मों का लक्ष्य है। अरि-अरि भाव (शत्रुता) त्यागकर उदासीन अथवा तटस्थ होने पर ही साधक की आत्मा अपने को मुक्त समझती है। किन्तु साधक की इच्छा होती है कि अरि-अरि-भाव त्याग करने के बाद वह तटस्थ होकर न रहे, बल्कि मित्ररूप में परिणत हो जाय। शक्ति को परिहार करना और शक्तिहीन अवस्था में स्थिति ग्रहण करना योगी का उद्देश्य नहीं होता। यह सच है कि इससे प्राकृत गुण नहीं रहेगा, किन्तु अप्राकृत गुणों का विकास तो होना ही चाहिए—यही योगी का उद्देश्य है। योगी प्रबल शक्तिशाली होने के कारण उसकी क्रिया की वजह से उसमें बहिरंग-शक्ति तो नहीं रहती, बल्कि अन्तरंग-शक्ति का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूप धारण कर योगी की आत्मा को बलशाली बनाता है। साधक का आदर्श विदेह-कैवल्य है— इस अवस्था में किसी प्रकार का विकल्प नहीं रहता। कारण, देह और मन के संयोग के अलावा विकल्प का उदय नहीं हो सकता। किन्तु योगी का आदर्श साकार पिण्ड-सिद्ध है। योगी विकल्प को शुद्ध करके शुद्ध विकल्प के रूप में उसके स्थायित्व की आकांक्षा करता है। यही शुद्ध विकल्प ही पूर्वोक्त निर्विकल्प स्थिति का अविरुद्ध है। साधक का लक्ष्य होता है, सिद्ध अवस्था में काम को वर्जन कर निष्काम चित्स्वरूप में अवस्थान करना, किन्तु योगी का लक्ष्य होता है मलिन काम को शोधित कर विशुद्ध कामरूप में अर्थात् भगवत्-प्रेम के रूप में परिणत करना। यही भगवत्-प्रेम मनुष्य-जीवन का मुख्य आदर्श है। इसीके लिए योगी मुक्त अवस्था में भी आकार वर्जित नहीं होता अर्थात् योगी की काया कभी परित्यक्त नहीं होती—इसी नित्य काया को प्राप्त कर योगी अखण्ड कर्म-पथ पर धीरे-धीरे अग्रसर होता रहता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि योगी की नित्य काया-प्राप्ति का मतलब क्या है ? क्या वह मृत्युंजय अवस्था की प्राप्ति अथवा कोई दिव्य अवस्था विशेष है ? इस प्रश्न का समाधान करने के पहले कर्म के प्रभाव से काया रचना रहस्य की चर्चा संक्षिप्त रूप में करने की इच्छा है। इसके पूर्व किसी एक विशिष्ट क्षेत्र से काया के बारे में थोड़ी-बहुत चर्चा मैं कर चुका हूँ। अब यहाँ विस्तार से इस बारे में आलोचना कर रहा हूँ।

मनुष्य मातृगर्भ से निकलकर कालरात्रि के राज्य में क्रमशः अग्रसर होता है। काल के राज्य में जीवन की गति मृत्यु की ओर है, इसे समझाने की आवश्यकता नहीं है। जीवन प्रारम्भ से लेकर जीवन के अवसान तक जो धारा उसमें काल के खण्ड की शक्तियाँ आत्मप्रकाश करती हैं, जैसे एक-एक आना संचित होकर क्रमशः सोलह आना (प्राचीन सिक्के का रूप जो आजकल सौ पैसे का हो गया है।) बनकर एक मुद्रा बन जाती है, उसी प्रकार काल की एक-एक शक्ति क्रमशः उपचित (संचित) होकर सर्वशक्ति के उपचय (इकट्ठा होना) में देहपात कराता है। वस्तुतः जिस प्रकार मूलतः सात प्रकार की वायु होने पर भी सप्तीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप उनचास पृथक्-पृथक् वायु रूप परिग्रह करते हैं, उसी प्रकार एक परिच्छन्न कालशक्ति पूर्वोक्त क्रिया के अनुरूप प्रणाली में उनचास अणुशक्ति के रूप में परिणत होती

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। मातृकाचक्र के रहस्य की आलोचना करने पर समझ में आ जाता है कि यही उनचास शक्ति ही विषम संयोग से मातृका-शक्ति रूप में, जीव-हृदय में विकल्प की रचना करती है। यही उनचास शक्ति शुद्ध-जीवात्मा को अशुद्धवत् प्रतीत कराकर अनन्त प्रकार के, विक्षेप के आश्रयरूप में प्रदर्शित करती है। वास्तव में इस विकल्प का शोधन न होने पर आत्मा की स्वरूप-स्थिति संभव नहीं होती। योगी के महालक्ष्य तो दूर की बात है, साधक के जीवन का आदर्श भी आत्मा को इन सभी मातृकाराशि के आक्रमण से छुटकारा दिलाना एवं उसे उसके निज स्वरूप में प्रतिष्ठित कराना चाहिए। आत्मकर्म का वास्तविक उद्देश्य यही है। वर्तमान जगत् या समाज में साधारणतः जितने कर्म प्रचलित हैं, उससे यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। कारण उक्त कर्म मूलतः कर्त्तृत्वाभिमानमूलक है इसलिए पुण्य और पापरूप में, जीव को ऊर्ध्व अथवा अधोगति की ओर प्रेरणा करता है—उसे उसके निज स्वरूप में प्रतिष्ठित होने में सहायता नहीं करता। उस कर्म का फल सुख-दुःखभोग है, आत्मज्ञान का उन्मेष नहीं। कुण्डलिनीशक्ति किंचित् मात्रा में भी अगर नहीं जागती तो अति निम्नस्तर के आत्मकर्म भी सम्पन्न होते।

पूर्ववर्णित उनचास मातृशक्ति के योग-वियोग में नाना प्रकार के भावों का उदय होता है। इन शक्तियों के अप्रबुद्ध या मलिन रहने पर भाव भी मलिन होते हैं। इस मलिन भाव के शोधन के बिना भावातीत आत्मस्वरूप का बोध किस प्रकार होगा ? साधारण मनुष्य आत्मकर्म नहीं कर सकते, इसलिए उनकी ये शक्तियाँ अमार्जित ही रह जाती हैं। अतएव देहावस्था में तो दूर की बात है, देहावसान होने पर भी उनके स्वरूपस्थिति के पथ पर जाने की सम्भावना नहीं रहती। उन लोगों का परिणाम भयंकर होता है। किन्तु जो लोग साधकरूप अपने कर्मों के प्रभाव से इन मातृका शक्तियों का अर्थात् सब अणुओं का संस्कार करने में समर्थ होते हैं, वे पूर्ण शोधन के बाद शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थितिलाभ कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु सभी शक्तियों का शोधन आवश्यक है। शक्तियों के लेशमात्र भी अशोधित रहने पर स्वरूप में स्थिति नहीं हो सकती। यह भी सच है कि ये शक्तियाँ अशुद्ध होने पर भी इनके सहयोग के बिना आत्मा की देह में स्थिति कदापि सम्भव नहीं है। सुतरां देहावस्था में रहते शक्तियों का पूर्ण शोधन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असम्भव है। पक्षान्तर में शक्तियों की पूर्ण शुद्धि होने पर विदेह कैवल्य अवश्यम्भावी है। साधक सिद्धावस्था में अणुहीन, विकल्पहीन, मातृका-संस्पर्शहीन, देहहीन, मनहीन स्थिति प्राप्त करता है। किन्तु योगी अपने प्रबलतर कर्म प्रभा से इन सभी मातृका-शक्तियों को अन्तरंग स्वरूप-शक्तिरूप में, मातृरूप में परिणत करता है। जब यही स्वरूप-शक्तिरूप में परिणाम पूर्ण होता है तभी योगी सिद्ध अवस्था में आ गया है, यह जानना होगा। यह किन्तु विदेह अवस्था नहीं है। शक्ति शोधित होकर निर्मल रूप में योगी के स्वरूप को पुष्टि प्रदान करती है। साधक का काम है अशुद्ध सत्ता को अपने से वियुक्त करना अर्थात् पृथक् करना, किन्तु योगी का काम है अशुद्ध सत्ता को अशुद्धि सत्ता से हटाकर उसे निर्मल निज शक्तिरूप में परिणत करना और अपने साथ युक्त करना। जो योगी जितनी अधिक मात्रा में इस योजना-कार्य में अग्रसर होते हैं, वे उतने ही श्रेष्ठ योगी मान लिये जाते हैं। वास्तविक सिद्ध योगी वे ही हैं जो उनचास मातृका शक्तियों में से सभी को आत्मशक्ति-रूप में परिणत करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार के सिद्ध योगी नित्य काय-सम्पद् प्राप्त करते हैं, इसलिए अपने को विशुद्ध अहं के रूप में जानने की योग्यता अर्जन करते हैं। यही योगी की आत्मस्वरूप में स्थितिरूप सिद्धि है। यह किन्तु साधक की विदेह कैवल्यरूप अवस्था के अनुरूप अवस्था नहीं है, कारण इस अवस्था में देह रहती है एवं वह देह कालविजयी नित्य देह है।

नित्यदेह प्राप्त करके भी भौतिक देह की ओर से इस प्रकार के सिद्धयोगी को भी मृत्यु के मध्य से अतिक्रमण करना पड़ता है। इसलिए योग-साधना के क्रमोत्कर्ष की ओर विचार करने पर जाना जा सकता है कि इसकी भी एक परावस्था है, अर्थात् ऐसी अवस्था है जिस अवस्था में योगी केवल पूर्वोक्त आत्मरूप और नित्यदेह लाभ करके सन्तुष्ट नहीं रहता है, किन्तु इस जरा और व्याधि के आधार विकारमय भौतिक देह को भी काल के मुँह से उद्धार करने में समर्थ होता है।

पहले जिस शवासन के कर्म की कथा हम कह चुके हैं, वह योगी का ही कर्म है, साधक का नहीं। साधक अणु अथवा विकल्पों को शुद्ध कर विकल्पहीन चिदाकाश में स्थिति प्राप्त करता है, उसकी काया-रचना नहीं होती। लौकिक काया परित्यक्त हो जाती है, पर अलौकिक काया का उदय नहीं होता एवं होने की सम्भावना भी नहीं रहती।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किन्तु योगी सम्पूर्ण स्वकाया की रचना करने में समर्थ होते ही सिद्धि-लाभ करता है। यद्यपि यह स्व-काया भौतिक-काया का रूपान्तर नहीं है तथापि यह भौतिक काया की तरह सुस्पष्ट स्वरूप है एवं इसका अवलम्बन कर योगी के आत्मज्ञान का विकास होता है एवं शुद्ध अहन्त्वबोध उत्पन्न होकर स्थायित्व प्राप्त करता है। लौकिक काया के साथ विच्छेद उसके लिए अवश्यम्भावी है, क्योंकि लौकिक काया की दूसरी अवस्था होने तक उसे गुप्त रूप से ही रहना पड़ता है। किन्तु स्व-काया की प्राप्ति होने पर भी, लौकिक काया से काल के प्रभाव से च्युत होता है। शक्तिशाली होने पर भी, यहाँ तक कि सर्वज्ञान और क्रियाशक्ति प्राप्त होने पर भी इसे अन्यथा करना सम्भव नहीं है। किन्तु योग में उत्कर्ष प्राप्त करने पर इस लौकिक देह का भी रूपान्तर कर इसे आत्मा का चिरसाथी बना लिया जा सकता है। यह अत्यन्त दुरूह कार्य है तथा साधन-विज्ञान का अगोचर है, किन्तु असम्भव नहीं है। क्योंकि जगत् में ऐसे अनेक योगी आविर्भूत हुए हैं जिन्होंने अपनी-अपनी काया को सिद्ध कर कालस्पर्श के अतीत बना लिया है। भारतीय चौरासी सिद्धों की कथा इस प्रसंग में याद आती है। यह सिद्धि पूर्वोक्त अलौकिक कायालाभ की तुलना में उच्चतर सिद्धि है। क्योंकि अलौकिक कायालाभ करने पर शुद्ध अहं-ज्ञान कभी लुप्त नहीं होता, इसलिए एक हिसाब से मृत्यु फिर नहीं होती, किन्तु भौतिक देह से विच्छेद-स्वरूप जो मृत्यु है, उससे छुटकारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। किन्तु चौरासी सिद्धों को जो काया सम्पत्ति प्राप्ति की बात कही गयी है, उसमें भौतिक देह का भी अस्तित्व लुप्त नहीं होता एवं इसीलिए उक्त देहाश्रित आत्मबोध जाग्रत रहता है। भौतिक देह जड़ होने से हेय है, किन्तु यह देह जब चैतन्य के संयोग से उज्ज्वल चिदाकार प्राप्त करती है तब यह स्थायित्व प्राप्त कर लेती है।

इस समय जिस अवस्था की बात कही गयी, उसका उदय होने पर जड़ देहसत्ता चिन्मय आत्मसत्ता के साथ युक्त हो जाती है एवं आत्म-सत्ता से इसका पृथक् अस्तित्व नहीं रहता अथवा इस सत्ता से आत्म-सत्ता का भी पार्थक्य नहीं रहता। अति परिमित संख्यक योगी को यह गौरवमय स्थिति प्राप्त होती है। किन्तु इसमें भी कमी रहती है। आत्मा, देह, मन आदि विगलित होकर एक अखण्ड चिदानन्दमय सत्ता की प्रतिष्ठा होती है। यह सत्ता स्थूलदेह का आश्रय कर बाह्य जगत् में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आत्मप्रकाश करती है। वस्तुतः इस अबस्था में स्थूल देह, इन्द्रिय, मन और आत्मा अपने-अपने पृथक् अस्तित्व को विसर्जन देकर एक ही अविभक्त सत्ता के रूप में प्रकट होते हैं, उसका अवलम्बन कर आत्मबोध का उदय होता है। किन्तु इस अवस्था में वास्तविक पूर्णता का उदय नहीं होता।

साधक और योगी की गति समान नहीं है, क्योंकि दोनों के कर्म समान नहीं हैं। दोनों के लक्ष्य और सामर्थ्य भी भिन्न हैं। साधक चाहता है कैवल्य, योगी चाहता है पूर्ण रूपान्तर। वास्तव में रूपान्तर पूर्ण रूप से सिद्ध न होने पर समझना चाहिए कि सम्यक् ज्ञान का उदय नहीं हुआ है एवं यथार्थ स्वरूप प्रतिष्ठा भी नहीं होती।

जीव की वर्तमान परिस्थिति में मुख्यतः तीन पर्याय हैं—प्रथम आत्मा जिसका आश्रय कर परिच्छन्न अहंभाव सांसारिक जीवन का केन्द्रस्वरूप रह रहा है, द्वितीय कारणवर्ग, जिसमें अन्तःकरण और बाह्य इन्द्रियसमूह अन्तर्गत भाव में विद्यमान हैं एवं तृतीय स्थूल देह। जाग्रत अवस्था में हम लोगों का अभिमान इस स्थूल देह को आश्रय कर कार्य करता है। स्वप्न में वह कारणवर्ग को आश्रय करता है, संस्कार समष्टि और प्राणमय कोष इसी स्तर में निहित हैं। सुषुप्ति में वह अभिमान लीनवत् होकर केन्द्र में रहता है। साधक साधना के बल से अपने बोध को क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से कारण में उपसंहृत (उपसंहार) करता है। इसके बाद कारण से जब वह बोधशक्ति निष्क्रान्त होती है तब वह प्रकृति से मुक्त होकर अपने स्वरूप में अर्थात् चित्स्वरूप में स्थित होती है। विवेक होता है पहले कारणभावापन्न अचित् से प्रतिष्ठा होती है, अन्त में अपने स्वरूपभूत चित्सत्ता में। यही कैवल्य है। यही साधकों के साधन हैं। प्रचलित बहुत से योगमार्गों का भी यही लक्ष्य है। किन्तु यहाँ जिसे योगसंज्ञा दी गयी है, उसका उद्देश्य केवल अचित् से मुक्ति मात्र नहीं है। वह अत्यन्त गम्भीर है। पूर्ण दृष्टि में एक अखण्ड सत्ता ही स्वयं प्रकाशरूप में अपने आलोक से आलोकित होकर तैरती रहती है, वही चैतन्यमय, आनन्दमय आत्मसत्ता है। उस आत्मसत्ता में वस्तुतः अचित् का कोई स्थान नहीं है। पहले अर्थात् अप्रबुद्ध दशा में जो अचित् प्रतीत हो रहा था, वह वास्तव में अचित् नहीं था, उसे ज्ञान की उज्ज्वलता की वृद्धि के साथ-साथ समझ लिया जाता है। 'अचित्' उस वक्त चिन्मय होकर आत्मप्रकाश करता है। इसीका नाम रूपान्तर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। केवल ज्ञान के द्वारा यह नहीं होता—विशिष्ट ज्ञान या विज्ञान के द्वारा इस प्रकार का रूपान्तर सिद्ध होता है।

विवेक और आत्मप्रतिष्ठा के बाद चित्स्वरूप शक्तिरूप में साधक के अन्तर्गत आत्मिकस्तर, करणस्तर और भौतिकस्तर को स्पर्श करते हुए क्रमशः उन्हें अपने बल से चिन्मयरूप में परिणत करता है। विवेक या वियोग के बाद योग की क्रिया इसी प्रकार आरब्ध (आरम्भ) होती है। भगवदनुग्रह के पूर्ण प्रकाश व्यापार में पहले जड़त्व दूर होता है, पाश क्षय होता है, अचित् सत्ता से निष्क्रमण सम्पन्न होता है। यह व्यतिरेक पथ है। इसके बाद पूर्ण भगवत्ता के साथ योग होता है। यही अन्वय का मार्ग है। पहले वियोग, इसके बाद योग। योग-प्रक्रिया पहले की जड़सत्ता जड़त्व का त्यागकर चिन्मय रूप धारण करती है। उस वक्त केवल जीव ही विशुद्ध चित्-स्वरूप में स्थिति ग्रहण करता है, ऐसा नहीं है, कारण समष्टि भी लुप्त न होकर चिन्मरीचिपुंज रूप में या चिन्मय रश्मिमाला रूप में परिणत होती है और भौतिक उपादानों से उत्पन्न देह भी शुद्ध होकर चिदालोक से आलोकित होती है और चिन्मय आकार धारण करती है। उस वक्त सर्वत्र चित् की अव्याहत व्याप्ति होती है। इसीका नाम भागवती सत्ता में जागरण या पूर्ण योग-प्रतिष्ठा है।

कर्म द्वारा अर्थात् कर्म से उत्पन्न ज्ञान के प्रभाव से कर्म कटते हैं। केवल यही नहीं, ज्ञान होने पर अलौकिक कर्म के द्वारा अर्थात् योगरूप कर्म के द्वारा किंवा विज्ञान के द्वारा नवीन सृष्टि का उद्गम होता है, नवीन रचना रचित होती है। यही चिन्मय सृष्टि है। प्राकृत शुद्ध मन प्रभृति की चिन्मयता सम्पादन और अप्राकृत भाव प्राप्ति इसीका नामान्तर है। केवल मायिक कर्मों के कटने पर जो कैवल्य होता है, वह अशुद्ध विज्ञान कैवल्य है। उससे पशुत्व निवृत्त नहीं होता—पर जन्म, मृत्यु का आवर्तन रुक जाता है। इसके बाद आधिकारिक कर्म या ऐश्वरिक कर्म भी जब कट जाता है तब महामाया के विराट् चक्र का भी भेद हो जाता है। अचित्-सम्बन्ध नहीं रहता, पशुत्व भी नहीं रहता। इसीलिए माया और कर्मपाश काटकर महामाया के पाश को भी छिन्न-भिन्न करना पड़ता है—जीवभाव और शक्तिभाव दोनों से ही समान रूप से निष्कृति प्राप्त करनी पड़ती है। अशुद्ध और शुद्ध दोनों प्रकार के कारण से अपने को उद्धार करना पड़ता है। तब जिस परम

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दशा का उदय होता है, उसीका नाम विशुद्ध विज्ञान कैवल्य है। यह निर्मल आत्मस्वरूप है। किन्तु आत्मा की स्वरूपशक्ति का विकास न होने से यह भी प्रकृत भगवत्ता नहीं है। इस स्थिति में भी परमेश्वर के साथ ऐक्य-लाभ नहीं होता।

तंत्र-मत में यह महाशव की अवस्था है, महाशक्ति का उद्बोधन होने पर अर्थात् परिपूर्ण अभिषेक होने पर यह महाशव शिव रूप में जाग उठता है। भगवत्ता का पूर्ण अभ्युदय तभी सम्भव है।

किन्तु महाशव की अवस्था में न जा सकने पर परिशक्ति के पूर्ण आत्मप्रकाश की आशा नहीं की जा सकती। आत्मव्याप्ति, विद्याव्याप्ति और शिवव्याप्तिरूप महाव्याप्ति इसके बाद अपने-आप होती रहती है। महाशव की अवस्था की प्राप्ति से उत्कट योगक्रिया का व्यतिरेक सिद्ध नहीं होता। इस क्रिया में गुरु-शक्ति की प्रधानता रहती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानगंज की पत्रावली

लगभग २४ वर्ष पहले श्री श्री गुरुदेव की अनुमति से, काशी से ज्ञानगंज के कई पत्र "छह पत्र" नाम से प्रकाशित हुआ था। इन पत्रों के अलावा कुछ और पत्र मेरे पास काफी दिनों से सुरक्षित थे। २१ जनवरी, सन् १९१८ ई० के दिन मैंने श्री श्री गुरुदेव के श्रीचरणों में आश्रय प्राप्त किया। उन दिनों बाबा बनारस के हनुमानघाट स्थित आश्रम में रहते थे। मेरी दीक्षा होने के कुछ दिनों बाद ज्ञानगंज के बारे में चर्चा चलने पर एक दिन बाबा ने कहा कि पश्चिम (पछाँह) से पत्र आया है जिसमें हम लोगों के बारे में कुछ बातें हैं।

'पश्चिम' का उल्लेख करने का मतलब बाबा का ज्ञानगंज से था—इस बात को हम लोग जानते थे। मैंने पूछा—"बाबा, क्या उस पत्र को हम लोग देख नहीं सकते ?"

बाबा ने कहा—"उसमें तुम लोगों की भी चर्चा है। इसलिए अभी तुम लोगों को नहीं दिखा सकता।"

मैंने कहा—"मैं हम लोगों की व्यक्तिगत आलोचना देखने के लिए उत्सुक नहीं हूँ। मेरी उत्सुकता इस बात पर है कि वे लोग किस प्रकार लिखते हैं ? उनकी भाषा कैसी है ? भाव-प्रकाश की पद्धति कैसी है ? यही सब देखना है।"

बाबा ने कहा—"पुराने पत्र तो काफी हैं, वे सब वर्धमान में हैं। तुम्हें बाद में दिखाऊँगा।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद बाबा वर्धमान चले गये। अगले वर्ष काशी आते समय अपने द्वारा संग्रहीत कुछ पत्र लेते आये और उन्होंने मुझे दिये। इसके बाद कुछ और पत्र भी दिये। पत्रों को पाकर मैंने उन्हें बड़े यत्न से रखा था। सभी मेरी दीक्षा के पूर्वकालीन पत्र हैं। दीक्षा के बाद आये पत्र न तो मुझे दिये गये और न दिखाये गये। काफी दिनों बाद शायद सन् १९२६ ई० में गोमो या धनबाद में रहते समय उमानन्द स्वामी का एक पत्र उन्हें मिला था जिसे मुझे देखने के लिए दिया गया था। यह विज्ञान मन्दिर स्थापना के बाद की बात है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उनकी अनुमति से उस पत्र की नकल मैंने कर ली थी। पहले के पत्रों की मूल प्रति मेरे पास थी।

ये पत्र कैसे आते थे, यह कहा नहीं जा सकता। किसी-किसी पत्र में ज्ञानगंज की मोहर है—उसमें नागरी अक्षर में लिखा है—"पंजाब आश्रम—स्वामीजी।"

एक लिफाफे के टिकट पर मोहर से छपे अंग्रेजी अक्षर में है—Jnanananda Swami Ashram Punjab। एक में था—Golden Temple Amritsar, किसी लिफाफे में अंग्रेजी अक्षरों में जालंधर सिटी की मोहर भी देखी है।

इन पत्रों को डाक द्वारा आते कभी देखा नहीं। जिस प्रकार लेन्स विज्ञान के बड़े-बड़े यन्त्र, दवाओं की बड़ी-बड़ी शीशियाँ शून्य मार्ग से आती थीं और यहाँ से ज्ञानगंज की कुमारियों के लिए कपड़े आदि शून्य मार्ग से जाते थे, संभवतः ये पत्र भी अधिकांश रूप में उसी प्रकार आते थे। बाबाजी यह सब रहस्य साधारण लोगों के सामने कभी प्रकट नहीं करते थे। पर अलौकिक उपाय से जो चीजें आयी हैं और उन्होंने यहाँ से भेजी हैं, उन्हें प्रत्यक्ष रूप से मैंने देखा है।

मेरे पूर्वोक्त संग्रह से "छह पत्र" निर्वाचन करके छपवाया था। वह पुस्तक कलकत्ते से प्रकाशित हुई थी। संपादन की त्रुटि के कारण उनमें अनेक दोष थे। सम्प्रति उन सभी पत्रों के अलावा कुछ और पत्र "ज्ञानगंज की पत्रावली" के नाम से प्रकाशित किया गया है। सभी पत्र यथावत् मुद्रित होंगे। किसी स्थान पर किसी व्यक्ति का नाम रहने पर उसका उल्लेख नहीं रहेगा। यद्यपि उल्लिखित अनेक व्यक्ति स्वर्गीय हो गये हैं, तथापि व्यवहारगत शिष्टता के अनुरोध से कहीं किसीका नाम नहीं रहेगा। इति—

प्रथम पत्र

नमो नारायणाय

कृष्णपक्ष
१८२७।१०।६

नारायणस्मरणवर
परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री अभयानन्द स्वामी के शुभ संवाद से यथाविधान सम्भाषणपूर्वक विज्ञापन परम्—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुम लोगों द्वारा प्रेरित शुभ संवाद से परमानन्द प्राप्त हुआ। श्री-श्रीविश्वनाथ के समीप प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारा अभिलाष सुसिद्ध हो, यही मेरा इष्ट है। (परमाराध्य) गुरुदेव कई दिन हुए यहाँ नहीं हैं, वे मनोहर तीर्थ गये हैं। मैं भी उनके निकट शीघ्र जाऊँगा। अभी दो-तीन दिन हरिद्वार में रहूँगा।

मानवीय भाव अतीत होकर फिर यह क्या? चैतन्य स्वरूप के उच्छ्वास भाव मन, स्थूल तत्त्वों की परिमित शक्ति से अनुप्राणित होकर दम्भ-द्वेषादि की उत्तेजना से समय-समय पर विपद् उत्पन्न करते हैं एवं पृथिवी को शोणित सिक्त कर आत्मम्भरिता दोष से आक्रान्त करता है।

दुर्दमनीय रिपुगणों के प्रबल शासन से साधु चिन्ता, धर्मानुराग, ब्रह्मभाव से निष्ठा, सदसत् इच्छा कुछ भी नहीं रहता। फिर-भी ऐसी अवस्था में भी अचेतन जड़शक्ति चेतन शक्तिसम्पन्न चित्त को बद्ध रखने में सक्षम नहीं है। कारण विधाता का अमोघ दण्ड प्रति मुहूर्त काल-पाप की प्रवृत्ति बरस रहा है। रेखा मात्र पवित्रता के संस्पर्श से देवशक्ति प्रभा प्रदीप्त होकर मेघ निर्मुक्त सूर्य की भाँति चित्त को देव-भाव में अनुरंजित करती है। वह कामादि के निर्यातन या उनके पाप प्रलोभन से प्रतारित नहीं होता। देवतत्त्व के अन्वेषण में निरन्तर व्याकुल रहती है। ब्रह्मकृपा स्वाभाविक आ जाती है।

धीरे-धीरे विशुद्ध स्वर्गीय भाव मर्मभेद करने पर दया, क्षमा, धर्म, औदास्य, सारल्य—इन छहों महावृत्तियों के प्रभाव से मानवीय भाव और क्रोधादि के बल क्षय होकर देवभाव में आश्रय लेने की शक्ति उत्पन्न होती है। क्षुद्र कीट से लेकर उच्चाधम तक कोई विशेषत्व नहीं रहता। सभी के भीतर एकमात्र निराकार अखण्ड शक्ति का प्रकाश प्रत्यक्ष होता है। उस वक्त ज्ञान, अज्ञान, मानव या कीट, इन समूहों की भेद भावना नहीं रहती।

इसीलिए कहता हूँ गुफा के सम्बन्ध में उपस्थित इच्छुकों की इच्छा पूर्ण करना तुम्हारा उद्देश्य है।

यही बात परम गुरुदेव ने एक दिन मुझे बतायी थी—सोचा था कि जिस रूप में गुरुदेव को देख रहा हूँ, शायद वह गुफा अब नहीं होगी। अनेक लोगों को गुफा के बारे में ………। प्रस्तर निर्मित गुफा न बनने तथा सभी लोगों की रकम वापस करने के कारण—काफी चिन्तित थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बहरहाल, तुमने चित्तवृत्ति को निरोध कर जिस तरह गुरुदेव के निकट आकर क्षमा प्रार्थना की है, उसीसे उन्हें परम सन्तोष है। गुरुदेव ने पहले ही कहा था कि जो गुफा निर्माण करा देगा, वह त्रिपाप-यन्त्रणा से मुक्त हो जायगा। उसको कोई यन्त्रणा नहीं रहेगी।

गुफा निर्माण के लिए जिस स्थान पर लौह फलक तुमने गाड़ा था, उस स्थान पर गुफा नहीं बनेगी, गुरुदेव ने यही कहा है। गुफा निर्माण—बाणलिंग शिव के घर के दक्षिण ओर जो दरवाजा है, उसी दरवाजे के सामनेवाले स्थान पर गुफा बनेगी।

गुफा परिमाण—भीतरी लम्बाई में आठ हाथ, चौड़ाई छह हाथ और ऊँचाई साढ़े चार हाथ होगी। यह हुई गुफा की बात। इस गुफा के ऊपर एक उसी तरह का घर बनना आवश्यक है, कारण गुफा के ऊपरवाले घर में, माता आनन्द भैरवी ने कहा है कि मेरी जो आनन्दमयी हैं, उन्हें उसी घर में स्थापित करेंगी। ऊपर से गुफा में प्रवेश किया जा सके, इस तरह का प्रबन्ध करना होगा।

गुफा में परमानन्द गोस्वामी रहेंगे, दादा गुरुदेव आदि मध्य में। मध्य गुफा में अनेक संन्यासी रहेंगे। ऊपरवाले घर में जो भैरवी रहेंगी, उक्त घर बारह हाथ दीवार के बाद रहे तो अच्छा होगा। ऊपरवाले घर में तीन ओर पीढ़ा होना आवश्यक है। कम से कम ढाई हाथ से कम न हो, अधिक होने पर कोई नुकसान नहीं है। दरवाजे जिस तरह के होने पर ठीक रहें, वैसा ही रखना। गुफा का दरवाजा सुदृढ़ हो।

माता आनन्द भैरवी के साथ सात भैरवी रहेंगी। कोई भी आहार नहीं करतीं। आनन्द माता का वयःक्रम पाँच सौ वर्ष उत्तीर्ण हो गया है। शायद वे वहीं समाधि लेंगी। गुरुदेव का ऐसा ही आदेश है।

गुफा के स्थान पर अन्य किसीका अधिकार नहीं रहेगा, नियत भैरवी माता और उत्तम-उत्तम साधु उक्त स्थान पर रहेंगे। तुम्हारे आग्रह के कारण गुफा निर्माण के लिए श्रीमान्········को सभी लोगों ने स्वस्ति नहीं किया। तुम चित्तवृत्ति इस तरह फिर कभी किसीके लिए कदापि नहीं करोगे—यह गुरु की आज्ञा है।

········के घर के बारे में सब कुछ ठीकठाक करने के लिए ज्ञानानन्द परमहंस को कहा गया है, उसके लिए तुम कदापि कोई काम नहीं करोगे। उसके सभी अशुभ दुःख नष्ट हो जायँ ताकि उसका सभी शुभ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हो और शेष जीवन सुख से व्यतीत हो तथा अन्त में स्वर्गीय सुख अनुभव करे, यहाँ तक प्रयत्न किया जा रहा है।

गुरुदेव का आदेश है कि तुम उसे धृति योग देकर उसके सभी खराब कार्य नष्ट कर दोगे। यह कार्य वर्षा प्रारम्भ होने के पहले मत करना···· आदि के निकट से कभी अर्थ ग्रहण मत करना।

········ने जिन पत्थरों से गुफा निर्माण करने को कहा था, उसे········ की तरह परित्याग करना, उसे कभी ग्रहण मत करना। पत्र पाते ही उसे संवाद देना—अन्यान्य विषय बाद में लिखा जायगा। इति—

द्वितीय पत्र

ॐ तत्सत्

नारायणस्मरणवर
परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री अभयानन्द स्वामी के शुभ संवाद से यथाविधान सम्भाषणपूर्वक विज्ञापन परम्—

तुम्हारे द्वारा प्रेरित शुभ संवाद से परमानन्द प्राप्त हुआ। आदिनाथ के निकट प्रार्थना करता हूँ—तुम्हारी अभिलाषा सुसिद्ध हो—यही मेरा इष्ट है। परमाराध्य गुरुदेव भृगुराम परमहंसदेव का सम्प्रति जो समाचार आया है, उसमें से कुछ तुम्हें लिख रहा हूँ।

उनका आदेश यह है कि जिस-जिसको अपने पूर्व पत्र में क्रिया देने के लिए लिखा गया था, उन सबको आषाढ़ मास से अगहन तक क्रिया दे सकते हो।

········को धृति योग और किरात कुम्भक देना, अन्य किसीको क्रिया मत देना।········के पिता के बारे में तुमने लिखा है, उसे दुरारोग्य रोग है। बहरहाल, उसके लिए आनन्द भैरवी से कहा गया है। शायद उन्होंने क्रिया आरम्भ की है। तुम कदापि किसीके लिए क्रिया आरम्भ मत करना।

जो कुछ करना है, अगर तुम समाचार दोगे तो हम लोग सब कर देंगे। कारण तुम्हारी शेष क्रिया प्रारम्भ हो गयी है। अगले चार वर्ष बाद तुम्हारा सब कुछ समाधान हो जायगा। उस वक्त जो इच्छा होगी, उसे कर सकोगे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

………के और……… के बारे में जो कुछ लिखा है, उनके लिए जो क्रिया की गयी हैं, वही काफी है तथा वे लोग जो कार्य कर रहे हैं, उससे उनकी समस्त वासना सिद्ध हो जायगी। मगर उन लोगों के चित्त की अवस्था बहुत खराब है। बहरहाल, आगे वह नहीं रहेगा।………को समाधि उड्डीन दे सकते हो, इससे जल्द फल पाओगे।………का विशेष आग्रह देखने पर चाक्षुषी कुम्भक दे सकते हो।

पहले उसके चित्त में चित्त प्रवेश कराकर उत्तम ढंग से देखना। ………को कोई क्रिया मत देना। न देने का कारण बाद में समझ जाओगे।………को उड्डीन दे सकते हो। इससे उसकी पीड़ा में कमी आयेगी।………को क्रिया देने के लिए तुमने लिखा है, उसकी चित्तवृत्ति और स्वास्थ्य खराब हो गये हैं—उसे उषा-लौकिक-क्रिया दे सकते हो।

जिस किसीको क्रिया दोगे, सबसे पहले उसकी चित्तवृत्ति देख लेना और हम लोगों को क्रिया के द्वारा संवाद देना।………की पत्नी के आग्रह पर मैं लिख रहा हूँ, उसे साम्मोहिनी चाक्षुष देना। जिस-जिस-को क्रिया दोगे, प्रत्यक्ष एवं सिद्धिलाभ जिससे जल्द हो जाय, ऐसा करना।

………को तथा उनकी पत्नी को उद्भविता-क्रिया देना। अन्यान्य शुभ है। लिंगाश्रम समाधान का वास्तविक वादित्व (?)

आग्रहकारियों का विश्लेषण करने के बाद उनसे अर्थ ग्रहण करना। ऐसा न करने पर निरयगामी (नरकगामी) होगे। इति अविद्यापक्ष आषाढ़।

तृतीय पत्र

ॐ तत्सत्

१८३० कृष्णपक्ष

नारायणस्मरणवर

परमहंस भृगुराम स्वामी के शुभ संवाद से यथाविधान सम्भाषण-पूर्वक विज्ञापन परम्—

तुम्हारे द्वारा प्रेरित शुभ संवाद से परम सन्तोष हुआ। इतने दिनों तक पत्र न लिखने का कारण यह है कि यहाँ कोई नहीं था। और भाई, अब अधिक दिनों तक तुम्हें ताप भोगना नहीं पड़ेगा। तुम्हारी परीक्षा समाप्त हो गयी है। प्राणाधिक समदृष्टि रूप में, हृदयकोष में चित्त को स्थिर कर चुके हो इसलिए अधः ऊर्ध्व दोनों ही दृष्टियाँ समान हो गयी हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस तरह से काम करने के लिए ही इतना अनुशासन था। भ्रम-मुक्त चित्त ही प्रत्येक घटना की जड़ में आदेश तत्त्व को समझने में सक्षम होता है। माता की गोद में बालक जिस प्रकार जननी के अमृतसिक्त स्नेह वाक्य से तृप्त होता है, उसी प्रकार अनन्त जननी के स्नेह में ध्यानस्थ चित्त भी डूब जाता है।

स्वर्गीय अखण्ड भावावेश में ध्यान की जीवन्त ज्योति प्रकाश प्राप्त करती रहती है—ऊर्ध्व दृष्टि के तीव्र ध्यान में, उत्तापशक्ति हृदय प्रेमाकर्षण से शीतल होता है। उस वक्त वही अनादि आनन्दमय गुरुदेव के लिए प्राण रोने लगता है, आँखों की पलकें काल इष्ट चिन्ता से विच्छेद होने पर आँसुओं से भींग जाती हैं। फिर वही आँसू अखण्ड ध्यान में सहाय होता है।

निबिड़ अन्धकार ही गन्तव्य पथ का साथी है। गुरुदेव का नाम ही एकमात्र आश्रय है। गुरुदेव पर सब कुछ निर्भर है, यही कर्म है। हृदयभेदी व्याकुलता ही साधन है। गुरुदेव का आकर्षण ही स्वाभाविक योग है। इसका अमृत आस्वादन केवल अनासक्त संन्यास भावसम्पन्न परमहंस ही भोग करते हैं।

जो लोग भीषण कोलाहलपूर्ण जनता को गम्भीर रूप से चित्त के अकम्पित लक्ष्य को भ्रष्ट होने नहीं देते और निर्भीक अन्तःकरण से, स्वाभाविक सरल मार्ग पर अन्वेषण में निभृत चिन्तन करते हैं, वे ही लोग इस संसार में अनासक्त परमहंस हैं।

जो लोग मृणाल छिद्रभेदी सूत्र की भाँति अनन्त योग मार्ग में प्रवेश करते हैं, गगन चित्रित नक्षत्र-मण्डल और जगत् सभी गूढ़ प्रविष्ट अस्पर्श गुरुशक्ति योग में प्राणी के प्राणाधार को भेद करते हुए, आत्मयोग में सम्पूर्ण जगत् को अमृतमय समझ पाते हैं, वे ही लोग संसार में योगी हैं।

विशुद्धानन्द, सभी तो समझते हो और जानते हो। गुरुदेव की कृपा से तुम्हें कोई अभाव नहीं है। तुम्हारे अनेक शिष्य अधिकांश समय में, तुम्हें संदिग्ध चित्र से देखते हैं। वे लोग यह नहीं जानते कि गुरु के प्रति अर्थात् तुम्हारे प्रति, तुम्हारी दया के प्रति, अविश्वास करते हुए कल्पित अनुष्ठान के द्वारा बद्ध रहने के कारण पथभ्रष्ट पथिक की भाँति क्लेश-भोग के अलावा अन्य कोई लाभ प्राप्त नहीं करते।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहना पड़ रहा है कि तुम्हारी तरह गुरु के प्रति जो अविश्वास करता है, उसकी अभीष्ट प्राप्ति की इच्छा क्लीब के लिए पुत्रमुख दर्शन के तुल्य है। तुम कभी भी किसीको कोई विषय मत बताना या योग-क्रिया द्वारा मत देखना। यहाँ तक कि शिष्यों के बारे में भी मत देखना। जो कुछ करना है वह सब मैं करूँगा और देखूँगा। मैं प्रत्येक दिन तुम्हारे शिष्यों के कार्यों को देखता हूँ।

श्रीमान् ···· को क्रिया उड्डीन-योग दे सकते हो। श्रीमान् ···· इन लोगों की क्रियाएँ कोई खराब नहीं हैं। समय-समय अधिक विक्षिप्त हो जाता है। उसका कारण यह है कि यह ठीक से देख नहीं पा रहा है और मन भी स्थिर नहीं हो पा रहा है। इन लोगों के कार्य शीघ्र हो जायँगे। श्रीमान् ···· की फिलहाल बड़ी विक्षिप्त दशा है। उसे सावधान कर देना, चिन्ता करने को मना कर देना।

तुम्हारे अधिकतर शिष्य सामान्य दुःख से अत्यन्त कातर और सामान्य सुख से सन्तोष प्रकट करते हैं, उन्हें यह नहीं मालूम कि इस जगत् में पहले दुःख के अलावा सुख की आशा नहीं है। जो लोग अधिक अशान्ति में हैं, वे शीघ्र शान्ति प्राप्त कर सकें, उनके लिए विशेष प्रयत्न होगा। चिन्ता की बात नहीं। श्रीमान् ········ को सावधान कर दो, उसका बोध कम है, विशेष विवेचना बिना किये वह काम नहीं कर पाता। उसके विषय में तुम्हें नहीं देखना है।

जो कुछ देखना या करना है, मेरे द्वारा ही होगा। वह निर्बोध, ढीला आदमी है, आश्रम के लायक नहीं है। अगर वह इच्छा करे तो परम योगी हो सकता है। मैंने उसे दो-तीन बार क्षमा किया है।

आश्रम का काफी धन और कार्य उसने नष्ट किया है। उसे सावधान कर दो। तुम जिस रूप में उसे हृदय के भाव में करना चाहते हो, वह उस रूप में ग्रहण करना नहीं चाहता, वह बात उसमें नहीं है। पर योग में अधिकारी होने पर हो सकता है।

कोई नहीं जानता कि भृगुराम स्वामी आश्रम के आदि हैं, कोई नहीं जानता कि भृगुराम स्वामी का आदि, अन्त, मध्य नहीं है; कोई नहीं जानता कि भृगुराम परमहंस के गुरुदेव के प्राणलिंग अलेह्य हैं।

जगत् में सब कुछ आश्चर्य है। शान्ति कोई नहीं चाहता। मेरा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्देश्य यह है कि महापातकों का उद्धार करूँगा, इसीलिए पापियों को स्वर्ग-सुख देने के लिए तुम्हें शिष्य बनाने को कहा गया है।

करता हूँ एक, सब करते हैं और एक। श्रीमान्……के बारे में त्रिपुरा भैरवी माता को ठीक से कह दिया है। वे काम करेंगी। उसका सम्पूर्ण शुभ होने में अभी देर है। उसके लिए तुम परेशान क्यों हो? अब उसके बारे में कुछ मत लिखना।

चतुर्थ पत्र

गागरी, पंजाब,
१८३०, कृष्णपक्ष।

नारायणस्मरणवरेषु—

परमहंस ज्ञानानन्द स्वामी के शुभ संवाद से यथाविधान सम्भाषण-पूर्वक विज्ञापन—

तुम्हारे द्वारा प्रेरित शुभ संवाद से परम सन्तोष हुआ। जहाँ हो, वहाँ आनन्द या निरानन्द कहाँ है? वह तो अव्यक्त पद है। गुरुवाक्य पर विश्वास कर क्रियादि करते हुए ब्रह्म के अणु में रहना—यही तो परम पद है। क्या और कुछ है? तब क्यों परेशान होते हो? उस पद पर जाने से सब एक ब्रह्ममय हो जाता है, स्वयं के लिए एक काम भी नहीं रहता। यह ब्रह्म तो कुछ नहीं है, अवस्तु है, फिर अवस्तु ही वस्तु-भूत में प्रकट हुआ है। जब दोनों ही एक हैं तब वही एक ही नित्य, निर्मल, शिवस्वरूप, ब्रह्माण्ड व्यापक अव्यक्त है।

वे कूटस्थ ब्रह्मस्वरूप हैं, उनसे ही सृष्टि और अन्त में लय होता है। वे परम व्योमस्वरूप हैं, त्रिगुणातीत—सत्, रजः, तमातीत सत्। पहले गुरु विचार इसके बाद आत्मचिन्तन, मनन, ध्यान।

तुम जिस तरह गुरुदेव के इच्छानुसार कार्य कर चुके हो, कर रहे हो, सब कुछ प्रकट हो गया है, फिर तुम्हारे शिष्य ज्ञान के अधिकारी क्यों नहीं होंगे? क्यों जन्म लेंगे? सभी बातें जानते हो, जानते हुए क्यों अनेक बातों में परेशान होते हो? इसे क्या समझ नहीं पाते? मंगलदाता विधाता निर्विकार, विकारमय, साकार रूप में भी पात्र में पारदवत् अपने को स्वयं स्पर्श नहीं करते।

प्राणियों के बारे में उसी प्रकार के विधान स्पष्ट हैं। भ्रांति कुज्झ-टिका (कोहरा) आवरण दूर कर लेने पर जीवत्व का उज्ज्वल तत्त्व प्रकट होता है। फिर भी संसार के विभिन्न प्रलोभनों के प्रति आकृष्ट

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होकर पतंग की भाँति पापानल में जल जाता है। पूर्ण परमेश्वर के कार्य में पक्षपातित्व कभी नहीं। यह क्या सम्भव है ?

वास्तविक कार्य करने पर कभी अकाल मृत्यु नहीं होती। तुम्हारे शिष्यों में दो-तीन ऐसे हैं जो वास्तविक कार्य दूर कीं बात, कुछ भी नहीं करते। फलस्वरूप उन लोगों को अकाल मृत्यु-सदन में जाना ही पड़ेगा। उन लोगों को चेतावनी दे दो। ········ की आयु समाप्त हो गयी है।

६ वैशाख दिन के साढ़े दस बजे उसका काल पूर्ण हो जायगा। इस जगत् में वह फिर नहीं मिलेगा। पर उसे अब जठर-यंत्रणा भोगनी नहीं पड़ेगी। तुम्हारे सभी शिष्यों के लिए त्रिपुरा भैरवी माता एक याग करने को तैयार हैं। उक्त याग के लिए आश्रम की जमा रकम से एक सौ एक रुपये भेज दो। अगर वे याग करेंगी तो शिष्यों के लिए कुछ भी अशुभ नहीं रहेगा।

अतएव जितनी जल्दी हो सके तैयार हो जाओ। अन्यान्य बातों के बारे में बाद में लिखूंगा। परमाराध्य गुरुदेव मनोहर तीर्थ गये हुए हैं। आश्रम का काम पूरा न होने के कारण कोई जा नहीं रहा है।

परमपूज्यपाद भृगुराम स्वामी दो-तीन दिन गये थे। उन्हें देखने की इच्छा हो तो आश्रम के देवालय के पीछे अमावस या पूर्णिमा को महा-निशा के दिन देख सकते हो। बाकी शिष्यों के बारे में आगे लिखूंगा।

पंचम पत्र

ॐ तत्सत्

पंजाब, ज्ञानगंज से

स्वामीजी !

नारायण स्मरणवर विशुद्धानन्द तीर्थस्वामी वा परमहंस भाई नारायण स्मरणवरेषु,

नारायण स्मरणवर, परमहंस भृगुराम स्वामी के शुभ संवाद से यथाविधान सम्भाषणपूर्वक विज्ञापन परम्—

तुम्हारे द्वारा प्रेरित शुभ संवाद से परम सन्तोष हुआ। श्यामा भैरवी माता को तुमने जो रुपये भेजे थे, उन्हें वे पा गयी हैं। तुमने वर्तमान समय में जितने शिष्य बनाये हैं, मैं उनके निकट प्रतिदिन जाता हूँ और सम्यक् दृष्टि से प्रत्येक घर में घूमता रहता हूँ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैं सब कुछ देखता हूँ। तुम्हें देखने की जरूरत है ऐसा नहीं समझता। तुम्हारे शिष्यों के जितने कार्य देख रहा हूँ, उसमें अधः ऊर्ध्व दोनों ही है। जिन शिष्यों ने एक बार दीक्षा लेकर पुनः तुमसे दीक्षा ली है, वे लोग तुम्हारा चरण-स्पर्श न करें। अगर करेंगे तो सारी क्रिया नष्ट हो जायगी।

जब उन्हें चरण-स्पर्श करने का अधिकार होगा तब स्पर्श करेंगे वरना दो-तीन साल तक वे स्पर्श न करें। अगर शूद्र स्पर्श करें तो कोई नुकसान नहीं होगा, क्योंकि उनमें वह वस्तु नहीं है। श्रीमान् .... के बारे में हम लोगों को कोई आपत्ति नहीं है। उसे जिससे सन्तोष मिले, वह वैसा कार्य कर सकता है।

तुम उसके प्रतिबन्धक नहीं होगे। अगर प्रतिबन्धक बनोगे तो तुम्हारी समूह-क्षति होगी, यह समझ लेना। जिन चार भैरवियों का इन्तजाम तुमने किया है, उससे भैरवी माताओं ने सन्तोष व्यक्त किया है। और चार भैरवी वहाँ रहेंगी तथा हठयोगी आठ रहेंगे। और बारह के लिए तुम तैयार रहो।

इन लोगों के लिए किस तरह की व्यवस्था होगी, इसे तुम जानते हो। मेरा आश्रम बाण के निकट रहने से अच्छा होगा या पहले जैसी व्यवस्था की गयी थी, वैसा कर सकते हो। अन्य विषय बाद में लिखूंगा।

श्रीमान् .... ने आश्रम का निर्माण करा देगा कहा है। उसकी हालत कभी-कभी विक्षिप्त-सी हो जाती है; फलस्वरूप उसके द्वारा सभी कार्य समाप्त होने के भाव को अभाव मात्र समझना।

मैं मैं, क्या मैं तुम, क्या जगत् मैं, यह मैं नहीं जानता—पर जो लिखूंगा या कहूँगा, वह अव्यर्थ है। दिन-रात, अन्धकार-प्रकाश, देव-द्विज नहीं रह सकते। सृष्टि का लय हो सकता है, देवताओं के कार्य ध्वंस हो सकते हैं, किन्तु मैं जो कुछ कहूँगा, वही ठीक तथा वही सत्य है।[1]

परमाराध्य गुरुदेव मुझे साथ लेकर एवं उन्हें मैं साथ लेकर मनोहर तीर्थ जा रहा हूँ। शिवरात्रि के दिन एक बार न एक बार मेरी क्रिया सभी समझ जायँगे। आश्रम के अधिकारी तुम नहीं हो, तुम्हारे शिष्य हैं। उनके आदेश पर तुम आश्रम में जाओगे या काम करोगे, अन्यथा

---

१. तुलनीय—"Heaven and earth shall pass away, but my words shall not pass away"—(Mathew 24.35)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुम्हारी सारी क्रियाएँ ध्वंस हो जायँगी। क्रिया के द्वारा किसीका विषय कभी मत करना और न देखना—यह मैं कह रहा हूँ, दूसरे किसी-ने नहीं कहा है।

भाई विशुद्धानन्द, तब तुम-मैं कौन है भाई? यह मैं नहीं जानता और न जानने की इच्छा है। जगत् मिथ्या है, मानवीय भाव सत्य है। इसीलिए कहता हूँ कि सत्य-मिथ्या एक हो गया। विचार करते हुए कार्य करो या विचार मत करो, गुण-भाव में एक समझकर जो करोगे, वही ठीक है।

तुम और मैं उपाधिधारी मात्र हैं। एक के अलावा इस जगत् में दूसरा क्या है, भाई? अगर है तो वही है। इसीलिए कहता हूँ जगत् मिथ्या, सत्य, सत्य प्रकृति का खेल है।

इस खेल को जो खेल रहे हैं, वे नहीं जानते। जो जानते हैं, वही जानते हैं। ज्योतिर्मय ज्योति, जिस ज्योति को देखने की इच्छा होने पर या देखने पर कुछ कहा नहीं जा सकता—ज्ञान में भक्ति आकर भाव होता है, वही ठीक है।

सभी क्रिया करने पर अमरत्व प्राप्त करेंगे। कोई मरता नहीं, कोई जीवित रहता नहीं—मरना-जीना स्थूल का खेल है। इसीलिए कहता हूँ कि जगत् मिथ्या ब्रह्म सत्य है।

ब्रह्म क्या सोचने का विषय है, अन्य कुछ नहीं। तुम, मैं एवं यह जगत्। तब तुम-मैं कौन है भाई?

आश्रम का धन आश्रम के संन्यासियों के लिए है, मेरा-तुम्हारा नहीं है। जो इसके अधिकारी हैं वे अधिकार करेंगे। तब तुम-मैं कौन भाई हैं?

भाई, अब तुम परमहंस हो गये। परीक्षा देनी होगी।

षष्ठ पत्र

पत्रांश

………हम लोगों की आज्ञा के बिना तुम अपने शिष्यों या अन्य किसी के बारे में योगक्रिया या ज्योतिष द्वारा नहीं देखोगे। जिस क्षण देखने की इच्छा करोगे, उसी क्षण तुम्हारी इतने दिनों की क्रिया का सारा फल ध्वंस कर दूँगा। मैं कह रहा हूँ, किसी दूसरे ने नहीं कहा है।

मैं क्या हूँ, इसे तुम विशेष रूप से जानते हो। मैं तुम्हारे सभी शिष्यों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के बारे में देखता हूँ। शीघ्र ही एक संन्यासी को भेजने को सोचा है जो तुम्हारे सभी शिष्यों की परीक्षा लेगा।

क्रिया अच्छी तरह से करने पर उपाधि पाओगे और एक क्रिया दी जायेगी जिसके जरिये एक सप्ताह में फल प्राप्त करोगे।

आश्रम के बारे में तत्पर हो जाओ। जो करोगे, उसे बताओगे नहीं, जो कहोगे उसे करोगे नहीं। गुह्य विषय व्यक्त करने पर क्रिया नष्ट हो जाती है। इस पत्र को कामाक्षा भेज दो। नकल भेजना। .... को जो क्रिया दी गयी है, वह उसे करता रहे।

पश्चिम में आने की इच्छा होने पर .... को या .... के अलावा अन्य किसीको साथ मत लाना। शिव चतुर्दशी के बाद आना। शिव चतुर्दशी के दिन आश्रम में मेरा दो-एक खेल देख सकोगे। मेरे लिए आश्रम से कुछ दूर विटपी (शाखाओंवाला वृक्ष) रहे। वृक्ष के नीचे एक छोटा-सा आश्रम बनाओ। जो लोग क्रिया के अधिकारी हो गये हैं, ऐसे शिष्यों से अर्थ ले सकते हो, ... से कुछ लेकर आश्रम को तैयार करो। अधिक खर्च न होने पाये।

.... को साथ लेकर इस साल फिलहाल पश्चिम में मत आना। आने पर उसकी सारी क्रियाएँ नष्ट हो जायेंगी। उससे मेरे आश्रम के लिए कुछ धन ले सकते हो।

उसके लिए निर्धारित विषय अभी उसे मत देना। जब मैं कहूँगा तब देना। आश्रम में जाकर तुम्हारे सभी शिष्य शंकर के निकट योनि मुद्रा में बैठें तो साक्षात् देख पायँगे।

क्रमशः देखेंगे। दुःख के अलावा इस जगत् सुख की आशा कम है। ठीक से क्रिया करने पर मृत्युंजय हो सकेंगे। भाई, तुम इस बार परम-हंस होने पर परीक्षा निमित्त मात्र समझना। इति—

सप्तम पत्र

ज्ञानगंज
पंजाब आश्रम
१८३५ शुक्लपक्ष

नारायण स्मरणवरेषु

परमहंस भृगुराम स्वामी के शुभ संवाद से यथाविधान सम्भाषण-पूर्वक विज्ञापन परम्—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथा स्वप्ने द्वयाभासं चित्तं चलति मायया।
तथा जाग्रद् द्वयाभासं चित्तं चलति मायया॥
अस्ति नास्तीति नास्तीति नास्ति नास्तीति वा पुनः।
चल स्थिरोभयाभावैरावृणोत्येष बालिशः॥

जब कर्तृत्वपद को पाता है अर्थात् क्रिया के बाद अवस्था में काम का एक बोध होता है तब एक कहने पर एक नहीं होता। मन भले ही सभी ओर क्यों न जाय—काम के समय क्षणभर के लिए ठीक रहने पर योग का उपदेश हमारे निकट जितना सहजसाध्य है, उसीसे प्रत्यक्ष होगा ही। पर आसन ठीक रूप से होना चाहिए।

उपयुक्त गुरु के अलावा योग-प्राप्ति किसी भी युग में, किसी भी समय में, किसी तरह नहीं होगी। "तरति शोकमात्मवित्" इति। जो आत्मा को जानता है, वही शोक से परित्राण पाते हैं। उन्हें भी परब्रह्म समझना। वे ही ब्रह्म हैं। ब्रह्म जानकर परमपद को प्राप्त करता है। तब तुम कौन—मैं कौन भाई ?

विशुद्धानन्द भाई, और नहीं, और नहीं—तेरी इच्छा पूर्ण होगी। संसार श्मशान भूमि के भीषण दर्शन से भी असार को सभी सार समझते हैं। वास्तविक सत्य की उपेक्षा कर मैं का दासत्व करने के लिए बाध्य होता है। क्यों भाई, "मैं पन" कितना भयंकर है। किसी प्रकार भी प्रकृति को उच्च आदर्श में प्रवेश करने नहीं देता।

फिर इसमें माया के विविध प्रलोभन मौजूद रहते हैं। किन्तु क्या यह कर्त्तव्य नहीं है कि इन सभी विघ्नबाधाओं के रहते हुए गन्तव्य मार्ग (पथ ?) को स्थिर रखना पड़ेगा ? क्षणभर के लिए अगर श्मशान वैराग्य को आसक्ति के चरणों पर फेंक दिया जाय तो क्या होगा ? अन्तःसलिला फल्गु नदी की भाँति पवित्र वैराग्य को अन्तर जाग्रत रखते हुए, प्रत्येक घटना में प्रवेश करने पर जगत् के निष्कलंक, विशुद्ध सत्य के अनुष्ठान में अनायास शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

ठीक ज्ञान क्या है ? वास्तव में ज्ञान का मौलिक तत्त्व चेतन-शक्ति है। योगीगण इसे स्वरूप मानकर व्याख्या करते हैं। स्मृति, बुद्धि, वाक्य, मन, दर्शन, श्रवण आदि में उसी शक्ति का विकास है। ये सब भी शम, दम, तितिक्षा और द्वेष, दंभ, हिंसा आदि शुभाशुभ उत्तम वृत्ति के भीतर विचरण करते हैं (करते रहते हैं ?)। ज्ञानस्वरूप विधाता ने सभी प्रकार के व्यक्तियों को स्वाधीनता दी है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वे लोग उसी स्वाधीन शक्ति के वश से सुख, दुःख, शान्ति और अशान्ति भोग रहे हैं। पशु-पक्षियों में सीमाबद्ध ज्ञान के विधान में भी किसी यंत्रणा का कारण दिखाई नहीं देता। किन्तु उच्च ज्ञान विशिष्ट मानव गण स्वाधीन शक्ति के स्वार्थ-प्रलोभन में आकर ज्ञान को नाना प्रकार से ग्रहण करते हैं।

मानव की चिन्ता-शक्ति सभी की अपेक्षा उन्नत है। इसीलिए कोई गुरु ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, हवा में उड़ा देता है। उसका प्रमाण तुम्हें और तुम्हारे शिष्यों को समझना होगा। यह जो ज्ञान विभ्राट् है, इसके दो कारण हैं—

एक—शास्त्रों में अविश्वास और एक रुचिगत स्वार्थचिन्ता। इन दोनों अनुदार भावों के द्वारा सरल प्रकृति को भी संदेह के तरंगों में व्याकुल कर देते हैं। जिस प्रकार बाधा पाने पर नदी चारों ओर बहने लगती है, उसी प्रकार तेजस्वी मनस्वी लोग भी स्वार्थ-चिन्ता की उत्तेजना से विविध प्रकार के युक्ति-पथ की ओर दौड़ने लगते हैं। अनावृत सरल तत्त्व की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती। अगर जाती तो सत्य का इतना अनादर नहीं होता, वर्धमान आश्रम में ऐसी दुर्घटनाएँ न होतीं।

अन्य शिष्यों से काम लेते रहो। जिसकी नीयत इस तरह की है उससे मेरे द्वारा निर्दिष्ट आश्रम की जिम्मेदारी लेने के लिए अर्थ ग्रहण मत करना। नररूपी पिशाच ········१३१९ (फसली) सन् में तुम्हें किस तरह से पत्र लिखा था, यह याद है?

उसी समय से मैं उन सभी के प्रति नाराज हूँ। उस पिशाच ने तुम्हारे नाम पर ऐसा कोई काम छोड़ा नहीं जो उसने न किया हो। तुम्हारी अजानकारी में व्यर्थ में याचना करता रहा। अति पातक सब कुछ चौपट करने पर तुला है।

तुम उसे चेतावनी देने जाते हो। तुम चेतावनी देकर क्या करोगे? ········ इस तरह व्यवहार किया है। इस तरह के प्रवंचक होने के कारण ऐसी घटनाएँ हो रही हैं। किसके ऊपर तिकड़म कर सभी कार्य कर रहा है। ········ एक प्रधान अन्त्यज है। ऐसा कोई काम नहीं जो वह न कर सकता हो।

अगर और सारी बातें जानना चाहते हो तो उनकी सारी करनी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और सभी लोगों की कारस्तानी लिखूंगा। .... आदि नराधमों को सावधान होने को कहो। अपना भला चाहते हैं तो सावधान होने को कह दो। तुम्हारा नाम लेकर जितने कार्य किये हैं, जिन लोगों के निकट किया है या कहा है, उनके पास जाकर सत्य कहने को कह दो।

अगर वे अपना चाहते हैं तो। तुम मेरे प्राणों की अपेक्षा प्रिय वस्तु हो। तुम्हें जब जो कुछ कहा, वही तुमने कहा या किया है। तुम जो नहीं देखते या नहीं कहते या नहीं करते, तुम्हारे लिए मैं सब कुछ करता हूँ।

तुम्हारा दास मैं हूँ जब कि तुम मेरे दास हो सकते हो। तुम मैं, मैं तुम—इसे तुम नहीं जानते। जब कि उन दुष्कृतों ने अनेक काम किये हैं। जो कुछ किया है, सब मिथ्या है।

सब कुछ प्रकट कर दें तो अनेक पापों में कमी आ जायगी। ऐसा होने पर त्रिपुरा भैरवी उनके लिए काम करेंगी। ९ भाद्र से .... जो अच्छा ग्रह आयेगा, उसके द्वारा कुछ शुभ नहीं होगा, विशेष क्रिया करनी होगी।

उसे समाचार दो। उसके आने पर पत्र का मर्म उसे समझा दो। तुम्हें इतनी विश्रृंखलता देखनी नहीं पड़ती, तुम्हें इतना उद्विग्न होना नहीं पड़ता। १३ आषाढ़, १३१८ सन् (फसली) वाले दिन वर्धमान आश्रम में बैठे दोपहर को क्या सोचते रहे? गुस्करा से तुम्हारे शिष्य तुम्हें लेकर जब वर्धमान आये तब क्या सोचते रहे? सोचते रहे कि अब धर्म की उन्नति होगी।

सभी को रीति के अनुसार योग शिक्षा दूँगा। सभी बड़े आनन्द से रहेंगे। सभी शिष्य जातिस्मर होंगे, त्रिकालज्ञ होंगे—बड़ा आनन्द आयेगा। अब क्या सोच रहे हो भाई? उस वक्त और इस वक्त। तुम्हारे सभी शिष्य फल्गु नदी की तरह रहते हुए तुमसे सभी कार्य करा लेंगे।

हाँ रे, दास-प्रभु का पहचानना कठिन है जब कि शाबाशी लेना आवश्यक हैं। धन्य है काल का प्रभाव। तुम्हारा सेवा-यत्न दूर की बात—अन्तराल में रहकर मजा लूटेंगे।

कितनी दूरदृष्टि है। इसी करनी से वे लोग धार्मिक और योगी बनेंगे। कोई कार्य न करके—गुरु के यत्न और गुरु के कार्य में कोई

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाधा न दे—इस तरह व्यवहार करने पर सिद्ध और सर्वज्ञ हुआ जा सकता है—इस बात को वे लोग नहीं जानते।

अगर आश्रम का सुप्रबन्ध सभी शिष्य न करें तो तुम वहाँ मत रहना, अन्यत्र चले जाना किंवा हम लोगों के पास रहना। बहुत हो गया। वर्धमान आश्रम की जिम्मेदारी जिसकी है, उसे भार सौंपकर तुम चले आना।

उस आश्रम से जो होना है, वह भैरवियों का होगा। बशर्ते शीघ्र वे सब उत्तम ढंग से व्यवस्था कर सके तो जितने दिनों तक इच्छा हो वर्धमान आश्रम में रह सकते हो।

मैं अनेक बार वर्धमान आश्रम जा चुका हूँ। वर्धमान आश्रम की जिम्मेदारी मैंने जिन लोगों को सौंपी है, तुम भी उन्हीं लोगों को सौंप दो।

वे लोग जिस किसीको या शिष्य को लेकर अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकते हैं। ये लोग जो कुछ कहेंगे या करेंगे, सभी शिष्यों को उसमें संतोष होगा।

अगर सन्तोष नहीं हुआ तो मैं उसका उपाय करूँगा। दो हजार शिष्यों में से पन्द्रह सौ को अलग कर दूँगा। ....

अष्टम पत्र

नारायण स्मरणवरेषु,

परमहंस उमानन्द स्वामी का शुभ सम्वाद यथाविधान सम्भाषण पूर्वक विज्ञापन परम्—

पितृसन्निभ ! महादुःख और महाभय बन्धु। महाशक्ति महामाया जगत् प्रसविनी के नाम सूत्र से, असीम आकाश में स्थितिरूपा हैं। महाशक्ति महानुग्रह ब्रह्मनिष्ठा सद्ब्राह्मण महाविज्ञान जो जगत् को प्रसव कर रहे हैं एवं जिन्होंने उन्हें प्रसव किया है, उसके तत्त्व के अनुसन्धान जो सर्वदा रत हैं और कर रहे हैं, मेढ्र में चतुर्दल, कण्ठ में षोड़शदल, आँखों में द्विदल, मस्तिष्क में सहस्रदल प्रत्यक्ष कर चुके हैं।

वे योग विज्ञान में परम योगी हैं। वे जिसे जिस तरह शिक्षा देंगे, उक्त आदेश के अनुसार जो कार्य करता रहेगा, वे निश्चित रूप से प्रत्यक्ष करेंगे और विज्ञान-शिक्षा के अनुसार त्रैलोक्यमण्डलं सूर्यस्य विज्ञानं शिक्षा ग्रहण करने पर सभी विषयों के अधिकारी हो सकेंगे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आवश्यक द्रव्य और देव-देवी का दर्शन क्षणभर में प्रत्यक्ष कर सकेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं।

यद्यपि समय साक्षेप है। जो विश्वास और भक्तिशून्य हैं, गुरुवाक्य पर विश्वास नहीं करते, शास्त्रवाक्यों की उपेक्षा करते हैं, वे निश्चय ही मूलधन से वंचित होंगे, चिरकाल दुःख भोगेंगे—इसमें सन्देह नहीं। आपने जिन वैज्ञानिक यन्त्रों के बारे में लिखा है, वह सब पाने में देर होगी। आगे सारी बातें लिखूंगा।

पहलेवाले पत्र में अनेक बातें लिख चुका हूँ, वह सब परमाराध्य पूज्यपाद गुरुदेव के आदेशानुसार ही लिखा था। उन्होंने जैसा आदेश दिया था, उससे आपके शिष्यों में सरलता, निष्ठावान्, शास्त्रवाक्यों के प्रति विश्वास कम है।

जो व्यक्ति लोगों के निकट अपने को सत् कहकर परिचय देते हैं—वे अत्यन्त मूढ़ और महापापी हैं। यह देखकर आपको सभी तत्त्वों के विषय को जानने की जो शिक्षा दी गयी है, उसे बन्द कर दिया गया है।

कहीं आपकी मानसिक वृत्ति उन लोगों को देखकर खराब न हो जाय और योग विज्ञान का अनिष्ट न हो, इसलिए ऐसा किया गया है। आप किसी बात की चिन्ता न करें। आश्रम के सभी विषयों पर इसीलिए आपको सटीक वे नहीं लिखवाते और न कहते हैं।

मैं उनके आदेशानुसार लिख रहा हूँ। इस सम्बन्ध में मेरा कोई दोष नहीं है। आपके ब्रह्मचारी शिष्यों में अनेक परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये हैं। अभी वे लोग यहीं रहेंगे, बाद में जैसा आदेश करेंगे, वैसा ही करूँगा।

जिन पत्रों में आवश्यक गुप्त बातें हैं, उन्हें किसी शिष्य या अन्य किसीके सामने अभी प्रकट मत कीजिएगा। आगे के पत्रों में जो कुछ लिखा है जिसे छापने का आदेश दिया गया है, अभी फिलहाल बन्द रखियेगा।

विवेचना के अनुसार कार्य कीजिएगा और उसे प्रकाशित कराइयेगा। आपके अनेक शिष्यों में सेव्य-सेवक भाव अच्छे हैं, पर अहं शुष्कज्ञान के तीव्र ताप से विशुद्ध तत्त्वों के स्पर्शयुक्त या आस्वादन समझ नहीं पाते। उनमें ५-६ वर्ष के बाद विश्वजनीन प्रेम उज्ज्वल रूप में प्रकट हो सकता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनेक लोगों के भीतर कार्य ठीक से हो रहा है, यद्यपि अस्फुट भाव में है और वे सोच रहे हैं कि इतने दिनों से कार्य कर रहा हूँ, क्या हुआ ? अपनी गलती वे स्वयं ही नहीं समझ पा रहे हैं। इसका कारण है शुद्ध आत्मगरिमा। आत्मगरिमा की झटिका बन्द होने पर वे प्राप्त करेंगे ही। जब तक आत्माभिमान कर्मानुराग का त्याग नहीं होगा तब तक योग विभ्राट् होता ही रहेगा। कारण जो क्रिया या बीज उन लोगों को दिया गया है, उसमें सारा दोष और क्षोभ विरहित है।

सोचकर देखिये, इष्ट लाभ करने के बावजूद योगियों के लिए प्रार्थना का विराम नहीं है। क्या यह परमानन्द का विषय नहीं है ? उन्हें पाने के बाद भी आशा का प्रबल स्रोत अनिवार्य रूप से प्रवाहित होता रहता है। इसी वजह से ही जननी और पुत्र के मधुर भावादि श्रेष्ठ हैं।

गुरुदेव को यदि आन्तरिक रूप से मन-प्राण उत्सर्ग कर दिया जाय तो निश्चय ही स्वर्गीय पवित्रता का अधिकारी हुआ जा सकता है और उनकी कृपा से चेष्टाशून्य होने पर भी स्वभावतः वर्द्धित होता रहता है।

परिणाम व्यापार को पूज्यपाद गुरुदेव स्वयं ही देख रहे हैं। बण्डुल आश्रम के प्रति अब दृष्टि क्यों नहीं है ? इसे वे लोग जानने के बहुत इच्छुक हैं। जिनकी दृष्टि पड़ेगी, उनमें निश्चित रूप से महाभाव का आविर्भाव होकर काम-क्रोधादि के असार भाव नष्ट होंगे, तत्त्वज्ञान की प्रबल ज्योति का प्रकाश कलुषित चित्त से दूर होकर अपार आनन्द आयेगा ही।

आश्रम का कोई भी कार्य हो—आप उस पर निगाह बराबर रखें। आदान-प्रदान आदि कार्यों के लिए अपने निकट शिष्य रखकर उसके जरिये कह देंगे या स्वयं करेंगे, तब शिष्यों को कोई आपत्ति नहीं होगी।

परमाराध्य पूज्यपाद भृगुराम परमहंसदेव सभी कार्य, आश्रम का आय-व्यायादि सभी कार्यों को देख रहे हैं। आप नहीं देखेंगे, इसका कारण क्या है ? जिन्होंने जगत् की सृष्टि की है, वे क्यों जगत् के सभी कार्यों को देख रहे हैं ? और वे विचार कर रहे हैं, इसके लिए वे दण्ड और परित्राण दे भी रहे हैं।

अगर आप नहीं देखेंगे या नहीं करेंगे तो आपको सिशेष दण्ड दिया जायगा एव क्रियादि सब छीन लिया जायगा। आपको पहले की भाँति दरिद्र ब्राह्मण के भेष में घूमना पड़ेगा। मेरा कोई दोष नहीं है। उनकी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आज्ञा है एवं सामने रहकर आदेश दे रहे हैं। सोच-विचारकर काम कीजिएगा।

आगे सभी विषयों पर लिखा जायगा। यह पहले ही कहा जा चुका है कि विज्ञान का कार्य प्रारम्भ होने पर जितने शिष्य आपके पास रहेंगे, उनके पीछे जो आय-व्यय होगा, सब आश्रम की ओर से दिया जायगा। उन्हें किसी बात की कमी न रहे, ऐसी व्यवस्था होगी।

आश्रम की सेवा और कार्यों में मिताहारी होना चाहिए। भोग-यातना आरम्भ होने पर कोई कार्य सिद्ध नहीं होगा। लालसा का त्याग न करने पर विशुद्ध आनन्द की आशा कैसे होगी? बाद में सभी विषय उनके आदेशानुसार लिखूंगा। मैं आपका अनुग्रह-प्रार्थी हूँ, आपकी अपेक्षा उम्र अधिक होने पर भी मैं आपका दास हूँ, मेरी कोई गलती स्वीकार मत कीजिएगा।

मुझे जो कुछ कहा गया, वही मैंने लिखा। क्रिया के बारे में पहले के पत्रों में जो लिखा गया है, योग-ज्योतिष आदि उपयुक्त शिष्यों को अब दे सकते हैं। सूर्य विज्ञान सभी शिष्यों को दिखाने का नियम नहीं है। उपयुक्त समझकर ही दें। कारण इसके द्वारा ऐसा कोई काम नहीं है जो न हो सकता हो। परमाराध्य पूज्यपाद भृगुराम परमहंसदेव काशी और बण्डुल आश्रम गये थे और अक्सर जाते रहते हैं। आपकी मानसिक वृत्ति की परीक्षा के लिए नाना प्रकार की घटनाएँ कर रहे हैं और कर चुके हैं। आपके लिए यह शुभ लक्षण है। अब मुझे बिदा दें।

—उमानन्द स्वामी

नवम पत्र

ॐ तत्सत्

१८३४।४ शुक्लपक्ष
पंजाब, ज्ञानगंज आश्रम

नारायण स्मरणवरेषु,

परमहंस ज्ञानानन्द स्वामी के शुभ संवाद से यथाविधान सम्भाषण-पूर्वक विज्ञापन परम्—

भाई विशुद्धानन्द, तुम्हारे द्वारा प्रेषित शुभ संवाद से परम आनन्द प्राप्त हुआ। भाई, संसार-समुद्र विशाल है, अनन्त की अनन्त जलराशि,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिक्शून्य प्रबल तरंग, दूसरी ओर धीर, स्थिर और गम्भीर। फिर कभी तरंग है, कभी नहीं है, गर्जन नहीं है, भीम-भैरव नर्तन नहीं है, केवल है आशाशून्य-आशादायक शब्द। चन्द्रालोकजनित स्फीति, मधुर मिलन सुधा और गरल या प्रकृति के आकर्षण से विकृति भाव के भाव से सिन्धु का पानी काँप उठता हैं, चल रहा है, गिर रहा है, कहीं-कहीं धीर तरंग-भंग हो रहा है। कहीं बिन्दु मात्र आशा है, सिन्धु की भाँति आशाशून्य, कहीं तो सिन्धु की तरह आशा-निराशा बिन्दु मात्र है। प्रकृति का विकृति भाव यहाँ नहीं है। रम्य निकेतन में साम्यभाव अनेक का स्वभाव (?) है, उस भाव की शोभा के संगमस्थल में विक्षिप्त हृदय के टूटने-बनने की कल्पना में गुण (नाव खींचनेवाली डोरी) को डुबोने का भाव लेकर भावुक आ गया। हँसता हुआ चाँद फन्दे में फँसकर हमेशा हँसता रहता है। हँसना अरुण का वर्ण विवर्ण, सोहाग-शून्य होता है न। डूबने को तैयार है; सामने सीमाशून्य वारि अरिशून्य होकर, आँखें बन्द कर लेट गया है, वह जगत् के प्रकाश की महिमा को प्रकाश कर रहा है। किनारे पर आते ही आत्महारा हो जाता है, नारायण की कृपा से सीमाशून्य की सीमा होती है। शक्तिशून्य होने पर नारायण भी आत्महारा हो जाते हैं, उनका निशाना है हम लोग; वे और जगत्। सब तो जानते हो, मजे में हो, तुम्हारी तरह यथार्थ पुरुषों को संसार में रहना चाहिए। महात्मा महापुरुष भगवान् परमाराध्य दादा गुरुदेव श्रीमत् भृगुराम परमहंसदेव ने तुम्हारे बारे में इतना कहा है जो वर्णनातीत है। तुम यथार्थ भक्त, महापुरुष, ज्ञानी, त्यागी और गृही हो। असीम सह्यगुण जब कि भोगी हो। दादा गुरुदेव ने एक दिन सभी योगियों को तुम्हारे असीम योग का विषय दिखाया, अभी तक तुम उग्र तपस्या कर रहे हो, यह भी दिखाया। उलटकर देखा तो कुछ नहीं था, पलक झपकते ही गायब। देह कंटकित हो उठा, पुनः देखा—जगत् नहीं है, मैं भी नहीं हूँ। यह कौन-सी लीला है भाई। इसीलिए पूछ रहा हूँ, जीवों के अतीत वयःक्रम हुए, अनेक म्लेच्छ, हिन्दू, मुसलमानों को शिष्य बनाया, बहुत कुछ देखा, बहुत कुछ किया, पर तुम्हारी तरह योग शिक्षा परमाराध्य भृगुराम स्वामी ने मुझे नहीं दी। मेरी इच्छा है कि कुछ दिनों तक तम्हारे पास रहकर चात्वर और याग-कल्प योग की शिक्षा लूं, इस बारे में तुम्हारी क्या राय है ? जीव और शिव में कोई पार्थक्य नहीं है, फिर भी नहीं मानते। मंगलमय के राज्य मे जीव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यौवनावस्था में काम-क्रोध के वशीभूत होकर पाप-पुण्यात्मक विविध आचरण करते हैं। अच्छा, जीव देह के भोगार्थ ही कर्म जाल का आचरण करता है। देह तो आत्मा से भिन्न है, आत्मा तो कुछ भोग नहीं करती, अगर करती है तो पाप-पुण्य का भागी कौन है ? इस बारे में आपकी क्या राय है भाई ? लगभग नौ सौ ब्रह्मचारी परीक्षा देंगे। चौथे मठ की तरह। तुम्हें सभी लोगों ने स्वस्ति किया है। शायद शीघ्र ही तुम्हें पंजाब में आने की अनुमति दी जायगी। भैरवी माताओं के लिए कुआँ जिसे ········ बनवा देंगा। इसमें खुदाई में बारह सौ रुपये लगेंगे, जोड़ाई का अलग से लगेगा। भैरवी माता ने उसके लिए जो क्रिया की है, वही काफी है और उसके घर के लिए जो किया गया है, वह उनके लिए शुभ है। उसकी प्राणरक्षा हो गयी है, बाकी सभी शुभ होगा। इससे बढ़कर उसके लिए और क्या शुभ हो सकता है ? ········ तुम्हारा एक भक्त है। इसीलिए उसके लिए भैरवी माताओं ने दो क्रियाएँ की हैं और कर रही हैं। अष्टम में राहु है, उसकी पत्नी इन दिनों स्वस्थ नहीं रहेगी। ········ के बारे में—उसके ग्रह ठीक नहीं हैं। बाद में वे लिखेंगे। वर्धमान के शिष्यों के बारे में यथाशीघ्र लिखेंगे। इन दिनों वर्धमानवाले आश्रम में तुम्हारा रहना नहीं होगा। आश्रम के पास एक छोटा घर बनवाकर रहने का आदेश दिया जायगा। चार ब्रह्मचारी और चार संन्यासी रहेंगे। वर्धमान की व्यवस्था त्रिपुरा भैरवी माता करेंगी। उनकी व्यवस्था में तुम वहाँ नहीं रह सकते। आश्रम के पास एक छोटा सा घर बनवाकर ब्रह्मचारी तथा संन्यासियों के साथ रहोगे। ········ के बारे में जो लिखा है, उसके सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा। बाकी बातें बाद में लिखूंगा। इस पत्र की नकल कराकर चन्द्रनाथ, श्यामानन्द स्वामीजी को भेज देना। भाई श्यामानन्द, तुम एक बार विशुद्धानन्द के साथ मुलाकात कर लेना। पहले जिस विषय पर लिखा गया था, उसका सांकेतिक चिह्न दिखाकर उसके सामने कहना और लिखे गये निर्देश के अनुसार कार्य करना। इस विषय पर लापरवाही मत करना। करने पर क्या होता है यह जानते हो। कलकत्ता के ········ के बारे में जो लिखा था, उसका वर्तमान समय में अच्छा कहाँ है ? उसकी फिलहाल स्थिति खराब है। बाद में ठीक हो सकती है। त्रिपुरा भैरवी ने यही कहा है। उसकी छोटी बहू के साथ जो झगड़ा होगा, उसे वह वृथा न करे। बालिका के साथ झगड़ा करना अतीव अकर्त्तव्य है। ········ पेट की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बीमारी हो सकती है। जल्द अच्छा हो जायगा। उसकी क्रिया अच्छे ढंग से हो रही है। उसकी पत्नी के बारे में जो करना कर्त्तव्य है, उसे ज्ञान भैरवी माता करेंगी। अब बिदा ले रहा हूँ।

दशम पत्र

ॐ तत्सत्

ज्ञानगंज, पंजाब
१८३५।११।११

नारायण स्मरणवरेषु

परमहंस भृगुराम स्वामी के शुभ संवाद से यथाविधान सम्भाषण-पूर्वक विज्ञापन परम्—

भाई, संसार के प्रत्येक व्यापार के भीतर ध्यान अथवा चिन्ताशक्ति जरूर है, किन्तु वह प्राकृत है। उस प्राणिहन्ता व्याध ने पक्षी को लक्ष्य करके शर-संधान किया है, उसे क्या कहा जाय, क्या वह ध्यानी है? जब कि इसके भीतर भक्तों ने साधु भाव से शिक्षा ग्रहण करने के पूर्व व्याध को भी गुरु कहा है। यहाँ समझो, पारस पत्थर जिस प्रकार लोहे की वस्तु को सोना बना सकता है, पर स्वयं वह निष्प्रभ पत्थर है, ठीक इसी प्रकार उस पक्षी के प्रति निषाद के शर-लक्ष्य से दूसरों की उन्नति जरूर हो सकती है, पर व्याध की प्रकृति में परिवर्तन नहीं होता। उसका हृदय पाषाण से भी कठिन है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवत्-चिन्ता के अभाव के कारण स्थूल वस्तु की चिन्ता में लीन हो जाने पर भी वह शान्ति का कारण नहीं बनता। पदार्थगत विज्ञान-चिन्तन तथा हरिनाम में चित्त चाहे जितना रम जाय उससे वास्तविक ध्यान या चिन्ता से गुणी नहीं बना जा सकता।

योग के द्वारा अनन्तदेव की हरि-चिन्ता प्रसिद्ध है। इसके अलावा अन्य विधि जो भी करोगे, वह योग के गन्तव्य पथ का समय-पात (समय नष्ट करना) के अलावा अन्य कुछ नहीं है। इसीलिए योग में नारायण का चिन्तन ही श्रेष्ठ और योगी की सिद्धावस्था में सहायक है।

इस विशुद्ध योग में नारायण-उपलब्धि का अधिकार उत्पन्न होता है, अन्तरदृष्टि परिष्कार रूप में प्रकट होती है, इन्द्रियासक्ति का कूट वन्धन छिन्न हो जाता है तथा मर्म प्रविष्ट वासना की ग्रन्थियाँ शिथिल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हो जाती हैं। चित्त का बहिर्मुख धीरे-धीरे अन्तर्हित होता रहता है, नाना पथों पर भ्रमण करने की इच्छा समाप्त हो जाती है।

शुभवृत्ति द्वारा प्रदर्शित पवित्र पथ का अनुसरण करने से दुर्जय बल दुर्बल हो जाता है। योगी सकामजनित तृप्ति पूर्ण रूप से त्याग देते हैं एवं निष्काम योग-शक्ति के आकर्षण से अनासक्त-वैराग्य-साधन साहाय्य समझने में सक्षम होता है। जब तक साधकत्व शक्ति उत्पन्न नहीं होती तब तक हरि-चिन्ता या ध्यान का गूढ़ तत्त्व समझा नहीं जा सकता, निरवच्छिन्न निबिड़ अन्धकार के अलावा और कुछ दिखाई नहीं देता। उसमें विषम विपद् संकुल मैं-पन की विचित्र लालसा में पृथिवी की घटनाएँ बुद्बुद की भाँति अविश्रान्त रूप से खदबद करती हैं। इस निमित्त योग का विशेष प्रयोजन है। वास्तविक ध्यान राज्य में, फिर वह भयानक अन्धकार ही अकृत्रिम बन्धु या सहायक है। अगर मैं-पन के आधिपत्य का विनाश किया जाय तब और कुछ नहीं रहता। एकमात्र अन्धकार ही गति, स्थिति का उपाय है।

चित्त उस वक्त उस अन्धकार को ठेलकर कहाँ जायगा ? फलतः अकेला, भय से आक्रान्त होकर स्वभावतः मधुसूदन को बिना पकड़े अन्य उपाय क्या है ? लेकिन नाम की सहायता साधक के लिए भयंकर परीक्षा है, कारण उपायहीन होने से ही उसकी नाम के प्रति रुचि है, इसलिए विश्वास, व्याकुलता दृढ़ या दुर्बल, इसे प्रभु क्यों नहीं जानेंगे ?

सामने चाहे जितनी भी परीक्षाएँ आयें, वे सब विश्वास के ज्वलन्त तेज में खड़ी नहीं हो सकतीं। वे उस निबिड़ अन्धकार के भीतर कृष्णप्रभा तड़ित् ज्योति की भाँति दिखाई देती हैं। इसी आशा में दीप जल रहे हैं, यही योग का परिणाम है और है साधकत्व का फल।

"जैसा नागरिका चित् गागरी में"—कहावत के अनुसार भ्रमण में, शयन में, स्वप्न में अविनाशी पुरुषोत्तम का ध्यान या चिन्ता करनी चाहिए। जब तक ज्ञानमय, आत्मास्वरूप श्रीकृष्ण में मन लीन न हो जाय तब तक साधक कृष्णमन्त्र, जप और होमादि द्वारा योगाभ्यास करेगा ही। कर्मफल है या नहीं, इस तरह की संदिग्ध मतिवाले व्यक्ति आप्लुतचित्त के होते हैं। उसे ज्ञानसाधन में असिद्ध अर्थात् अनधिकारी कहना चाहिए। केवल वाक्य द्वारा आत्मज्ञान नहीं होता, कारण जब तक मन स्थिर नहीं होगा तब तक आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसीलिए वेदादि शास्त्रों ने सभी कर्मानुष्ठानों को करने के लिए अनुशासन किया है। श्रीमान् भक्त ······ और उनकी पत्नी कार्य कर रहे हैं, बुरा नहीं है। बीच-बीच आनन्द में गड़बड़ी होगी, कारण हर वक्त चित्तवृत्ति ठीक नहीं रहती, फलतः गड़बड़ी हो जाती है। चिन्ता नहीं है।

उक्त ······ ने भैरवी माता की सेवा के लिए दो रुपये का जो प्रबन्ध किया है, उससे एक कुमारी या एक भैरवी का कैसे होगा ? अगर देना है तो पाँच रुपये से कम देने पर एक कुमारी या भैरवी का नहीं चलेगा। अतएव उससे कहना भैरवी के लिए मासिक खुराकी देनी पड़ेगी। अन्यथा आवश्यकता नहीं है। उसे कमी किस बात की है ? उसका नाम आश्रम के प्रस्तर खाते में ले लिया गया है। किसी विषय की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है—उसे कह देना।

उसके माघ-फाल्गुन के लिए चार रुपये मिल गये हैं। भेजने का खर्च उससे क्यों नहीं लेते—उसके पुण्य का नुकसान क्यों करते हो ? अन्य विषयों के बारे में बाद में लिखूंगा। ······ के विषय अनेक हैं। अभी उसे योग के सम्बन्ध में प्रयोग मत करना। समय नहीं हुआ है। उसकी बीमारी के बारे में विचार किया जायगा। कर्म करने के बारे में किसी को क्षमा मत करना। जैसे तेल बिना प्रदीप का दीपत्व नहीं रहता, उसी प्रकार बिना कर्म के शरीर का शरीरत्व नहीं रह पाता। अतएव जितने दिनों तक कर्म की अविश्रांत गति रोध न हो, उतने दिनों तक ब्रह्मोपासना कैसे सम्भव है ? इसीलिए गुरुदेव पहले शम-दमादि गुणों को प्रबोधित कर बाद में शुद्ध निर्मल आकाशवत् सर्वव्यापी ब्रह्म का बोध करायेंगे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राम ठाकुर की कहानी और कौशिक आश्रम सहित ज्ञानगंज का विवरण

वह आज बहुत दिनों की कहानी है। उन दिनों मैं बनारस में ६३ नं० मिश्रपोखरा के मकान में रहता था और प्रतिदिन शाम के समय दैनिक कार्य की समाप्ति के बाद गंगा की स्निग्ध वायु सेवन करने के लिए कुछ समय मित्र-मण्डली में बैठकर अध्यात्म चर्चा करने के लिए नियमित रूप से गंगाघाट पर जाया करता था। आम तौर पर प्रयाग घाट पर बैठता था, कभी-कभी दशाश्वमेध या दरभंगा घाट पर भी बैठता था।

एक दिन, शायद १९२३ सन् की ९ फरवरी होगी, हम परस्पर सत्संग कर रहे थे, ठीक इसी समय हम लोगों के मित्र (मैमनसिंह सुषंग निवासी) महिमचन्द्र सिंह महाशय ने साधु महात्माओं की चर्चा के बीच यह समाचार दिया कि सम्प्रति काशी में राम ठाकुर नामक एक उत्कृष्ट साधु का आगमन हुआ है।[1] उन्होंने कहा—साधु सम्भवतः कुछ दिन काशी में रहेंगे। इस समय चिन्तामणि गणेश (काशी का एक मुहल्ला) के निकट एक सज्जन के मकान में ठहरे हैं। इसके बाद वे साधु की शतमुख से प्रशंसा करने लगे। उनकी जबानी साधु की प्रशंसा सुनकर हम लोगों में से अनेकों की इच्छा हुई कि उसी समय उनका दर्शन करने जायँ।

महिम बाबू को अगुआ बनाकर और भी २-३ सज्जनों को साथ ले हम लोग साधु दर्शन के लिए चिन्तामणि गणेश मुहल्ले में आये। वहाँ जाकर हम लोगों ने जो दृश्य देखा, उससे हम सब मुग्ध हो उठे। हम लोगों ने देखा—अन्दाजन ६०-६५ वर्ष के एक वृद्ध महात्मा, गले में तुलसी की माला, तन पर हथकरघे की सफेद चादर है, मुँह पर विनयपूर्ण मधुर

१. वास्तव में १९ फरवरी, सन् १९१८ ई० को शाम के वक्त मैंने सर्वप्रथम मित्रवर श्री विमला मुखोपाध्याय के निकट इन महात्मा की बात सुनी थी। वे तब काशी के मानसरोवर मुहल्ले में कुछ दिनों के लिए ठहरे थे। किन्तु इतने दिनों तक उनके दर्शनों का सुयोग नही मिला था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हास्य, धीर-स्थिर सौम्यभाव से आसन पर बैठे हैं। हम लोगों को देखते ही, हम सब अपरिचित थे, उन्होंने नम्रतापूर्वक हमें प्रणाम कर सादर आह्वान किया।

हम लोग यथास्थान बैठकर उनके साथ बातचीत में लग गये। काफी देर तक बातचीत करने के बाद हम यह समझ गये कि ये वास्तव में एक महापुरुष हैं।

जिस दिन सर्वप्रथम हम लोग ठाकुर का दर्शन करने गये थे, उसके चौथे दिन शिवरात्रि महोत्सव का अनुष्ठान था। उस दिन सायंकाल तक हम लोगों ने विभिन्न साधु-सज्जनों का दर्शन किया। उस दिन हम सभी व्रती थे, इसलिए बहुत देर तक निश्चित रूप में ठाकुर महाशय का संगसुख प्राप्त कर सके थे। इस तरह वे जितने दिनों तक काशी में रहे, बीच-बीच में उनके निकट जाते थे एवं उनके साथ सत्प्रसंग की चर्चा करते थे। वे हर साल काशी आते थे, कभी-कभी वर्ष में दो-तीन बार आते थे। एक ही स्थान में रहते थे, ऐसी बात नहीं थी। भिन्न-भिन्न भक्तों के घरों में विभिन्न समयों में ठहरते थे। कभी-कभी धर्मशालाओं में भी ठहरते थे। मानसरोवर, हाड़ारबाग, चिन्तामणि गणेश, नारद-घाट, कोदई चौकी, पातालेश्वर आदि अनेक स्थानों में उनके दर्शन किये हैं एवं स्वर्गीय महेशचन्द्र भट्टाचार्य की हरसुन्दरी धर्मशाला स्थापित होने पर कभी-कभी वे वहाँ आकर ठहरते थे।

उनके जीवन की धारा अद्भुत थी। भोजन एक प्रकार से नहीं था, यह कहा जा सकता है जबकि शरीर इतना कर्मठ था कि उनके साथ पैदल चलना कठिन था। कभी-कभी हम लोग शाम के वक्त नाव से घूमने निकलते तो उन्हें साथ ले जाते थे। उस वक्त देर तक निश्चिन्त भाव से गंगा वक्ष पर गम्भीर तत्त्वों की चर्चा होती थी।

उनका जीवन अलौकिक रहस्यमय था। वे स्वयं अपने पूर्व जीवन की बहुत सी बातें प्रसंगवश कहा करते थे। उनके जीवन की अभिज्ञता इतनी विचित्र थी कि उस पर अधिकतर साधारण लोगों का विश्वास होना कठिन था। उनके हिमालय में रहते समय एवं अन्यान्य स्थानों में जितनी अलौकिक घटनाएँ हुई थीं, उन सभी के बारे में ठीक-ठीक विवरण देना संभव नहीं है। इन घटनाओं का विवरण आम लोगों के सामने प्रकाशित करना, उनकी इच्छा के विरुद्ध था, यहाँ तक कि उनका

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवन-चरित्र लिखकर कोई जनसाधारण के सामने प्रचार करे, इसे भी वे पसन्द नहीं करते थे। भक्त लोगों में से यदि कोई ऐसी इच्छा प्रकट करता तो वे स्वयं ही उसमें बाधा देते थे।

उनके गुरुदेव की कथा जिसे मैं उनके संसर्ग से क्रमशः जान सका था, अत्यन्त अलौकिक है।

जब पहली बार ठाकुर महाशय के साथ मेरा परिचय हुआ, उसके कुछ दिनों बाद अन्य सूत्र से कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापक स्वर्गीय प्रभातचन्द्र चक्रवर्ती के साथ परिचय हुआ। वे ठाकुर महाशय के अनन्य भक्त थे एवं मेरे पास भी अन्तरंग मित्र की भाँति आते-जाते थे। इनके साथ ठाकुर के बारे में अनेक विषयों पर चर्चा हुई है। ठाकुर की जीवनी और उपदेश आदि लिखकर रखने का मैंने अनेक बार उनसे अनुरोध किया था। किन्तु उन्हें लिखने का सुयोग मिला था या नहीं, यह मैं नहीं जानता। "भारतेर साधन" पत्रिका में जो कुछ प्रकाशित हुआ था; वह सामान्य था एवं आगे फिर वह भी प्रकाशित नहीं हुआ।

मैं सन् १९११-१२ ई० में काशी के बंगाली टोला में रहते हुए क्वींस कालेज में एम० ए० का विद्यार्थी था। उन दिनों मैं काशी के "बंग साहित्य समाज" नामक पुस्तकालय में अक्सर जाया करता था। गोकि "बंग साहित्य समाज' बंगीय साहित्य परिषद् की एक प्राचीन शाखा मात्र था। किन्तु वास्तविक क्षेत्र में 'बंग साहित्य समाज' बंगीय साहित्य परिषद् से अधिक प्राचीन था। इस पुस्तकालय में 'पलासी का युद्ध' के प्रसिद्ध लेखक नवीनचन्द्र सेन की 'आमार जीवन' नामक आत्मकथा पुस्तक प्राप्त हुई थी। इस मनोरम ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड में लेखक ने अपनी आत्मजीवनी की चर्चा में "प्रतारक ना प्रवंचक" (प्रतारक या प्रवंचक) नामक अध्याय में श्री राम ठाकुर की अद्भुत जीवन कथा का उल्लेख किया था।

एक कहानी अनेक लोगों की जबानी, अन्त में राम ठाकुर के स्वयं के मुँह सुनी थी। उस वर्ष शिव चतुर्दशी के दिन चन्द्रनाथ में वे मिलेंगे, अपने गुरुदेव से वादा किया था। राम ठाकुर ने छुट्टी के लिए दरख्वास्त दी थी, किन्तु एक्जीक्युटिव इंजीनियर मुआइना करने आनेवाले हैं, इसलिए ओवरसियर ने छुट्टी मंजूर नहीं की। शिव चतुर्दशी के दिन सबेरे राम ठाकुर बड़े दुःख के साथ बैठे थे। गुरुदेव ने क्यों उन्हें दर्शन से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वंचित किया, यही सोच रहे थे। ठीक इसी समय तार आया कि साहब नहीं आ रहे हैं। उनकी छुट्टी मंजूर हो गयी। राम ठाकुर आनन्द से विभोर होकर चन्द्रनाथ दर्शन के लिए चल पड़े, किन्तु उत्तेजना से भ्रान्त होकर अचानक वे दक्षिण की ओर न जाकर उत्तर की ओर रवाना हो गये। कुछ दूर जाने पर एक व्यक्ति से उनकी मुलाकात हुई, उसने कहा कि राम ठाकुर चन्द्रनाथ से विपरीत दिशा की ओर जा रहे हैं। तब अपना भ्रम समझकर एक पेड़ के नीचे बड़े सन्तप्त हृदय लेकर बैठ गये। इसी समय एक संन्यासी वहाँ उपस्थित हुआ। क्या राम ठाकुर चन्द्रनाथ जायँगे, उसके इस प्रश्न के उत्तर में राम ठाकुर ने कहा कि मैं भ्रमवश विपरीत दिशा की ओर आ गया हूँ। लिहाजा आज चन्द्रनाथ पहुँचने की सम्भावना नहीं है। संन्यासी ने अपने साथ चलने को कहा और पहाड़ के भीतर प्रवेश कर पहाड़ी मार्ग से, उन्हें शाम के पहले चन्द्रनाथ पहाड़ के नीचे ले आया। वहाँ से चन्द्रनाथ चालीस एवं फेणी से तीस मील दूर था। रात सीताकुण्ड में व्यतीत करने के बाद पुनः उसी तरह अज्ञात रूप में उन्हें साथ लेकर फेणी के उत्तर एक स्थान पर छोड़ गया। वहाँ एक चपरासी से इनकी मुलाकात हुई। उसे देखकर ये छिपने लगे। चपरासी ने उन्हें पकड़ लिया एवं उसके द्वारा हजरत मुहम्मद की एक रात में विश्व भ्रमण की तरह उनकी यह तीर्थ-दर्शन-कहानी पहले पहल प्रचारित हुई। राम ठाकुर देखने में क्षीणकाय, सुन्दर, शान्तमूर्ति, अत्यधिक दबाव बिना डाले किसीके साथ मुलाकात नहीं करते थे, न कोई बातचीत करते थे। पहले ही कह चुका हूँ कि उनकी ८ से १२ साल की उम्र तक सामान्य बंगला की शिक्षा हुई थी। किन्तु धर्म का निगूढ़ तत्त्व, यहाँ तक कि प्रणव का अर्थ भी वे पानी की तरह आसानी से समझा देते थे। मैं उनकी अत्यन्त श्रद्धा करता था। बीच-बीच में काफी अनुरोध कर अपने घर ले आता था एवं हम पति-पत्नी मुग्ध चित्त से उनके द्वारा अद्भुत व्याख्या सुनते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह पेशेवर हिन्दू प्रचारकों की व्याख्या नही थी। एक दिन रानाघाट में प्रातःकाल जागकर स्त्री ने कहा कि वे एक दिन जब कालीघाट काली-दर्शन करने गयी थीं तब वहाँ जाकर सुना कि राम ठाकुर कालीघाट आये हैं। 'हम लोगों से मिलने वे क्यों नहीं आये ?'—उन्होंने पूछा। मैंने कहा— 'यह मैं कैसे बताऊँ ?' हाथ-मुँह धोकर मैं आफिस के कमरे में आया।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सोफा" पर आकर ज्योंही बाहर निगाह गयी तो देखा—सामने बरामदे में, मेरे सामने सिर झुकाये राम ठाकुर खड़े हैं। मुझे लगा जैसे वे आकाश से अवतीर्ण हुए हैं वरना मैं उन्हें आते अवश्य देख पाता। किन्तु कुछ दिनों बाद ठाकुर महाशय से नवीनचन्द्र सेन ने पूछा था कि शून्य मार्ग में कोई मनुष्य यातायात कर सकता है?

ठाकुर महाशय ने कहा था—"विद्युत् जिस मार्ग से चलती है, मनुष्य भी उस मार्ग से चलने में सक्षम है। केवल यही नहीं, एक साथ एक ही समय में विभिन्न स्थानों में उपस्थित हुआ जा सकता है।

"ज्ञान देह इस प्रकार की नहीं है, वह मुक्त देह है एवं देखने में विद्युत् के तुल्य उज्ज्वल है। वह संचरण करती है, एक स्थान से अन्य स्थानों में यातायात करती है एवं उसके अवयव हैं। किन्तु उसे समझना अत्यन्त कठिन है। वह एक प्रकार से ज्योतिःस्वरूप है।" नवीन बाबू ने इस तरह की आन्तरिकतापूर्ण चर्चाओं का उल्लेख किया है।

एक बार राम ठाकुर मेरे विशेष अनुरोध पर मेरे घर आये थे। उन दिनों वे प्रायः कुछ खाते नहीं थे, यह कहा जा सकता है। अन्नभोग नहीं लेते थे, फल आदि बहुत कम ग्रहण करते थे। उनका विनय इतना था कि आगन्तुक के हाथ उठने के पहले ही उन्हें प्रणाम करते थे, अभिवादन करने का अवसर तक नहीं देते थे। जब वे काशी आते थे तब मैं उनसे मिलने के लिए प्रतिदिन जाता था। कभी-कभी अचानक वे कहीं चले जाते थे, इस बात को कोई नहीं जानता था। किसी सेवक से पूछने पर जवाब मिलता कि गुरु के आदेश से अचानक बाहर चले गये हैं।

ठाकुर महाशय के गुरु थे—एक दिव्य पुरुष। वे अलौकिक पुरुष नहीं थे। जो लोग उनके अन्तरंग थे, वे कहते थे कि इन महापुरुष का नाम था—अनंगदेव। वे अपनी भक्त मण्डली के साथ आकाश में विचरण करते रहते थे एवं प्रयोजन होने पर भक्त मण्डली के साथ ठाकुर के पास हाजिर हो जाते थे।

सन् १९२३ से १६-१७ वर्ष तक प्रायः ही ठाकुर महाशय के दर्शन मुझे प्राप्त होते रहे। उस समय बातचीत के सिलसिले में जिन तत्त्वों की व्याख्या मैं सुन पाता था, उनमें से कुछ मैं अपनी आलोचना के लिए लिखकर रख लेता था। अपनी नोट बुक से कुछ अंश छाँटकर मैं नीचे प्रका-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शित कर रहा हूँ। आशा है--इससे उनकी चिन्ता प्रणाली और दार्शनिक दृष्टिकोण समझा जा सकेगा।

मन, बुद्धि और प्राण जब एक हो जाते हैं तब बुद्धि न रहने के कारण विचार नहीं रहता। इसीलिए उन्हें पाने पर "मैंने पा लिया है" इस प्रकार का बोध नहीं रहता। चीनी तो चीनी का स्वाद नहीं जानती।

सभी वस्तुएँ गाढ़ी या गहरी होने पर नीली होती हैं। पानी गाढ़ा होने पर नीला होता है। गाढ़ी अग्नि नीली होती है, दोपहर को सूर्य भी वैसा ही होता है, गम्भीर आकाश भी नीला है। प्रदीप का जब निर्वाण (बुझने की तैयारी में) होने लगता है तब एक नील ज्योति दिखाई देती है, वह गम्भीर ज्योति है। उसके चारों ओर एक सुवर्ण ज्योति का घेरा रहता है। उस सुवर्ण ज्योति को गौर कहते हैं—उसके भीतर कृष्ण हैं।

व्याधि या रोग या बाधा ही विकार, अर्थात् आवरण है। जहाँ बाधा नहीं, वहाँ स्वास्थ्य, प्रकृति या स्वभाव है। विकार ही दुःख, स्वभाव ही आनन्द है।

इस देह की तरह अनेक देहों का निर्माण कर नाना स्थानों में विचरण किया जा सकता है—वह सूक्ष्म देह से नहीं। इस स्थूल देह को चतुर्देह कहा जाता है, कारण यह चारों ओर बिखर जाता है, यह विभूति है। एक प्रदीप से जैसे अनेक प्रदीप जलाये जा सकते हैं, ठीक वैसे ही एक देह से अनेक देह का आविर्भाव हो सकता है। मन द्वारा अर्थात् इच्छा-शक्ति के द्वारा देह के अंश बाहर करने पड़ते हैं। ये सब अंश देह से बाहर निकलकर पुनः देह में आकर विलीन हो जाते हैं। अंश देखने में ठीक मूल के अनुरूप होते हैं।

पुरुष माने पौरुष या चेष्टा। उत्तम चेष्टा को पुरुषोत्तम कहते हैं। काशी देह-त्याग का स्थान है—यहाँ देह-त्याग होता है। उत्तरकाशी, मध्यकाशी और दक्षिणकाशी—सभी काशी हैं। प्रथम आदि है, अन्तिम नवीन दक्षिणकाशी, अगस्त्य मुनि जब दक्षिण गये थे तब रचित हुई थी। उसके रचयिता कुमार कार्तिकेय हैं।

सभी आत्माएँ सभी की परिचित हैं। मलिनतावश कोई किसीको पहचान नहीं पाता। पहचानने पर फिर परायापन नहीं रहता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आश्रम की प्रतिष्ठा के समय जिस शक्ति की स्थापना होती है, उसके प्रभाव से हिंसक पशु आश्रम में आकर हिंसा नहीं कर सकते हैं। मैंने यह अपनी आँखों से देखा है।

सत्य = सत्त्व, यही सत्ययुग है। त्रेता = त्राण। त्राण होने पर द्वापर, तब केवल दो रहते हैं—भक्त और भगवान्। भक्त जब भगवान् से भिन्न और कुछ नहीं जानता तब कृष्ण-लीला का प्रकाश होता है। बाद में कलि। उस समय गौर-निताई का प्रकाश होता है।

अद्वैत, नित्यानन्द और गौरांग मूल में एक ही वस्तु हैं। अद्वैत हैं महाविष्णु, जो सभी अवतारों के मूल हैं। नित्यानन्द संकर्षण के स्वरूप हैं। बलराम आदि या जीव आदि के ये उत्स हैं। गौरांग लीला के प्रस्रवण हैं।

काशी में ठीक तरह वास करने पर काशी का ठीक-ठीक व्यापार चिन्ता मात्र ही जाना जा सकता है।

विश्वनाथ—कालपुरुष हैं। ये सात ताराओं की समष्टि हैं। यहाँ हैं मंगला आदि चार गौरियाँ एवं विश्वनाथ, दण्डपाणि और वैकुण्ठेश्वर।

काशी त्रिशूल पर स्थित है। शूल माने दुःख या ताप, यह त्रिपापों के ऊपर है।

गुरु जो बीज देते हैं, उसी बीज के साथ वास करना चाहिए। उसके साथ घर-गृहस्थी करनी चाहिए, उसे प्यार करना चाहिए।

बीज के साथ वस्तुतः गुरु ही जन्म ग्रहण करते हैं। इसलिए छोड़कर जाने का उपाय नहीं है।

गुरु नाव को ठेल देते हैं। बाद में शिष्य को डाँड़ चलाना पड़ता है। अन्यथा केवल गुरु के ठेलने से चलने पर शिष्य को अत्यन्त कष्ट होता है, कारण वह सम्हाल नहीं पाता। स्वयं डाँड़ चलाना चाहिए केवल वेग सम्हालने के लिए, गुरु ने सब दे रखा है, प्रयोजन के अनुसार शिष्य को सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

निरपेक्ष होकर रहना चाहिए, किसी पक्ष में नहीं रहना चाहिए—इसीका नाम प्राण के शून्य का सहवास है।

भोग आता है तो आये, बाधा नहीं देनी चाहिए—अपने-आप कट

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जायगा। काल पूर्ण होने पर 'अवगुंठन' होकर बीज के रूप में परिणत हो जायगा। बाधा देने पर संघर्ष की सृष्टि होती है।

दीक्षा का काल होता है। नारी के रजस्वला होने पर जैसे उसका पति संग आवश्यक है, वैसे शिष्य के भीतर की प्रकृति जब तक रजस्वला नहीं होती है तब तक गुरु उसमें बीज वपन नहीं करते। इस बीज से सृष्टि होती है।

केवल श्वास-प्रश्वास पर लक्ष्य रखने पर ही प्राणायाम, कुम्भक आदि अपने-आप हो जाते हैं।

सुख-दुःख कुछ नहीं है। लड़के-लड़कियाँ जैसे परस्पर खेलते हैं और आपस में झगड़ा-मारपीट करते हैं, कभी रोते हैं, कभी हँसते हैं, कभी हारते हैं, कभी जीतते हैं, किन्तु ज्योंही माँ खाना खाने के लिए बुलाती हैं त्योंही सब खेल छोड़कर चले जाते हैं। माँ के निकट जाकर सभी आनन्दमग्न हो जाते हैं। पूर्ववर्ती खेल के सुख-दुःख सब भूल जाते हैं। यह भी इसी प्रकार का है।

पहले जो आता है, वह भगवान् का होता है, बाकी सब भूतों का।

मैंने सुना है कि ठाकुर महाशय की परम्परा में दीक्षा शब्द का एक विशेष तात्पर्य है। जिसे वास्तव में दीक्षा कहा जा सकता है, वह सभी के लिए सुलभ नहीं थी। जिन्हें दीक्षा प्राप्त होती थी, साथ ही साथ उनकी देह में परिवर्तन होता था। यह भी सुना जाता है कि अनंगदेव स्वयं दीक्षा प्रदान नहीं करते थे, इसका भार ठाकुर महाशय पर था। जब इस प्रकार की दीक्षा का प्रयोजन होता तब ठाकुर महाशय उस वक्त लोगों की निगाहों से दूर रहते थे।

ठाकुर महाशय को बड़े कम उम्र में उनके गुरु का दर्शन प्राप्त हुआ था। बारह वर्ष की उम्र में वे उनके साथी बनकर पैंतीस वर्ष तक हिमालय के विभिन्न सिद्धाश्रमों में लोगों की दृष्टि से अगोचर रहते हुए व्यतीत कर चुके थे।

दीक्षा लाभ के पश्चात् राम ठाकुर का परिव्राजक जीवन प्रारम्भ हुआ था। गुरु के साथ कामाख्याधाम से चल पड़े। पैदल ही दुर्गम अरण्य पथ और पार्वत्य अंचलों को पार करते हुए हिमालय की ओर बढ़ गये। वे गुरुदेव के पीछे-पीछे ऊँचे पर्वत पर से चल रहे थे। अचानक मार्ग में बर्फीला तूफान शुरू हो गया। राम ठाकुर सर्दी से बेहोश हो गये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उस समय अनंगदेव अपने शिष्य को कोख के भीतर प्रवेश कराकर स्वच्छन्द रूप से आगे बढ़ गये। इस बर्फीले तूफान से उन्होंने गुरुदेव द्वारा नवसृष्ट कलेवर के आश्रय में रहते हुए अपनी आत्मरक्षा की।

गुरुदेव राम ठाकुर के भोजन के लिए फल संग्रह करके लाते थे। इस बारे में ठाकुर ने कहा था--"यह फल स्वर्गीय फल जैसे थे। उसे खाते ही मेरी देह और मन में एक दिव्य आनन्द का संचार हुआ था।"

गुरु द्वारा अलौकिक काया निर्माण और उस काया में निवास करने की घटना शिष्य के मन में चिर अंकित हो गयी।

"वे देहधारी होते हुए भी सर्वतोभाव में देहातीत, स्थूल के रूप में कुछ भी नहीं है, देहातीत महासत्ता के रूप में गुरुदेव उनके निकट सदा विराजमान हैं। केवल यही नहीं, पंचभूत उनके नियंत्रणाधीन, शासनाधीन हैं।"

यौगिक और तांत्रिक नाना विभूति लीला प्रदर्शन करते हुए गुरुदेव अपनी स्वरूपसत्ता को अक्सर प्रकट करते रहे। इसके बाद वे उपस्थित हुए कौशिक पर्वत पर।

भ्रमण करते हुए एक दिन वे लोग हिमालय के शिखर स्थित वशिष्ठाश्रम की एक गुफा में आये। गुरुदेव की इच्छा हुई कि इस स्थान पर कुछ दिन विश्राम करेंगे।

अब तक गुरु ही शिष्य का भार वहन करते आये हैं, उसके लिए फल-फूल आहरण करते आये हैं। गुरु का सेवाधिकार शिष्य के भाग्य में अब तक प्राप्त नहीं हुआ था।

फल-मूल की तो दूर की बात है, निरन्तर तुषारापात के कारण सम्पूर्ण अंचल बिलकुल वीरान हो गया है। राम ठाकुर गुफा से बाहर निकले। घूमते-घूमते अचानक विस्मय से उन्होंने देखा--एक अपरूप युगल मूर्ति उनकी ओर प्रसन्न मुद्रा में मुस्कराते हुए देख रही है। राम ठाकुर ने अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ इस युगल मूर्ति को साष्टांग प्रणाम किया। मातृमूर्ति ने परम स्नेह के साथ एक सुस्वादु फल राम ठाकुर के करपुट में रख दिया। दूसरे ही क्षण वे अन्तर्हित हो गये। राम ठाकुर ने गुरुदेव से कहा--"प्रभो, आपके भोग के लिए फल-संग्रह करने के लिए बाहर गया था। भाग्यक्रम से एक दिव्यदर्शना मातृमूर्ति ने यह फल मुझे दिया। कृपा करके इसे आप ग्रहण करें।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरुदेव ने कहा--"वत्स, यह फल तुम्हारा है। पार्वती देवी ने आविर्भूता होकर यह फल तुम्हें दिया है।"

गुरु के निर्देशानुसार राम ठाकुर ने श्रद्धा के साथ उसे खा लिया।

एक दिन गुरुदेव के साथ वे भ्रमण कर रहे थे। अनंगदेव ने पूछा--"राम, अब तुम क्या करोगे ?"

ठाकुर महाशय ने कहा--"मैं कुछ नहीं जानता। आपकी जो इच्छा हो कहें, वही होगा।"

इस उत्तर को सुनकर उन्होंने कहा--"तब मुझे स्पर्श कर यहीं बैठे रहो।" ठाकुर महाशय ने वही किया। गुरु को स्पर्श करने के साथ-साथ उन्हें तन्द्रा आ गयी। इसके बाद आयी समाधि। इस तरह कितना समय व्यतीत हो गया, इसे कोई जान नहीं सका। इसके बाद गुरुदेव ने कहा--"राम, उठो।" इस पुकार पर राम की समाधि भंग हुई। आँखें खोलने पर उन्होंने सामने गुरुदेव को देखा। इसके साथ ही देखा कि न वह देश है और न वह काल (समय)। एक घने जंगल में अकेले बैठे हैं। उनके मुँह पर घनी दाढ़ी और उँगलियों में बड़े-बड़े नाखून हो गये हैं।

अन्त में इस गुफा के भीतर एक विशेष अनुष्ठान अनुष्ठित हुआ। गुरु के आदेश से इस यज्ञाग्नि में पूर्णाहुति देकर राम आप्तकाम हो गये।

गुरु-कृपा से सर्वसिद्धि उनकी करतलगत हुई।

भारतीय साधना की अमृतधारा हिमालय से ही निरन्तर निःसृत होती आयी है। इसके स्तर-स्तर में न जाने कितने तपस्यापूत गिरि गुफाओं में हैं। कितने महायोगी, कितने समाधिवान् तापस यहाँ आत्म-गोपन किये हुए हैं इस सुप्राचीन गिरि अंचल में। रहस्यमय देवभूमि हिमालय के शक्तिधर साधकों का परिचय इस नवीन शिष्य को गुरु देना चाहते हैं।

कितनी नदियाँ, वन, पहाड़, उपत्यकाओं को इन लोगों ने पार किया, इसके बाद हिमालय के पूर्वांचल स्थित दुरधिगम्य सिद्धपीठ में आये। इस स्थान का नाम योगेश्वर आश्रम है। हिमवन्त का तुषार-राज्य यहाँ नहीं है और न तो कोई मन्दिर आदि है। चार प्रस्तर स्तम्भों से घिरे उन्मुक्त प्रान्तर में विराजमान हैं--स्फटिक निर्मित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुषार शुभ्र एक विशाल शिवलिंग। एक अपार्थिव अपरूप ज्योति इस स्फटिक लिंग के चारों ओर से विच्छुरित हो रही है। इस अलौकिक दृश्य को देखकर राम ठाकुर के विस्मय की सीमा नहीं रही।

इस योगेश्वर शिवलिंग की आराधिका एक शक्तिशाली साधिका थीं। जटाजूट मण्डिता, अपरूप रूपलावण्यवती, यह तापसी दिन पर दिन ध्यानस्थ हो, इस ज्योतिर्मय शिवलिंग के सामने बैठी हैं। राम ठाकुर ने इस ध्यानमग्ना साधिका का नाम रखा है—गौरी।

इस पीठस्थली के दिव्य परिवेश में वे पाँच दिनों तक रहे। नित्य सविस्मय वे देखते कि तेरह समवयस्क पहाड़ी लड़कियाँ पहाड़ी के नीचे से पुष्पाभरण से सजकर यहाँ आती हैं, सभी नाचती हैं, गाती हैं और इस प्रकार इस स्थान को मुखरित करती हैं। नृत्य-गीत समाप्त कर शाम के पहले सभी परमानन्द के साथ योगेश्वर शिव और उनकी इस रहस्यमयी साधिका के गले में फूलों की माला पहनाती हैं। बालिकाओं की उम्र बारह-तेरह वर्ष के आसपास है। इसके बाद नीचे उतर जाती हैं।

इस देवस्थान में अपरूप शान्ति और आनन्द विराजित है। "योगेश्वर की तरह ऐसी शान्ति, ऐसी पवित्रता सम्पूर्ण हिमालय में दुर्लभ है।"

भ्रमण करते हुए वे लोग एक बार एक सुरंग के भीतर आये। सूची भेद्य अन्धकार से यह मार्ग समाच्छन्न था। जीव जगत् का कोई अस्तित्व अनुभव नहीं हो रहा था। धीरे-धीरे इस बन्धु अनालोकित पथ पार करने के बाद राम ठाकुर ने देखा—अन्धकार का आवरण क्रमशः स्वच्छतर होता जा रहा है। इसके बाद सामने उद्भासित हो उठी गोधूलि बेला की छवि।

तो क्या सुरंग पथ का अन्तिम भाग सूर्य का आलोक स्पर्श कर रहा है? कुछ देर बाद यह भ्रम दूर हो गया। देखने में आया—कुछ दूरी पर अपरूप महिमा में उपविष्ट हैं एक विशालकाय महापुरुष। तपःसिद्ध देह से जो दिव्यज्योति निरन्तर निकल रही है, उसीके प्रकाश से सुरंग-पथ आलोकित होकर सुरंग-पथ के दक्षिण भाग से उत्तर में पर्वत को भेद कर गया है, ऐसा लगता है।

गुरुदेव ने अस्फुट स्वर में राम ठाकुर से कहा—"इस ब्रह्मविद् महात्मा को प्रणाम कर हम पुनः रवाना होंगे।" कुछ देर बाद सुरंग मार्ग के छोर पर आ गये। मस्तक के ऊपर पुनः निःसीम आकाश का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाविस्तार हो गया। हिमालय की इन सभी अप्राकृत साधना-भूमि में प्रवेश करने का अधिकार सहज ही प्राप्त नहीं होता। राम ठाकुर को यह अधिकार प्राप्त हुआ था, उनके महासमर्थ गुरुदेव की ही कृपा से।

इन दिनों की एक अत्याश्चर्य, अलौकिक अभिज्ञता की कहानी ठाकुर महाशय ने सुनाई थी। पर्वतीय अंचल के एक गहन अरण्य में उस बार वे पहुँचे थे। सामने एक प्राचीन गुफा थी। इस गुफा के सामने धूनी जलाकर एक अत्यन्त वृद्ध विशाल कायवाले महापुरुष विराजमान थे।

गुरुदेव ने राम से कहा—"ये महात्मा हैं एक देवकल्प महासाधक। आपकी देह अत्यन्त प्राचीन है। अनेक वर्षों से यहाँ बैठे आप साधना कर रहे हैं। इस बार आपने कायाकल्प करने का संकल्प किया है। बहु पुण्यबल से यह अलौकिक अनुष्ठान देखने का सुयोग हमें प्राप्त हुआ है। महात्माजी की धूनी से कुछ दूर रहकर इस अपरूप दृश्य को देख लो।"

योगासन में उपविष्ट महापुरुष के मुख सुना जा रहा है मन्त्रों का गुंजार। धूनी की अग्नि में प्रदत्त हो रही है आहुति और रह-रहकर अग्नि-शिखा धक-धक कर जल रही है।

कुछ देर बाद वहाँ एक अतिकाय नागराज का उदय हुआ। महासर्प ने धूनी की अग्नि की कई बार परिक्रमा की। इसके बाद महापुरुष के सामने आकर नतशिर हो गया।

राम ठाकुर ने विस्मय के साथ देखा कि महापुरुष उस सर्प को पकड़कर कुण्डली बना रहे हैं। बाद में उस सर्प को जलती हुई आग में फेंक दिया।

सर्प की देह अभी पूर्ण रूप से जलकर समाप्त नहीं हुई थी। उसे चिमटे से उठाने पर देखा गया कि अर्द्धदग्ध गलित मांसपिण्ड है।

महापुरुष ने उसके कई पिण्ड बनाये।

अब प्रारम्भ हुई उनकी अभिनव होमक्रिया।

धूनी की अग्नि अभी तक उसी तरह प्रज्वलित है। मन्त्रोच्चार के साथ-साथ सर्प देह के पिण्ड की आहुति दे रहे हैं। अन्तिम पिण्ड को निर्विकार रूप से अपने मुंह में डाल लिया।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्प देह को भक्षण करते ही वृद्ध तापस अपने आसन पर लुढ़क गये। स्पन्दन-हीन, नीरव निश्चल शरीर को देखकर ऐसा नहीं लगता था कि उसमें प्राण के चिह्न हैं। थोड़ी देर बाद देखा गया कि देह क्रमशः स्फीत होती जा रही है। यह स्फीति क्रमशः बढ़ती गयी और बड़े जोर की आवाज के साथ विदीर्ण हो गयी, अभ्यन्तर से प्रकट हुई एक तरुण तापस मूर्ति।

विगत प्राण, महापुरुष की देह उस वक्त एक ओर निस्पन्द स्थिति में पड़ी थी। नवसृष्ट तरुण साधक ने उसे उठाकर जलती हुई धूनी में फेंक दिया।

इसके बाद लोगों ने देखा— वृद्ध तापस के परित्यक्त आसन, चिमटा और कमण्डल को लेकर तरुण साधक अरण्य के भीतर अन्तर्हित हो गया।

इसके बाद वे कौशिकी पर्वत पर आये। इस पर्वत की गोद में विधृत (रक्षित) है एक रहस्यमय आश्रम। मेरे विचार से यह आश्रम मेरे गुरुदेव के ज्ञानगंज की तरह कोई आश्रम है। आप्तकाम योगी और उच्चकोटि के साधकों का स्पर्शपूत यह स्थान है। ऊर्ध्व की ओर आकाश के हृदय तरंगित हो रहे हैं, तुषार मण्डित शुभ्र पर्वत श्रेणियाँ और नीचे तुषार एवं शैत्ययुक्त एक शिलामय पवित्र आश्रम है। सुदूर नीचे से तीव्र गति से बह रही है क्षीणकाय स्रोतस्विनी।

अब तक केवल कौपीन पहने हिमालय के विभिन्न अंचलों में भ्रमण करते रहे और अब इस पवित्र कौशिकी आश्रम के प्रवेश द्वार पर उस परिधेय को भी उतार देना पड़ा। बिलकुल उलंग रूप में जाना पड़ा।

वहाँ से कौशिक पर्वतमाला दिखाई दे रही थी। चारों ओर बरफ से ढकी हुई। किन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि गुफा के भीतर बरफ नहीं है।

यहाँ का माहात्म्य देखकर राम ठाकुर एकदम अवाक् रह गये। समग्र आश्रम में मृत्तिका का लेशमात्र नहीं है, चारों ओर शिलाएँ हैं। किन्तु आश्चर्य की बात है, यहाँ के शिलाखण्डों का भेदन कर नाना श्रेणी के अजस्र लता-गुल्म उत्पन्न हुए हैं। प्रचुर मात्रा में पैदा हो रहे हैं नाना प्रकार के सुस्वादु फल, कन्दजातीय खाद्यों का यहाँ कोई अभाव नहीं है।

आश्रम-गुफा के प्रशस्त कक्ष में योगी पुरुषों का एक दल पंक्तिवार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बैठा है। सभी की आँखें बन्द हैं, निस्पन्द, समाधिस्थ। अचानक निगाह पड़ने पर लगता है जैसे प्राचीन युग के प्रस्तरीभूत पंक्तिवार मानव देह हैं।

किसी-किसीकी जटा खिसककर कन्धे पर गिर गयी है। वे लोग इतने दीर्घकाय हैं कि उनके बैठे रहने पर भी राम ठाकुर उनके मस्तक तक अपना हाथ उठा नहीं पा रहे थे। बगल में जाकर इन्हें माला पहनायी गयी थी। उनके मुखमण्डल अति बृहत् थे—चक्षुद्वय चमड़े से आवृत था और अन्दाजन एक बालिश्त भीतर घुसा हुआ था। उनके बृहत् नेत्र-गोलक अंगारे की तरह चमक रहे थे। मुखमण्डल का लोहित्य जीवन-चिह्न के रूप में विद्यमान था। वे लोग कितने युग-युगान्तर से एकासन में उपविष्ट हैं, इसका परिमाण नहीं है।

ठाकुर ने कहा है—"काया परिवर्तन कर वे लोग जीवित नहीं हैं—अगर वे ऐसा करते तो उनकी देह नवीनाकार धारण करती। उनके शरीर ही तपोबल से बिलकुल चैतन्यमय हो गये हैं—उनका देहपात नहीं होगा।"

इन्हीं दिनों गुरुदेव अनंगस्वामी कुछ दिनों के लिए कहीं अन्तर्हित हो गये। जाने के पूर्व निर्देश दे गये—"कुछ दिनों तक तुम इन महात्माओं के सान्निध्य में रहो। मन-प्राण से इनकी सेवा करो। इनकी कृपा प्राप्त करने पर सर्व अभीष्ट पूर्ण होगा।"

राम ठाकुर ने इन योगियों की सेवा में आत्मनियोग किया। नित्य इनके सामने फल-मूल रखने लगे। भक्त प्राण का यह नैवेद्य एक दिन भी उपेक्षित नहीं हुआ। महात्मागण कृपा करके इनमें से कुछ भोजन ग्रहण करते थे। राम ठाकुर कौशिकी आश्रम में इन देवप्रतिम तापसों के सान्निध्य में रहने लगे। इसके बाद जब गुरुदेव अपने अज्ञातवास से वापस आये तब पुनः परिव्राजन करने के लिए चल पड़े।

हिमालय की इन सभी अप्राकृत साधना-भूमि में प्रवेश करने का अधिकार सहजलभ्य नहीं है। आश्रम के तेरह आसनों पर दस महापुरुष युगों से तपस्यारत हैं। इनके शरीर अत्यन्त दीर्घ हैं, लगता है जैसे वे पत्थर की मूर्ति हैं। केवल चेहरे की लालिमा देखने पर लगता है कि वे लोग सजीव हैं। अक्षिगोलक लम्बित चर्म से आवृत हैं। उनका शरीर दीर्घ तपस्या में चिन्मयता प्राप्त कर चुका है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कौशिक पर्वत के बाद कौशिक आश्रम नामक एक प्रसिद्ध रमणीय स्थान विद्यमान है। इसका आकार पद्मफूल की तरह है, आधे मील तक विस्तृत। इसकी जमीन शिलामय है। इसके नीचे मन्दाकिनी नामक एक वेगवती नदी बहती है। इस नदी को पार करना अत्यन्त कठिन है। शेष तीन खाली आसनों के महापुरुष जगत् के कल्याण के लिए निम्न भूमि में बिचरण कर रहे हैं।

ये तेरह आसन इस तरह रखे हुए हैं कि व्यवधान के कारण इस पर बैठे व्यक्तिगण एक-दूसरे को देख नहीं पाते। प्रथम दस आसनों पर बैठे महापुरुषों को राम ठाकुर देख पा रहे थे – अचल, अटल और स्पन्दनहीन, दोनों हाथ नीचे झुकाये हुए। हाथ तथा शरीर के अन्य अंगों के चमड़े पत्थर की भाँति कर्कश एवं जगह-जगह फट गये हैं।

शिलामय आश्रम में शिलाओं का भेदन कर नाना प्रकार के फूल और फलों के पौधे विराजमान हैं। ठाकुर ने पाँच प्रकार के फलों का वर्णन किया था।

१. एक प्रकार आम जैसा फल। गुठली काफी छोटी। लताओं में पैदा होता है, ठीक आम नहीं। २. लतावाले पौधे में ही बेल की तरह का एक फल। ३. छोटे-छोटे केले के पेड़ में केला फलता है। ४. छोटे-छोटे एक प्रकार के पीले फल, काफी मीठे और स्निग्ध। ५. आलू की तरह का एक प्रकार का कन्द जो काफी पैदा होता है। अगर इनका उपयोग काफी किया जाय तो भी इनकी कमी नहीं होती।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में राम ठाकुर से कौशिकी आश्रम कहाँ है, पूछा था।

उन्होंने बताया—इस आश्रम से मानस सरोवर काफी दूर है।

मैंने कहा—मानस सरोवर तो अनेक तीर्थयात्री जाते हैं, किन्तु किसी-को इस आश्रम का पता नहीं लगा।

इस प्रश्न के उत्तर में ठाकुर महाशय ने कहा—दिव्य आश्रम सहज ही दिखाई नहीं देते। केवल योगसिद्ध और उनके अनुग्रहप्राप्त व्यक्ति ही ऐसे स्थानों का सन्धान प्राप्त करते हैं। मन की सारी आसक्तियाँ, शरीर के सभी आवरणों को छोड़कर वहाँ जाना पड़ता है। हम लोग तो उलंग होकर वहाँ गये थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्धभूमि

जो लोग भारतीय आध्यात्मिक साधना से परिचित हैं, वे यह जानते हैं कि अन्त में साधना का लक्ष्य पूर्णत्व प्राप्त करने पर भी ऊपर से विभिन्न प्रकार के हैं, ऐसा लगता है। तदनुसार कोई ज्ञान अथवा योग के मार्ग पर अग्रसर होकर जीवन्मुक्ति को साधना का लक्ष्य समझते हैं। जीवन्मुक्ति के बाद देहान्त में परामुक्ति चरम लक्ष्य होता है। परामुक्ति विभिन्न प्रकार से नाना साधकों की दृष्टि में प्रतिभात होती है। कुछ लोग सोचते हैं कि साधना के बाद सिद्धावस्था प्राप्त करना मानव-जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। इसीलिए साधना में पूर्णताप्राप्त सिद्ध महापुरुषों के प्रति हमारे देश के आबाल-वृद्ध-वनिता सभी स्वाभाविक श्रद्धा करते हैं। प्राचीनकाल के चौरासी सिद्ध पुरुषों के नाम और विवरण मिलते हैं। यह एक विशेष समय की बात है। इसके अलावा विभिन्न सम्प्रदायों में, विभिन्न युगों में भिन्न-भिन्न सिद्ध पुरुषों का उदय हुआ है, इसकी जानकारी हमें है। ये अत्यन्त शक्तिशाली महापुरुष थे। जड़, जगत् और चिन्मय भूमि के अन्तराल में दोनों के सेतु या संयोजक के रूप में ये लोग विद्यमान हैं।

वर्तमान निबन्ध में मैं सिद्ध पुरुषों के बारे में कुछ न कहकर सिद्ध-भूमि की बातें संक्षेप में कुछ बताऊँगा। 'सिद्धभूमि' शब्द अनेक लोगों के निकट शायद अपरिचित-सा लग सकता है। कारण, अनेक लोग प्रश्न कर सकते हैं—मनुष्य सिद्ध हो सकता है, किन्तु भूमि कैसे सिद्ध हो सकती है ? इस प्रश्न की मीमांसा करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि 'सिद्ध होना' कहने का वास्तविक अर्थ क्या है ? दुःख का विषय है कि अनेक लोगों की इस सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा नहीं है। इसीलिए सिद्धभूमि के सम्बन्ध में रहस्य-विज्ञान बताने के पूर्व सिद्धा-वस्था के बारे में एक स्पष्ट धारणा बना लेना आवश्यक समझता हूँ।

आत्मा और देह इन दो शब्दों से हम सब परिचित हैं। हम यह जानते हैं कि आत्मा चैतन्यस्वरूप, नित्य विभु एवं शुद्ध है, किन्तु देह मायिक होने के कारण अनित्य, परिवर्तनशील, विकारग्रस्त एवं मलिन है। देह साधारणतया पांचभौतिक उपादानों से निर्मित पिण्ड विशेष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है—इसे सभी लोग जानते हैं। अवश्य ही यह स्थूलदेह की बात है। यह बिलकुल सत्य है। किन्तु स्थूल के अलावा सूक्ष्मदेह भी तो है। यह सूक्ष्मदेह स्थूल से पृथक् होने पर भी शुद्ध और नित्य नहीं है। सूक्ष्मदेह एवं स्थूलदेह दोनों के अतीत कारणदेह के सम्बन्ध में शास्त्रों में पर्याप्त सन्धान मिलते हैं। कारणदेह की तुलना में सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही कार्य हैं। अनेक लोग सूक्ष्मदेह को सप्तदश अवयवसम्पन्न लिंग शरीर के रूप में स्वीकार करते हैं। कोई-कोई इसे प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोषों के समष्टि रूप में वर्णन करते हैं। यह केवल दृष्टिभेद की बात है। मृत्यु के बाद साधारणतः स्थूलदेह त्यागकर सूक्ष्म या लिंगदेह ही कर्मानुसार लोक-लोकान्तरों में संचरण करती है, अथवा किसी विशिष्ट लोक या स्थान में भोग के लिए नियत काल तक अवस्थान करती है। इसके बाद शेष कर्मफलों को मानवदेह में आकर भोग करती है। इस प्रकार सूक्ष्मदेह के साथ, कारणदेह का सम्बन्ध है, समझना चाहिए। साधारणतः स्थूलदेह की पीठ पर जैसे सूक्ष्मदेह विद्यमान रहते हुए स्थूल को अनुप्राणित करती है, उसी प्रकार सूक्ष्मदेह के पीछे कारण-देह रहते हुए सूक्ष्म को कार्यक्षम बनाती है। उपयुक्त अवसर आने पर सूक्ष्म से कारणदेह पृथक् हो जाती है। इसके बाद कारणदेह अवस्थानुसार पुनः सूक्ष्म के साथ युक्त हो सकती है और युक्त नहीं भी हो सकती है। इस अवस्था की विचित्रता असंख्य है। किन्तु यह सब देह मायिक है। साधारणतः अधिकतर लोगों का विश्वास है कि कारणदेह के बाद अन्य देह नहीं है। एक दृष्टि से नहीं है, यह बात पूर्णतः सत्य है। किन्तु वास्तव में कारणदेह के बाद भी महाकारण देह है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण जड़देह एवं महाकारण और जड़देह। किन्तु इनमें पार्थक्य यह है कि स्थूलादि देहत्रय अशुद्ध त्रिगुणात्मक है, पर महाकारणदेह जड़ होने पर भी अशुद्ध नहीं है। यह विशुद्ध सत्त्वात्मक है। इसमें रजोगुण और तमोगुण का स्पर्श नहीं रहता।

यह सुनकर लोगों को आश्चर्य होगा कि पूर्ण सत्य की ओर अग्रसर होते समय योगियों ने प्रत्यक्ष किया है कि महाकारण देह भी देह का पर्यवसान नहीं है। महाकारण देह के बाद फिर साकार सत्ता नहीं रह सकती—यह सत्य नहीं है, क्योंकि चिन्मय देह अचित् स्पर्शरहित है और एक हिसाब से वह महाकारण देह के बाद की है; पर साधारण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगी चिन्मय देह तक अग्रसर नहीं हो पाता, इसे कहने की आवश्यकता नहीं है। चित् किस प्रकार से देह के रूप में प्रतिभासमान होती है अथवा देह किस प्रकार चिन्मयत्व प्राप्त करती है, यह योग-साधना का गहरा रहस्य है।

सन्तों का कहना है कि यह जो चिन्मय देह है, यदि यह केवल कैवल्यात्मक होती है तो इसकी भी एक परावस्था है। उस अवस्था को वे 'हंसावस्था' कहते हैं। अवश्य ही यह शब्द सम्प्रदाय विशेष का एक परिभाषा मात्र है। पर इसका तात्पर्य यह है कि पूर्ण सत्य को तत्त्वरूप में विभक्त करने पर तत्त्व और तत्त्वातीत रूप में दो विभाग पाये जाते हैं। तत्त्व से मतलब चित्, अचित् दोनों समझा जाता है। फलतः चिन्मय देह जिस प्रकार तात्त्विक देह है, जड़ देह भी उसी प्रकार तात्त्विक देह है। जड़ देह भी शुद्ध और अशुद्ध के भेद से दो प्रकार की हैं—यह पहले कहा जा चुका है। शुद्ध जड़ देह ही महाकारण देह का नामान्तर है। अशुद्ध जड़ देह कारण और कार्यभेद से द्विविध है। कार्यदेह सूक्ष्म और स्थूलभेद से द्विविध है।

पूर्वोक्त विश्लेषण से यह समझ में आता है कि पूर्ववर्णित चिन्मय देह तक सभी देह तात्त्विक देह हैं। किन्तु जिस देह में शुद्ध तत्त्व और अशुद्ध तत्त्वों का तादात्म्य सिद्ध होता है, मगर जो तत्त्वातीत आत्म-स्वरूप के साथ अभिन्न है, वही हंसस्वरूप या हंसदेह है। इसमें सब कुछ है—शुद्ध है, अशुद्ध भी है, अचित् भी है, चित् भी है, सभी तत्त्व हैं, फिर भी तत्त्वातीत भी है। यही पूर्ण है। यह देह होते हुए भी आत्मा है और आत्मा होते हुए भी देह है। तत्त्वरूप में यह देह है और तत्त्वातीत रूप में यही आत्मा है। इस अवस्था की प्राप्ति का नाम 'देह-साधना' है।

पहले जो आलोचना की गयी है, उससे यह समझ में आता है कि एक हिसाब से कैवल्य को देहरूप में परिगणित किया जा सकता है और किया भी जाता है। जिस दृष्टि से स्थिति, स्थूल, सूक्ष्मादि देह से मुक्ता-वस्था होती है, वह ठीक है। किन्तु दृष्टिभंगी के परिवर्तन से कैवल्य-देह के नाम की भी सार्थकता है। किसी-किसी वैष्णव सम्प्रदाय में स्वरूपदेह का वर्णन मिलता है। वास्तव में वह भी सत्य है; क्योंकि उस दृष्टि से स्वरूप जिस प्रकार सच्चिदानन्द रूप में गृहीत होता है, उसी प्र कार स्वरूपदेह भी तद्रूप गृहीत होती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योग-साधना-मार्ग के वैचित्र्य में ऐक्य का आविष्कार पूर्णता के लिए अत्यन्त आवश्यक है—'आविष्कार' वाली बात इसलिए कही गयी कि ऐक्य पहले से ही वहाँ है। आवरण से आच्छन्न रहने के कारण वह अपने निकट प्रकाशमान नहीं होता। जब क्रमशः यह सब आवरण हट जाते हैं तब अनावृत अखण्ड परम सत्ता आत्मप्रकाश करती है। उस समय वैचित्र्य की प्रतीति नहीं रहती। उसके अन्तराल में स्थित अद्वैत सत्ता स्वतः महाप्रकाश के रूप में, आवरण से मुक्त होकर प्रकट हो जाती है। यह महाप्रकाश 'ज्ञाननेत्र' के रूप में योगी के सामने प्रकाशित होता है तथा योगी को पूर्णत्व के मार्ग की ओर अग्रसर होने में सहायता देता है एवं अन्तकाल में पूर्णत्व में प्रतिष्ठित करता है।

पूर्णत्व कहने का अर्थ केवल प्रकाश नहीं है, यद्यपि मूल में प्रकाश भिन्न स्वरूपतः के अलावा अन्य कुछ नहीं है, तथापि इससे प्रकाश ही समझ में आता है और जो कुछ अभिन्न रूप में प्रकाश द्वारा प्रकाशित होता है, यह वही है। प्रकाश और प्रकाश के साथ अभेद से प्रकाशमान समग्र विश्व ही पूर्ण सत्ता के अन्तर्गत है। पूर्ण का भी पूर्ण अर्थात् परिपूर्ण सत्ता का अर्थ हम यह समझते हैं—महाप्रकाश तथा उसके साथ अभेद सम्बन्ध, भेदाभेद सम्बन्ध एवं भेद सम्बन्ध से स्थित समग्र विश्व है। देश-काल आदि सभी इसीके अन्तर्गत हैं। यही है परिपूर्ण सिद्धावस्था, जिसका नाम है अखण्ड सत्ता।

अब हम सिद्धपुरुष की आलोचना से सिद्धभूमि की आलोचना में अवतरण करेंगे। जिस प्रकार सिद्ध पुरुष चित् और अचित्, कार्य और कारण, शुद्ध और अशुद्ध तथा स्थूल और सूक्ष्म सभी अवस्था में अव्याहत रह सकते हैं और अपना विशिष्ट संरक्षण कर सकते हैं, ठीक यही बातें सिद्धभूमि के बारे में समझनी चाहिए। देहसिद्धि के अतिरिक्त भाव में भूमिसिद्धि की आवश्यकता नहीं होती। कारण देहसिद्ध होने पर ही तदनुरूप भूमि की सिद्धि हो जाती है। देह जिस प्रकार स्थूलाभिमानी पुरुषों के निकट स्थूल में प्रतीत होती है, उसी प्रकार उस देह के अनुरूप भूमि भी तद् अभिमानी के निकट उसी प्रकार की प्रतीत होती है। अर्थात् जो अपनी देह को स्थूल देह रूप में अभिमान करता है, उसके निकट जो जगत् प्रकाशित होता है, वह भी स्थूल जगत् के रूप में वर्णित होने योग्य है। किन्तु जब अभिमानी पुरुष सूक्ष्मदेह पर अभिमान करता है तब उसके निकट समग्र जगत् सूक्ष्मरूप में प्रतीत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होता है। उस वक्त स्थूल अभिमान न रहने के कारण जगत् का प्रतिभास नहीं होता। इस तरह के अभिमानी द्रष्टा जब अपने चिद्रूप में स्थित होते हैं, अपने सूक्ष्मादि अचित् देह का अभिमान जब उसमें नहीं रहता तब स्वयं उसके निकट जगत् भी अचिद्भावविरहित चिद्रूप में ही प्रतिभासमान होता है। यह बातें योगी मात्र के अनुभूत सत्य हैं। किन्तु स्मरण रखना होगा कि इसके मूल में द्रष्टा को एक अवस्था से अवस्थान्तर में संचरण करना पड़ता है। क्योंकि ऐसा न होने पर उसकी दृष्टि के अनुरूप दृश्य जगत् की उपलब्धि नहीं हो सकती। ये सभी अवस्थाएँ परस्पर विच्छिन्न हैं। इसीलिए एक अवस्था के साथ अन्य अवस्था की एकता नहीं है, यहाँ तक कि योगसूत्र भी नहीं है।

इसीलिए इस योगसूत्र तथा चरम ऐक्य का आविष्कार करना महायोगी का लक्ष्य होता है। जब यह परम ऐक्यसूत्र खोज करने के बाद प्राप्त होता है, तब तदनुरूप भाव से समग्र विश्व अभिन्न रूप में आत्मप्रकाश करता है। इस अभिन्न सत्ता में प्रत्येक भूमि की पृथक् सत्ता निलीन रहती है। इसके कारण योगी जब जिस भूमि पर से दृष्टि प्रसारित करेगा तब उस भूमि की दृश्यसत्ता उसके निकट आत्मप्रकाश करेगी। जिस प्रकार योगी को किसी भूमि में अवतरण करना नहीं पड़ता अथवा आरोहण करना नहीं पड़ता, उसी प्रकार उसकी दृश्यभूमि भी अवतरण और आरोहण से निर्मुक्त रूप में द्रष्टा के अनुरूप होकर प्रकाशित होती है। इस साधारण सत्य को हृदयंगम करना आवश्यक है वर्ना सिद्धभूमि का रहस्य समझ में नहीं आयेगा।

सिद्धभूमि के तत्त्व को अच्छी तरह समझने के लिए एक विषय की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। यह है, सृष्टि का रहस्य। साधारण दृष्टि से हम यह सोचते हैं कि बाह्य जगत् मूलतः ज्ञान के बाहर अवस्थित है तथा इन्द्रियादि करण वर्ग के द्वारा इसका संस्रव संघटित होने पर इसकी सत्ता की उपलब्धि प्राप्त होती है। तब हमारा ज्ञान उक्त जगत् के आकार में उपरंजित होता है अथवा उक्त आकार धारण करता है। ज्ञान की निम्नभूमि में यह बात पूर्ण सत्य है। अर्थात् ज्ञान से ज्ञेय पृथक् है। किन्तु योग-मार्ग में अग्रसर होते-होते जब विशुद्ध ज्ञान का अधिकार होता है तब समझ में आता है कि ज्ञान से ज्ञेय पृथक् नहीं है। ज्ञान का ही आकार ज्ञान से पृथक् होकर ज्ञेय के रूप में अज्ञ व्यक्तियों के निकट प्रतीत होता है। ज्ञान और ज्ञेय में ज्ञान सापेक्ष नहीं है, किन्तु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञेय सापेक्ष है। इसके बाद और आगे बढ़ने पर अनुभव किया जा सकता है कि जैसे ज्ञान से ज्ञेय की पृथक् सत्ता नहीं है, वैसे ही ज्ञाता से ज्ञान की पृथक् सत्ता नहीं है। जैसे प्रदीप से आलोक-रश्मि निकलती है, वैसे ही ज्ञाता से ज्ञानरूपी आलोकमाला विकीर्ण होती रहती है। इसीलिए ज्ञेय अन्तर्मुख स्थिति में ज्ञान में लीन रहता है और अन्तर्मुख स्थिति में ज्ञान भी ज्ञाता में लीन हो जाता है। यही ज्ञाता सृष्टि के मूल बीजरूप में विद्यमान रहता है। यह भी जब ज्ञातृत्व-धर्म से मुक्त होकर शुद्ध अवस्था में विद्यमान रहता है तब उसे शाक्त दार्शनिक लोग तुरीय अवस्था कहते हैं। यही त्रिपुटीरहित विशुद्ध विज्ञान की अवस्था है। द्रष्टा की जैसी दृष्टि एवं उसके अन्तर्गत जैसा दृश्य है, वैसा ही भोक्ता जीव के निकट बाह्य सृष्टि के रूप में प्रतिभासमान होता है। अतएव जो द्रष्टा है, वही स्रष्टा। यह सृष्टि द्रष्टा की जिस स्पन्दमात्रा से उद्भूत होती है, तदपेक्षा निम्नमात्रासम्पन्न द्रष्टा के निकट अथवा मायिक प्रमाता के निकट वह बाह्य सृष्टि या भूमिरूप में परिगणित होती है।

हम लोगों का परिचित ब्रह्माण्ड जैसे हिरण्यगर्भ के वैराज अभिमान में अधिष्ठित है, वैसे ही सिद्ध योगी ऋषियों के निज-निज अभिमान में, उनकी दृष्टि और दृश्य रूप में भिन्न-भिन्न भूमि या स्तर विद्यमान हैं। जो कोई व्यक्ति उक्त अभिमान से युक्त और उसके आश्रित है, उसके लिए वे सब भूमियाँ या क्षेत्र दृष्टिगोचर और व्यवहारयोग्य होते हैं—सभी के लिए नहीं। अर्थात् हिरण्यगर्भ के अभिमान का प्रसाररूपी ब्रह्माण्ड जिस प्रकार प्रजावर्ग के निकट बाह्य और सत्यरूप में प्रतीत होता है, उसी प्रकार सभी सिद्ध मुनि-ऋषियों की दृष्टि और अभिमान से विधृत सभी भूमियाँ, उनके संस्पर्शयुक्त व्यक्तियों के निकट बाह्य और सत्य के रूप में अनुभूत होती हैं। इन सभी भूमियों को सिद्धभूमि कहा जाता है। केवल पृथ्वी ही क्यों, ब्रह्माण्ड की खोज करने पर इनका पता (जियोग्राफिकल लोकेशन) पाना असम्भव है, जब कि ये सभी ठीक इस पृथ्वी की तरह व्यवहार-योग्य और सत्य हैं। बौद्ध लोग जिन बुद्ध क्षेत्रों की चर्चा करते हैं, वे सब इसी प्रकार की भूमियाँ हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं।

सिद्धभूमि की आलोचना से यह समझ में आ गया कि सिद्ध आत्मा के इच्छानुसार तथाकथित सिद्धभूमि का आविर्भाव होता है। प्रत्येक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्ध आत्मा से इस प्रकार की भूमि का आविर्भाव होता है—यह नहीं कहा जा सकता। कारण, इसके मूल में है, सिद्ध आत्मा की भूमि सृष्टि विषयक इच्छा और इस इच्छा के मूल में है किसी प्रकार की शुद्ध वासना। शुद्ध वासना होने पर भी अशुद्ध मायिक वासना से पृथक् है। अवश्य ही शुद्ध माया एवं अशुद्ध माया में भेद है—यह सत्य है एवं तदनुसार दोनों की वासना में भी भेद है—यह कहना पड़ेगा। अशुद्ध माया की वासना के मूल में जो कुछ दिखाई देता है, वह व्यक्तिगत अथवा व्यष्टिगत भोगाकांक्षा अथवा मुक्ति की आकांक्षा है। अहंकार और ममकार इस दिशा में अत्यन्त सीमित है। किन्तु जब यह व्यक्तिगत सीमा लंघित होकर एक-एक व्यापक सीमा का आविर्भाव होता है तब उक्त व्यापक सीमा भी पूर्वोक्त परिच्छिन्न सीमा की भाँति घेरे की रचना करती है, जब कि पूर्ववर्ती घेरे के स्वार्थ की तुलना में इस वृहत्तर घेरे का स्वार्थ एक प्रकार से परार्थ के रूप में मानने लायक है। किन्तु इस वृहत्तर सीमा रेखा की तुलना में अधिकतर व्यापक घेरे भी हैं। उसी प्रकार उस क्षेत्र का भी नियामक एक केन्द्र भी है। इस प्रकार इस शुद्ध क्षेत्र का भी जो सर्वापेक्षा व्यापक रूप है, वही सिद्धभूमि का सर्वोत्कृष्ट स्तर है। यह सिद्धभूमि खण्डकाल के राज्यरूप में परिगणित न होने पर भी महाकाल का अतीत नहीं है। इसीलिए श्रेष्ठतम सिद्धभूमि का भी आविर्भाव और तिरोभाव अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रत्येक सिद्धभूमि का देश-काल के अनुसार मान अलग-अलग है। यह सब भूमियाँ महाकाल के अन्तर्गत होने पर भी खण्डकाल की क्रिया से मुक्त हैं। इन भूमियों में आविर्भाव है, तिरोभाव है और अन्तराल में है स्थिति। इस स्थिति में अवान्तर स्थूल कालक्रम अनुभूत नहीं होता। सूक्ष्म क्षणिक-क्रम अवश्य रहता है। क्योंकि ऐसा न होने पर आविर्भाव के बाद चाहे कितना ही समय गुजर क्यों न जाय, तिरोभाव नहीं होता। अतएव यह जान लेना चाहिए कि इन भूमियों में बाह्य दृष्टि के अनुसार स्थिति एक प्रकार से लगभग रहती है। इसीलिए इन भूमियों के देहादि में बाल्य, यौवन, प्रौढ़, वृद्ध इत्यकार अवस्थाभेद लक्षित नहीं होता। अर्थात् देहादि जराविहीन होते हैं। मृत्यु के न रहने पर भी तिरोभाव है एवं संकोच और विकास की क्रिया निरन्तर हो रही है। यहाँ की आत्माएँ जिस देह का आश्रय कर आत्मप्रकाश करती हैं, वह देह उस भूमि के स्थितिकाल तक अर्थात् लाखों वर्ष ठीक एक भाव में रहती हैं,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसमें विकृति नहीं आती। जितने महापुरुष सिद्धि प्राप्त कर आधिकारिक अवस्था प्राप्त करते हैं, वे ही लोग इन सिद्धभूमियों के अधिष्ठाता होते हैं। जिनमें अधिकार वासना नहीं है, उनका सिद्धभूमि में रहना और न रहना बराबर है। अथवा वे लोग सिद्धभूमि के ऊपर रहते हैं। हमारे गुरुदेव तथा उनका संसृष्ट सम्प्रदाय जिसे आसन का कर्म कहा करते थे, उसी प्रकार के कर्म के कारण इस तरह सिद्धभूमि में गति एवं स्थिति प्राप्त होती है। जिनके आसनों के कर्म रहते हैं, वे ही लोग सकल भूमि में स्थान प्राप्त करते हैं। इसके बाद अपने कर्मजनित उत्कर्ष से अपनी स्थिति में उन्नत होते हैं। जिनके आसन-कर्म नहीं रहते, उनके लिए इस प्रकार सिद्धभूमि में प्रवेश तथा भूमि-प्रविष्ट अवस्था में कर्म-सम्पादन करना असम्भव होता है। प्राचीनकाल में बौद्ध लोग इस रहस्य को जानते थे और इसीलिए वे भूमि-प्रविष्ट प्रज्ञा को समाधिजनित प्रज्ञा से अधिक श्रेष्ठ समझते थे। उस समय के हीनयान से महायान के उत्कर्ष का कारण यही था।

विश्व-रचयिता के विधान में सर्वत्र इस प्रकार की सिद्धभूमि की व्यवस्था है। अगर यह व्यवस्था न रहती तो काल के जगत् से मुक्त कराकर, किसीको आश्रय देकर कर्मपथ में पूर्णत्व की ओर अग्रसर होने का सुयोग प्राप्त करना असम्भव होता। इस प्रकार की सिद्धभूमियों के बारे में कहीं-कहीं दिव्यभूमि के रूप में उल्लेख किया गया है। यह मायिक भूमि में भी है और मायातीत महामाया की भूमि में भी है। इन सभी भूमियों के अधिष्ठाता एक हिसाब से सभी सजातीय होने पर भी परस्पर पृथक् हैं। इस पृथक् भाव पर ही उनके अधिकार क्षेत्र में स्थिति निर्भर करती है।

सिद्धभूमि के जो अधिष्ठाता हैं, उनकी दृष्टि साधारणतः बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी अर्थात् दोनों मुखी होती हैं, अथवा केवल बहिर्मुखी है, ऐसा भी हो सकता है, किन्तु वह केवल अन्तर्मुखी है—ऐसा होना सम्भव नहीं है। कारण, अगर उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी हो गयी है तो भूमि किसके आश्रय में प्रकाशित होगी? इसलिए उसकी दृष्टि बहिर्मुखी अथवा बहिर्मुखी होकर आंशिक रूप में अन्तर्मुखी है, यही युक्तिसंगत तथ्य है। मानव-देह में आज्ञाचक्र का जो स्थान है, विश्व-रचना में सिद्धभूमि का उसी प्रकार का स्थान है। आज्ञाचक्र द्विदल तथा बिन्दुस्थान में अवस्थित होने के कारण एक ओर जैसे अधोवर्त्ती प्रदेश में क्रियाशील है,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दूसरी ओर उसी प्रकार सहस्रदल की ओर क्रियाशील है। दिन और रात के अन्तरालवर्त्ती संध्या जैसे मध्यस्थ है, वैसे ही सहस्रदल और षट्-चक्र के अन्तराल में आज्ञाचक्र है, समझना चाहिए। समष्टि-जगत् में सिद्धभूमि भी इसी प्रकार एक ओर जैसे अपूर्ण संसार की ओर अभिमुख है, दूसरी ओर उसी प्रकार पूर्ण की ओर अभिमुख है।

सिद्धभूमि चित्त की एकाग्र भूमि में स्थापित एवं ज्ञानमय है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु यही साधक और योगी का चरम लक्ष्य नहीं है। कारण, एकाग्रता चित्त के विकास की पूर्ण परिणति नहीं है। चित्त एकाग्रता प्राप्त करने के साथ-साथ योगभूमि में जरूर प्रवेश करता है, किन्तु योग का पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए एकाग्रतालब्ध ज्ञान को निरुद्ध करना पड़ता है। ज्ञान अज्ञान का नाश कर अपनी सत्ता की सार्थकता का संपादन करता है। किन्तु अज्ञान के नाश होने के साथ-साथ सत्य का पूर्ण प्रकाश होता है और तब ज्ञान सफलता प्राप्त कर निरुद्ध हो जाता है। इस ज्ञानातीत सत्य का प्रकाश ही योग का वास्तविक लक्षण है। यह सत्य आत्मा स्वयं है एवं यह स्वयंप्रकाश होने के कारण सर्वदा अपने निकट स्वयं प्रकाशवान् रहती है। सिद्धभूमि से बिजली की चमक की तरह इस स्व-प्रकाश से सत्य का साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है।

किन्तु यह मनुष्य के अध्यात्म जीवन का चरम लक्ष्य नहीं है। चरम लक्ष्य है—आत्मस्वरूप में स्थिति प्राप्त करना। आत्मसाक्षात्कार उसका उपाय है, क्योंकि आत्मा के अनावृत स्वरूप का जब तक दर्शन न कर लिया जाय तब तक उसमें स्थितिलाभ कैसे किया जा सकता है? स्वरूप-स्थिति देश-काल के अतीत, यहाँ तक कि महाकाल के भी अतीत है। यह ठीक है कि ज्ञान के राज्य से स्वरूप-स्थिति का आभास मिलता है, किन्तु उसे सत्य के रूप में प्राप्त करने के लिए ज्ञान और अज्ञान दोनों के अतीत होना पड़ता है। ऐसा न होने पर चैतन्य-स्वरूप मातृ-अंक में प्रवेश करने का अवसर प्राप्त नहीं होता। स्वरूप-स्थिति में चित्त निष्क्रिय न होकर—रहने की तरह हो जाता है। ऐसी स्थिति में आत्मा परमशिवरूपी और उसकी शक्ति पराशक्तिरूपा हो जाती है। दोनों में कोई भेद नहीं रहता। यही है—स्वातंत्र्यमय बोध अथवा बोधमय स्वातंत्र्य अवस्था।

आत्मा स्वतंत्र एवं स्वप्रकाश सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसकी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनन्त-शक्ति उसे घेरे हुए है—पराशक्ति उससे अभिन्न है, परात्परशक्ति उसके साथ अभिन्न होते पर भी उससे पृथक् है एवं अपराशक्ति उससे भिन्न या पृथक् है। इन सभी शक्तियों को लेकर वे नित्य लीला में व्यापृत हैं। स्वरूपतः वे निष्क्रिय होने के कारण लीलातीत होने पर भी स्वरूप-शक्ति के प्रभाव से नित्य ही लीलामय हैं। यह लीला अभेद या प्रेम की लीला है, भेदाभेद अथवा जीवशक्ति की लीला एवं भेदमय माया की लीला—सब एक साथ होती है। वे अस्पन्द होकर भी शक्ति के कारण नित्य स्पन्दमय हैं एवं प्रतिक्षण स्पन्दनशील होकर भी सदा कूटस्थ और अस्पन्द हैं।

सिद्धभूमियाँ सिद्धपुरुषों के नाम के अनुसार अथवा अन्य किसी प्रकार के नियम के अधीन में भिन्न-भिन्न नाम और रूप लेकर, श्री भगवान् की विश्व लीला में अपना-अपना काम करती हैं। प्रसिद्ध है कि दत्तात्रेय, अगस्ति, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषिगण अपना-अपना सिद्ध आश्रम स्थापित कर ज्ञान-विज्ञान का प्रचार करते रहे। सभी का एकमात्र उद्देश्य यह था कि कालराज्य के जीव समूह को, किसी प्रकार से भी काल के आवर्त्त से उद्धार करके, शान्ति और आनन्दमय निज धाम में यथासंभव दीर्घकाल तक आश्रय-दान किया जाय। यद्यपि इस महान् कार्य में धर्म की एक सार्थकता देखने में आती है तथापि यह सनातन धर्म, अर्थात् नित्यसिद्ध मानव-धर्म के पूर्ण विकास का क्षेत्र नहीं है। क्योंकि कर्मक्षेत्र काल के राज्य के अलावा अन्यत्र स्थित नहीं रह सकता। इसीलिए सिद्धभूमि में भी अवान्तर विभाग दिखाई देते हैं। कारण कर्मक्षेत्र में कर्मबीज प्राप्त कर प्रारब्धान्त में, खण्डकाल की देह त्यागकर कर्मभूमिमय सिद्धभूमि में आने पर काल-राज्य में अनुष्ठित कर्म के पूर्ण विकास का पथ उन्मुक्त रहता है। अवश्य ही यह सत्य है कि कालराज्य में कर्मों की परिणति क्षिप्रगति से होती है, सिद्ध कर्मभूमि में वह किंचित् विलम्ब से होती है।

किन्तु इसके अलावा भी अन्यान्य प्रकार की सिद्धभूमियाँ हैं। वे सब कर्मभूमियाँ नहीं हैं, इस कारण कर्म की पूर्णता की आकांक्षा अनिवृत्त रह जाती हैं। भावप्रधान, ज्ञानप्रधान तथा इसी प्रकार के अन्यान्य गुण सम्पद विशिष्ट सिद्धभूमियाँ हैं। •

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्धों की भूमि तिब्बत

अति प्राचीन समय से एक संस्कृति अति गुप्त रूप से चली आ रही है। यद्यपि आजकल की ऐतिहासिक आलोचना पद्धति के प्रभाव तथा अन्यान्य कारणों से तिब्बत के बहिरंग रूप का ज्ञान पहले से अधिक मिल रहा है, किन्तु उसका अन्तरंग परिचय बहुत कम लोगों को मिल पाता है। किसी-किसीके मत से तिब्बत शब्द संस्कृत के 'त्रिविष्टप' का ही अपभ्रंश है। यह सब हो या न हो, प्राचीन समय से ही इस देश को स्वर्गिक या दिव्यभूमि के रूप में लोग समझते थे—इसमें सन्देह नहीं है।

तिब्बत की प्राचीन गुप्त संस्कृति जगत् से पूर्णतया अपरिचित है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु इसकी बाह्य रूपरेखा भी बहिर्जगत् को अच्छी तरह से ज्ञात नहीं रही है। प्रायः विदेशी पर्यटकों का इसमें प्रवेश नहीं हो पाता था और स्थान के दुर्गमत्व के कारण विभिन्न देशों से तीर्थयात्री साधारणतः यहाँ आते भी नहीं थे। गुप्तरूप से किसी-किसी-का प्रवेश यहाँ हो जाता था। उन्हीं लोगों के माध्यम से जो कुछ संभव हुआ, तिब्बत के सम्बन्ध में ज्ञान हुआ। इसलिए विदेशी पर्यटकों की दृष्टि में यह निषिद्ध प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

तांत्रिक बौद्धधर्म के अभ्युदय के समय से तिब्बत से भारत का सम्बन्ध कुछ घनिष्ठ हो गया था। अतिश दीपंकर श्रीज्ञान भारत के एक विशिष्ट विद्वान् थे। बाल्यावस्था से ही संसार से विरक्त होकर उन्होंने संन्यास-धर्म स्वीकार कर लिया था। विक्रमशिला बिहार के साथ उनका विशेष सम्बन्ध था। प्रसिद्ध है कि सद्धर्म प्रचार के लिए उन्हें प्राच्य द्वीपपुंज में जाना पड़ा था। उसके बाद तिब्बत के राजा के अनुरोध से उनको तिब्बत की यात्रा करनी पड़ी। वृद्धावस्था के कारण यद्यपि उनकी जाने की इच्छा नहीं थी, किन्तु धर्म-प्रचार के महान् लक्ष्य को दृष्टिगत रखकर वे बड़े-बड़े शारीरिक कष्ट सहकर भी तिब्बत जाने के लिए बाध्य हुए। नेपाल के रास्ते विभिन्न पीठस्थानों का दर्शन करते हुए वे तिब्बत पहुँचे थे। तिब्बत पहुँचने पर उनका बड़ा स्वागत एवं अभ्यर्थना की गयी। जिन स्थानों पर रुकते हुए वे तिब्बत पहुँचे थे, वे सभी स्थान बाद में तीर्थ के रूप में परिणत हो गये। वहाँ जाकर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्होंने बहुसंख्यक ग्रंथों का अनुवाद किया तथा अभिनव ग्रंथों की रचना भी की। इन ग्रन्थों में 'बोधि पथ प्रदीप' अन्यतम है। अति वृद्धावस्था में धर्म का महान् कार्य सम्पादन कर समग्र देश की कृतज्ञता प्राप्त करके उन्होंने तिरोधान लाभ किया।

दीपंकर के समान अन्य बहुत से भारतीय विद्वानों ने (उनके पहले और बाद में भी) तिब्बत के इस प्रकार के धर्मकार्य में अपने जीवन का उत्सर्ग किया था। इनका इतिहास प्रायः सभी को अल्पाधिक रूप में विदित है।

चौरासी सिद्धों का नाम भारतीय साहित्य में अति परिचित हैं। ये सिद्ध विभिन्न समयों के हैं तथा प्रतीत होता है कि विभिन्न सम्प्रदायों के भी। शैव, शाक्त, नाथ और बौद्ध प्रभृति विभिन्न मार्गों के साधक लोग सिद्धावस्था प्राप्त करते थे। सिद्धावस्था का लाभ यद्यपि साधन-मात्र का ही अन्तिम फल है तथापि पारिभाषिक दृष्टि से यह शब्द विशिष्ट योग-मार्ग से सम्बन्धित है। विवेकज्ञान को प्राप्त कर, अशुद्ध माया से मुक्त होकर कैवल्य या विज्ञानकल अवस्था की प्राप्ति यथार्थ सिद्धि नहीं है। चरम सिद्धि के लिए चाहिए शुद्ध अध्वा में प्रवेश और पुनः उसका अतिक्रम। इसमें शैव, शाक्त, वैष्णव और बौद्ध का भेद नहीं है। जब तक इस परम स्थिति में प्रवेश न किया जाय तब तक किसी योगी के लिए सिद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। चौरासी सिद्धों में कोई-कोई गोरखपन्थ के भी हैं और कोई-कोई शैवादि सम्प्रदायों के भी हैं। परन्तु इनमें जैसे भारतीय साधक हैं, वैसे तिब्बत के भी बहुत से साधक हैं। ८४ संख्या का अर्थ ठीक ८४ ही है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। संभव है कि उन युगों में सिद्धों की संख्या इससे अधिक थी, किन्तु ८४ मूल आसनों के कारण यह संख्या रूढ़ हो गयी।

वर्तमान युग के विशिष्ट विद्वान् और भ्रमणशील अन्वेषक पण्डितवर्ग ने पता लगाया है कि तिब्बत में प्राचीन काल से ही विभिन्न सिद्धमठों का अस्तित्व रहा है। स्वामी पूर्णानन्द परमहंस ने जो पूर्वी पाकिस्तान स्थित चट्टग्राम (चटगाँव) के जगतपुरा आश्रम के प्रतिष्ठाता थे, अपने यौवन के उन्मेषकाल में ही तिब्बत जाकर सौभाग्य से एक विचित्र आश्रम का पता प्राप्त कर उसमें प्रवेश का अधिकार-लाभ किया था। प्रसिद्धि है कि यह आश्रम मतंग मुनि का था और मतंगाश्रम के नाम से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसिद्ध भी था। वहाँ प्राच्य भारत के मार्गविशेष से उनकी यात्रा हुई थी। लामा बाजार के रास्ते में किसी महात्मा का दर्शन पाकर उनकी कृपा से मतंगाश्रम तक पहुँचने के मार्ग का पता उन्हें मिला था। मतंग मुनि से दीक्षा प्राप्त कर वे दीर्घकाल अर्थात् वर्षों तक वहाँ रहे और दिव्यज्ञान प्राप्त कर उन्हींके आदेश से पुनः लोकालय में आये।

यह स्थान तिब्बत में ही है। किन्तु ठीक किस स्थान पर है, यह कहना मुश्किल है, क्योंकि साधारण मनुष्य के लिए वह स्थान निषिद्ध भूमि के समान हैं। आश्रमाधिकारियों का विशेष अनुग्रह प्राप्त किये विना उसका दर्शन नहीं हो सकेगा, प्रवेश तो दूर की बात है। हुआ भी ऐसा ही। क्योंकि पूर्णानन्दजी का विवरण सुनकर कितने ही आदमियों ने उस स्थान का पता लगाने के लिए अपना जीवन अर्पित किया। उनमें योरोप और भारत के विशिष्ट यात्री भी थे, किन्तु कोई फल नहीं निकला। उनमें से कुछ लोगों का रास्ते में देहान्त हो गया और अन्य लोग निराश होकर लौट आये। इस आश्रम के आभ्यन्तरिक रहस्य को बताना यहाँ सम्भव नहीं है। जो कुछ सम्भव है, उसका भी प्रकाश करना उचित प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार तिब्बत में ज्ञानमठ नाम से अति प्राचीनकाल से एक गुप्त मठ का पता चलता है। किंवदन्ती है कि विक्रमादित्य के देहावसान के बाद दक्षिण देश के तीन योगी ब्रह्माण्ड घूमते-घूमते ब्रह्मदेश पहुँचे। वहाँ किसी अचिन्त्य-शक्ति की प्रेरणा से वे तिब्बत स्थित उक्त मठ तक पहुँच गये। इन भ्रमणकारियों के नाम सिद्धपुरी, आत्मपुरी और ज्ञानपुरी था। जहाँ तक ज्ञात हुआ है, सिद्धपुरी और आत्मपुरी ने कुछ समय बाद समाधिलाभ किया और तीसरे महात्मा परमात्मा के विशेष अनुग्रह से अतुलनीय दिब्य शक्तियों के अधिकारी बने और उन्होंने उस प्राचीन मठ को अपने नाम से प्रचारित किया। तभी से उस मठ का नाम 'ज्ञानमठ' पड़ा। किसी-किसी स्थान में इसका नाम 'सत्यज्ञानाश्रम' भी मिलता है। अति प्राचीन समय से विभिन्न देशों के अनुसंधित्सु तथा परिश्रमी ज्ञानी लोग इसकी बहुत कुछ खबर जानते आये हैं। यह विषय इतना गुप्त है कि जनता तो दूर की बात है, अन्वेषक लोग भी इसका विशेष पता नहीं जानते।

रोम देश के एक पर्यटक और ग्रीस के एक दूसरे पर्यटक ने प्राचीन-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काल में इस मठ के विषय में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त की थी। इन लोगों ने जो कुछ विवरण लिखा था, उससे पता चलता है कि यहाँ बहुत प्रकार के लौकिक-अलौकिक ज्ञान-विज्ञान का भण्डार है। नाना प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ, कार्यसिद्धि की प्रक्रिया, वृद्धावस्था की देह में तारुण्य का संचार, एक ही स्थान पर बैठकर समग्र जगत् का करकमलवत् दर्शन करने की शक्ति, इस प्रकार की विभिन्न गुप्त विद्याएँ इस मठ में सुरक्षित रखी गयी हैं। अनाधिकारी का इस स्थान में प्रवेश नहीं होता। इसलिए इस विद्या का दुरुपयोग होने की सम्भावना नहीं है। यूनानी पर्यटक ने कहा था कि इस मठ के ज्ञान-विज्ञान का किंचित् अंश भी जब जगत् में प्रकाशित होगा तब वह काल-जगत् के लिए परम अभ्युदय समझना चाहिए। यह प्रसिद्ध है कि ३०० वर्ष पूर्व चीन देश के एक विद्वान् ने सत्यज्ञानाश्रम के विषय में कुछ विवरण प्रकाशित किया था। इस अत्यन्त गुप्त स्थान का कुछ पता उक्त विवरण से चलता है। उसमें वैज्ञानिक रीति से वायुदुर्ग निर्माण की प्रक्रिया कही गयी है। यह हुआ ज्ञानमठ या सत्यज्ञानाश्रम के सम्बन्ध में संकेत मात्र। इससे अधिक कोई दूसरा विवरण जगत् के सामने प्रकाशित नहीं हुआ है।

इसके बाद वर्तमान थियोसोफिकल सोसाइटी की प्रवर्तिका, रूस की सम्माननीया महिला श्रीमती ब्लावत्स्की ने गोपनीय तिब्बत के बारे में, विशेषकर तिब्बत के विलक्षण महात्माओं के विषय में जो कुछ अनुभव किया था, वह जगत् के सामने प्रकट है। इस विषय का विशेष रूप से ज्ञान थियोसोफिकल साहित्य में मिलता है।

अन्त में 'ज्ञानगंज' नामक एक अद्‌भुत गुप्त आश्रम के विषय में दो-चार बातें लिखना आवश्यक है। यह ज्ञानगंज पूर्वोक्त ज्ञानमठ से अभिन्न है, यह नहीं कहा जा सकता। मैं ज्ञानगंज के बारे में बहुत कुछ जानता हूँ जो करीब-करीब प्रत्यक्ष के समान है, क्योंकि हमारे पूज्य गुरुदेव बाबा विशुद्धानन्द परमहंस देव ने तिब्बत के इस ज्ञानगज से साक्षात् रूप में दीक्षित होकर अलौकिक योग-शक्तियाँ प्राप्त की थीं। किशोरावस्था में ही भगवत्-कृपा से इस आश्रम के महापुरुष से उनका साक्षात् परिचय हुआ था और उन्हींकी कृपा से वे शून्यमार्ग से ज्ञानगंज ले जाये गये थे। पूर्व बंग स्थित ढाका नगरी से हिमालय होकर उन्हें ज्ञानगंज जाना पड़ा था। इन बातों का विशेष विवरण उनकी जीवनी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में लिख चुका हूँ। यह ज्ञानगंज तिब्बत में स्थित है, किन्तु साधारण दर्शकों के लिए अदृश्य है। इस स्थान में उनको समग्र ब्रह्मचर्य-जीवन बिताना पड़ा था। यहाँ के प्रासाद, गृहादि सभी स्फटिक निर्मित हैं। असंख्य प्रकार के प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा यहाँ दी जाती है। यह शिक्षा—योग-शिक्षा में सहायक के रूप में सभी को ग्रहण करनी पड़ती है। अति दीर्घजीवी योगी एवं विज्ञानविद् यहाँ के उपदेष्टा हैं। ये सभी अत्यन्त उच्चकोटि के योगी हैं। भारतवर्ष की समतल भूमि में इस प्रकार के योगियों के कम दर्शन मिलते हैं। परमहंसदेव की दीक्षा हुई थी—राजराजेश्वरी मठ में। इस मठ से ही ज्ञानगंज सम्बन्धित है। इसके अधीन सात मठों के विषय के बारे में हमने गुरुदेव के मुख से सुना था। उनमें ज्ञानगंज एक है। यह स्थान कैलास और मानसरोवर के भी आगे है। किन्तु इस प्रकार का परिचय देना व्यर्थ है, क्योंकि लौकिक दृष्टि से साधारण पर्यटकों को यह मार्ग दृष्टिगत नहीं होता। श्री परमहंसदेव के भी गुरु का नाम महातपा है और ज्ञानगंज स्थित परमहंस के गुरु-भ्राताओं में विशिष्ट दो-तीन महात्माओं के नाम हैं – ज्ञानानन्द, नीमानन्द आदि। इनके ऊपर महायोगी परम तेजःपुंज कलेवर श्री श्री भृगुराम परमहंसदेव हैं। किन्तु ये न तो ज्ञानगंज में गुरुभाइयों के साथ निवास करते हैं और न राजराजेश्वरी मठ में गुरुदेव के साथ। वे स्वतन्त्र रूप से रहते हैं। इनके रहने का कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है। जब घूमते हैं तब शून्यमार्ग से।

ज्ञानगंज के ये महापुरुष लोग अधिकतर प्रयोजन होने पर घर-घर जाकर शिष्यों को दर्शन देते हैं। बंग देश के धर्म-प्रचारकों में सुप्रसिद्ध आचार्य स्वर्गीय विजयकृष्ण गोस्वामीजी के गुरु का सम्बन्ध भी तिब्बत से ही था। मानसरोवर के आगे उनका निवास-स्थान था। उन्होंने गोस्वामीजी को गया के आकाशगंगा पहाड़ में, वहाँ से आकाश-मार्ग से आकर दीक्षा दी थी। ऐसे अनेक धर्म-सम्प्रदाय हैं जिनका आध्यात्मिक दृष्टि से तिब्बत से सम्बन्ध है।

SRI JAGADGURU ... ADHYA
JNANA ... SAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8594

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No. 147

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain.

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC-0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म० म० पं० गोपीनाथ कविराज

जन्म : ७ सितम्बर, १८८७ ई०
धामराई, ढाका (बंगलादेश)
निधन : १२ जून, १९७६

बीतराग महामनीषी, संस्कृत विद्या के सर्वाङ्गीण अप्रमित आचार्य, तन्त्रशास्त्र के सर्वज्ञ और शास्त्रीय एवं साधनात्मक रहस्य पक्ष के अभिज्ञाता, सन्त, साधक, निरभिमान, सरल प्रकृति, महादार्शनिक, परा और अपरा विद्या के विज्ञ, साधना की मूर्ति कविराजजी की अभिरुचि बाल्यकाल से आध्यात्मिक साधना की ओर थी। कविराजजी ने काशी में रहनेवाले अनेक साधु-सन्तों को खोज निकाला। सन्तों के प्रथम दर्शन तथा स्वल्प वार्तालाप से ही उनके अन्तरतत्त्व को समझ लेना कविराजजी का निजी वैशिष्ट्य था। कविराजजी ने सिद्धाश्रम ज्ञानगंज के सूर्य-विज्ञान-प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव का काशी में सान्निध्य प्राप्त किया, उन्हें अपना गुरु बनाया। स्वामी विशुद्धानन्दजी ने ज्ञानगंज में सिद्धि प्राप्त की थी। उन्होंने सूर्य-विज्ञान के अनेक प्रयोग कविराजजी के समक्ष किये थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्यात्म, योग तथा तंत्र

म० म० पं० गोपीनाथ कविराज

मनीषी की लोकयात्रा
साधुदर्शन एवं सत्प्रसंग १-२-३
शक्ति का जागरण और कुण्डलिनी
श्रीसाधना
ज्ञानगंज
योग तत्र-साधना
दीक्षा-रहस्य
विशुद्धानद प्रसंग तत्त्व कथा
अखण्ड महायोग

अरुण कुमार शर्मा

मारण पात्र

नन्दलाल गुप्त

सूर्यविज्ञान-प्रणेता विशुद्धानन्द परमहंस

विश्वनाथ मुखर्जी

भारत के महान् योगी भाग १ से ८
भारत की महान् साधिकाएँ

हरीन्द्र दवे

कृष्ण और मानव-सम्बन्ध

स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती

वेद व विज्ञान

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi